०३

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक
कल्याणी प्रिन्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरभाष २५२६८६०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे, अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ, तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन, वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व, प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति, समाज, ग्राम, नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उदबोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तो को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति [illegible] से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे जीवन–धर्म किरणावली का [illegible] के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

[illegible] सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी [illegible] द्वारा [illegible] मे समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक मुश्त प्रदान किए गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सोजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमान् घूडमलजी डागा गगाशहर के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 3 (जीवन–धर्म) के अर्थ सहयोगी श्रीमान् मनसुखजी कटारिया, बंगलोर है। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा — अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया — मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000, आषाढ शुक्ला अष्टमी

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियो का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद मे सस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या बढाकर 53 कर दी गई। आज यह सेट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया ओर पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ, भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओं के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय–प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं, अपितु विश्व–धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ, सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व. डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ मे समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमान् धूडमलजी डागा गगाशहर के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 3 (जीवन–धर्म) के अर्थ सहयोगी श्रीमान् मनसुखजी कटारिया, बैंगलोर हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000, आषाढ शुक्ला अष्टमी

"हुक्म संघ के आचार्य"

1. **आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म सा — दीक्षा वि स. 1870, स्वर्गवास वि.स. 1917**

   ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2 **आचार्य श्री शिवलालजी म सा — दीक्षा वि.स 1891, स्वर्गवास वि स. 1933**

   प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी, महान शिवपथानुयायी।

3. **आचार्य श्री उदय सागरजी म सा — दीक्षा 1918, स्वर्गवास वि.स. 1954**

   विलक्षण प्रतिभा के धनी, वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4. **आचार्य श्री चौथमलजी म सा. — दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि.स. 1957**

   महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5. **आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा — दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि.स. 1977**

   सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता, अद्भुत स्मृति के धारक, जीव–दया के प्राण।

6. **आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा — दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि.स. 2000**

   ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी, क्रातदृष्टा, युगपुरुष।

7. **आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा. — दीक्षा 1962, स्वर्गवास वि.स 2019**

   शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 **आचार्य श्री नानालालजी म सा. — दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि.स. 2056**

   समता–विभूति, विद्वद्शिरोमणि, जिनशासन–प्रद्योतक, धर्मपाल–प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9. **आचार्य श्री रामलालजी म.सा. — दीक्षा 2031, आचार्य वि.सं. 2056 से**

   आगमज्ञ, तरुण तपस्वी, तपोमूर्ति, उग्रविहारी, सिरीवाल–प्रतिबोधक, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, बालब्रह्मचारी, प्रशातमना।

अर्थ–सहयोगी परिचय

श्रेष्ठीवर्य समतासाधक, शासननिष्ठ समाजसेवी, श्री मनसुखजी कटारिया, बैंगलोर

ससार मे अनेक आत्माएँ जन्म लेती हैं और अपने सासारिक कार्य पूर्ण कर इस नश्वर ससार मे भवभ्रमण के चक्र को पूर्ण करती हैं। लेकिन वे आत्माएँ धन्य हैं जो अपने जीवन को गुलाब के फूल की भाति महकाकर अपने साथ–साथ अन्य लोगो को भी सुरक्षित करती है। उसी कडी मे राणावास निवासी स्व सेठ श्रीमान् आनन्दमलजी सा कटारिया का नाम भी विख्यात है। आप अणदाजी के नाम से सम्पूर्ण नगर मे विख्यात थे। धर्मनिष्ठा, प्रामाणिकता एव नैतिकता आपके जीवनमूल्यो की अनमोल विरासत थी। आपके सस्कारवान परिवार मे पाँच पुत्र– स्व श्रीमान् दौलतरामजी, स्व श्रीमान् वनेचन्दजी, स्व श्रीमान् हीराचन्दजी, स्व श्रीमान् दीपचन्दजी एव स्व श्रीमान् चुन्नीलालजी कटारिया आप ही के पदचिन्हो पर चलते हुए समाज मे विख्यात थे। कटारिया परिवार व्यावसायिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक कार्यो मे सदेव अग्रणी रहा है एव आपकी यशस्वी परम्परा दीर्घकालीन रूप से चलती आ रही है। आपकी जन्मभूमि विद्यानगरी राणावास (पाली–राज) की लगभग सभी शिक्षण सस्थाए एव आनन्द हॉस्पीटल आपके आर्थिक एव सक्रिय सहयोग से पुष्पित एव पल्लवित हुए हैं।

समता विभूति आगम पुरुष आचार्यश्री नानेश का विक्रम सवत् 2036 का यशस्वी एव ऐतिहासिक राणावास चातुर्मास सघनिष्ठ सेवाभावी उदारमना श्रीमान् चुन्नीलालजी कटारिया के अथक प्रयासो से प्राप्त हुआ। कटारिया परिवार ने इस चातुर्मास मे अपना जो सहयोग प्रदान किया वह वास्तव मे

की परिचायक है। मातृ–पितृभक्त श्री कटारियाजी ने इस दौरान श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन शिक्षण सघ के विभिन्न पदो पर रहते हुए सुसचालन किया। पिताजी के देहावसान के वाद आपने बैंगलोर मे भोयर एव फाइनेन्स के व्यवसाय मे कदम रखा। अपनी प्रामाणिकता एव नैतिकता से आप कुछ ही दिनो मे व्यवसाय मे उन्नति के शिखर पर चढते गये एव आपकी गिनती बैंगलोर के श्रेष्ठिवर्यो मे होने लगी। श्रीमान् मनसुखलालजी अनेक सस्थाओ के विभिन्न पदो पर रहते हुए बजोड कार्य कर रहे हैं। आपके कुशल नेतृत्व मे जैनम् मैरिकेयर की स्थापना हुई जो जनसेवा हितार्थ सुचारु रूप से चल रहा है। श्री कटारियाजी समता युवा सघ, बैंगलोर एव अ भा साधुमार्गी जैन समता युवा सघ के राष्ट्रीय मत्री तथा साधुमार्गी जैन सघ बैंगलोर के सहमत्री के रूप मे अपनी सेवाए प्रदान कर चुके हैं।

आपके सत्कार्यों में आपकी धर्मपत्नी सेवाभावी, धर्मनिष्ठ व्यवहारकुशल सुश्राविका श्रीमती इन्द्रादेवी कटारिया का समर्पित सहयोग भी प्राप्त होता रहता है। आपके सुपुत्र श्री हितेशकुमारजी एव श्री धर्मेशकुमारजी तथा सुपुत्री जयश्रीजी भी अपनी यशस्वी परम्परा के अनुसार आगे बढ रहे हैं। श्री कटारियाजी के बहिन–बहनोई श्रीमती भवरीबाई–स्व श्री बच्छराजजी पीतलिया (राणावास) रत्नागिरी, स्व सुवाबाईजी–स्व श्री भवरलालजी मुणोत, सोजतसिटी–हैदराबाद, श्रीमती सुखीबाई–श्री प्रेमराजजी गॉधी, जवाली–पनवेल भी समाज मे विख्यात हैं। श्री कटारिया शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी प्रशान्तमना आचार्य–प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा के अनन्य भक्त हैं। आप हुक्मसघ के श्रद्धावान शासननिष्ठ समर्पित सुश्रावक हैं। श्री कटारियाजी अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग जिन–शासन के लिए करते हैं। श्री जवाहर किरणावली का भाग–3 जीवन धर्म भी आप ही के अर्थ सौजन्य से प्रकाशित हुआ है। हमे आशा ही नहीं, वरन् विश्वास है कि कटारिया परिवार का सहयोग सघ को सदा मिलता रहेगा।

अनुक्रम

श्री जिन मोहनगारो छे।		१
ईश्वर की खोज	.	३१
परमात्मा प्राप्ति के सरल साधन	.	४७
प्रभु-प्रार्थना का प्रयोजन (क)	.	५४
प्रभु-प्रार्थना का प्रयोजन(ख)	.	६२
प्रार्थना		७३
परमात्मा व्यापक है	.	८१
नमस्कार मन्त्र		६१
अन्तरतर की प्रार्थना		६७
वैर का परिहार		१०८
तप -महाशक्ति		१२८
सवत्सरी पर्व	:	१४८
कहा से कहां ?	.	१६४
अस्पृश्यता (१)		१७६
अस्पृश्यता (२)		१६०
ठक्कर बापा के उद्गार		१६४
राम-राज्य		१६५
शिक्षा	.	२०२

श्री जिन मोहनगारो छे!

समुद्रविजय सुत श्रीनेमीश्वर!

यह भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। सारा ससार एक–मन होकर परमात्मा की जो प्रार्थना करता है, वही प्रार्थना मैने अपने शब्दो मे की है। प्रार्थना का विषय इतना व्यापक और सार्वजनिक है कि प्रार्थना महापुरुष का नाम चाहे कुछ भी हो और प्रार्थना के ये शब्द भी कुछ भी हो, उसकी मूल वस्तु समान रूप से सभी की होती है। इस प्रार्थना मे कहा गया है।

'श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन–प्राण हमारो छे।'

यहा पर यह आशका की जा सकती है कि क्या भगवान् मोहनगारो हो सकता है? जिसे जैन–धर्म वीत–राग कहता है, जो राग–द्वेष और पक्षपात, स्वय मोह से अतीत है, वह 'मोहनगारो कैसा? जिसे अमूर्तिक और निराकार माना जाता है वह किस प्रकार और किसे मोहित करता है? इस आशका पर सरल रीति से यहा प्रकाश डाला जाता है।

लोक–मानस इतना सकीर्ण और अनुदार है कि उसने ससार के अन्यान्य भौतिक पदार्थों की तरह ईश्वर का भी बटवारा–सा कर रखा है। यही कारण है कि ईश्वर के नाम पर भी आये दिन झगडे होते रहते है। इसके अतिरिक्त ईश्वर को समझाने के लिए उपयुक्त वक्ता न होने से, ईश्वर के नाम से होने वाली शाति के बदले उलटी अशाति होती है– कलह फैलता है। यह सब होते हुए भी वास्तव मे ईश्वर का नाम शातिदाता है और ईश्वर 'मोहनगारो' है।

भगवान् की ही है, किसी ससारी पुरुष की नही है। इस प्रार्थना मे वीतराग का ही 'मोहनगारो' बतलाया गया है। भगवान् वीतराग ही मोहनगारो किस प्रकार है, यह बात ससार की बातो पर दृष्टि डालने से साफ समझ मे आ जाएगी।

जिसका चित्त ईश्वर पर मोहित होकर ससार की और वस्तुओ से हट जाएगा, एकमात्र परमात्मा को ही अपना आराध्य मानेगा, जो परमात्म-प्राप्ति के लिए अपने सर्वस्व को हसते-हसते ठुकरा देगा, वह परमात्मा को ही मोहनगारो मानेगा। परमात्मा 'मोहनगारो' नहीं है तो भक्त-जन किसके नाम पर ससार का विपुल वैभव त्याग देते हैं? अगर ईश्वर मे आर्कषण न होता तो बडे-बडे चक्रवर्ती और सम्राट उसके लिए वन की खाक क्यो छानते फिरते? अगर भगवान् किसी का मन नही मोहते तो प्रहलाद को किसने पागल बना रखा था? और मीरा ने किस मतलब से कहा था- 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'

परमात्मा स्वय कहने नही आता कि 'मैं मोहनगारो हू' मगर भक्त लोग ही कहते है- श्री जिन मोहनगारो छे। परमात्मा को मोहनगारो मानने वाला भक्त कैसा होना चाहिए, यह जानने के लिए सासारिक बातो पर दृष्टिपात करना होगा।

जो पुरुष ससार के सब पदार्थों मे से केवल धन को 'मोहनगारो' मानता है, उसके सामने दूसरी तरह की चाहे लाखो बाते की जाए, लेकिन वह धन के सिवाय और किसी भी बात पर नहीं रीझेगा। उसे धन-ही-धन दिखाई देगा। वह सोने मे ही सब करामात मानेगा। वह कहेगा -

'सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति।'

ससार के समस्त सुखो का एकमात्र साधन और विश्व मे एकमात्र सारभूत वस्तु धन है, धन ही परब्रह्म है, धन ही धर्म है, धन ही लोक-परलोक है, ऐसा समझने वाला पुरुष धन को ही मोहनगारो मानेगा। ऐसा आदमी ईश्वर को मोहनगारो नही मान सकता। वह ईश्वर की तरफ झाक कर भी नही देखेगा। कदाचित् किसी की प्रेरणा से ईश्वर की प्रार्थना करेगा भी तो कचन के लिए करेगा। वह धन-लाभ को ही ईश्वर की सच्चाई की कसोटी बना लेगा।

कचन और कामिनी ससार की दो महाशक्तिया हे। कई लोग ऐसे है, जिनके लिए कचन तो इतना 'मोहनगारो' नही है, किन्तु कामिनी ही उन्हे

गुण–निधान, सुख–निधान और आनन्द–निधान जान पडती है। कनक और कामिनी मे ही ससार की समस्त शक्तियो का समावेश हो जाता है।

इन शक्तियो से जिसका अन्तःकरण अभिभूत हो गया है, जिसके हृदय पर इन्होने आधिपत्य जमा लिया है, वह ईश्वर की तरफ नही झाकेगा। अगर झाकेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर उसे कामिनी दे। कदाचित् कामिनी मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र आदि परिवार की याचना करेगा। पुत्र–पौत्र मिल जाने पर वह सासारिक मान–सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। मगर जो मनुष्य कचन और कामिनी आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा वह उनमे से किसी की कमी होते ही ईश्वर से विमुख हो जाएगा और कहेगा– ईश्वर है कौन? अपना उद्योग करना चाहिए, वही काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नही हो सकते। इनके आगे ईश्वर की बात करना भी निरर्थक–सा हो जाता है।

जैसे धन को मोहनगारो मानने वाला धन के सिवाय और किसी मे भलाई नही देखता, उसी प्रकार ईश्वर को मोहनगारो मानने वाले मनुष्य ईश्वर के सिवाय और किसी मे भलाई नही देखते। वे लोग ईश्वर को ही अपना उपास्य समझते है।

जल मे रहने वाली मछली खाती भी है, पीती भी है, विषय–भोग भी करती है मगर करती है सब–कुछ जल मे रह कर ही। जल से अलग करके उसे मखमल के बिछौने पर रख दिया जाय और बढिया भोजन खिलाया जाए, तो वह न भोजन खाएगी न मखमल के मुलायम स्पर्श का आनन्द ही अनुभव करेगी। उसका ध्यान तो जल मे ही लगा रहेगा। परमात्मा के प्रति भक्तो की [illegible] भी ऐसी ही होती है। भक्त चाहे गृहस्थ हो या साधु, पानी के बिना [illegible]

कोई क्या जान सकता है? इसी प्रकार जिन्हे परमात्मा से उत्कट प्रेम है, वही बतला सकते हैं कि परमात्मा मे क्या आकर्षण है, कैसा सौन्दर्य है और कैसी मोहक–शक्ति है? क्यो उन्हे परमात्मा के ध्यान बिना चैन नही पडता? उनके अन्तर से निरन्तर यह ध्वनि फूटती रहती है–

'श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन–प्राण हमारो छे।'

इस प्रकार परमात्मा, भक्त का आधारभूत है। परमात्मा को तभी ध्यान मे लिया जा सकता है, जब उसे कचन–कामिनी से अलिप्त रखा जाए। जिसमे कामना–वासना नही है, वही मोहनगारो होता है। जो कामना–वासना से लिप्त है– वह वीतराग नहीं है और जो वीतराग नहीं है, वह मोहनगारो भी नही हो सकता।

त्याग सब आत्माओ को स्वभाव से ही प्रिय है। एक साधु को देखकर ही हृदय मे भक्ति उत्पन्न हो जाती है। आप (श्रोतागण) यहा धन के लिए नही आये हैं। यहा मेरे पास आने का मतलब दूसरा ही है। वह क्या है? त्याग के प्रति भक्ति। जब साधु के थोडे–से त्याग को देखकर ही उसके प्रति प्रीति और भक्ति की उत्पत्ति होती है, तो जो भगवान् पूर्ण वीतराग है, उनके ध्यान से कितना आनन्द आता होगा? कदाचित् यहा आकर व्याख्यान सुनने वालो पर टैक्स लगा दिया जाए, तो क्या आप लोग आएगे? टैक्स लगा देने पर आप कहेगे– इन साधुओ को भी हम गृहस्थो के समान ही पेसो की चाह लगी है और जहा पैसो की चाह है, वहा परमात्मा कैसे हो सकता है, क्योकि परमात्मा तो वीतराग है?

व्याख्यान सुनने के लिए आने वालो पर पैसे का टैक्स न लगाकर छटाक–छटाक भर मिठाई लेकर आने का नियम लागू कर दिया जाए तो खुशामद के लिहाज से मिठाई लेकर आने की बात दूसरी है, लेकिन वीतरागता की भावना से आप न आएगे और कहेगे– इन साधुओ को भी रस–भोग की आवश्यकता है। साराश यह कि आप यहा त्याग देखकर ही आए हैं। इस प्रकार लगभग सभी आत्माओ को त्याग प्रिय हे। फिर यह त्याग–भावना क्यो दबी हुई है? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि आत्मा कचन और कामिनी के मोह मे फसा हुआ है। आत्मा रात–दिन सासारिक वासनाओ मे लगा रहता है, इसी कारण उसकी त्याग–भावना दबी हुई हे।

।१८ वासना के वशवर्ती होने के कारण कई लोग धर्म–सेवन भी वासनाओ पूर्ति के उद्देश्य से ही करते हैं। कनक और कामिनी के भोग मे सुविधा वृद्धि होने के लिए ही वे धर्म का आचरण करते हैं। ऐसे लोगो का

अन्त करण वासना की कालिमा से इतना मलीन हो गया है कि परमात्मा का मन–मोहन रूप उस पर पतिबिम्बित नही हो सकता।

यद्यपि मुझमे वह उत्कृष्ट योगशक्ति नही है कि मै आपका ध्यान ससार की ओर से हटाकर ईश्वर मे लगा दू, लेकिन बडे–बडे सिद्ध–महात्माओ ने शास्त्रो मे जो कुछ कहा है, मुझे उसमे बहुत–कुछ शक्ति दिखाई देती है और इसी कारण वही बात मैं आपको सुनाता हू। आप उन महात्माओ के अनुभवपूर्ण कथन की ओर ध्यान लगाइये। फिर सम्भव है कि आपका ध्यान ससार की ओर से हटकर परमात्मा की ओर लग जाए।

मनुष्य सृष्टि का बादशाह है। फारसी भाषा की एक कहावत मे बतलाया गया है कि मनुष्य सब जीवो का बादशाह है। इस कहावत के अनुसार मनुष्य सब प्राणियो का राजा है और सब प्राणी उससे छोटे हैं। जब मनुष्य का इतना अधिक महत्त्व है, मनुष्य का पद इतना ऊचा है तो आपको विचारना चाहिए कि हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिए? जो सबसे बडा गिना जाता है वह किसी–न–किसी अच्छे कर्त्तव्य से ही। मनुष्यो मे ही देखो। मनुष्यो मे कोई जज होता है, जिसका दर्जा ऊचा गिना जाता है। सभी मनुष्य जज नही होते। क्या बढिया कपडे और बढिया आभूषण पहनने से कोई जज बन जाता है? नही। जिसके दिमाग मे इसाफ करने की ताकत है, जो दूध को दूध और पानी को पानी सिद्ध कर दिखा देता है, इस शक्ति के कारण जो अपराधी को कारागार मे भेज सकता है या अभियोग से मुक्त कर सकता है, फासी की सजा दे सकता है या कारागार से छुडा सकता है, वह जज कहलाता है। इस प्रकार न्याय करने के लिए ही जज होता है।

मतलब यह है कि जज जनता का कल्याण करता है, जनता को

देखा जाता है। पशु कहलाना, इसलिए बुरा लगता है कि मनुष्य पशु नही है, लेकिन जरा हिसाब लगाकर देखो कि आप पशु से बडे तो कहलाते हैं, मगर वास्तव मे ही बडे हैं या नही? अगर बडे हो तो कितने?

यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी भी व्यक्ति की विशिष्टता या उच्चता उसके कर्त्तव्य पर निर्भर करती है।

हम साधुओ को यहा (जोधपुर में) किसने रोका है? आप कह सकते हैं कि सघ ने प्रार्थना करके रोका है, लेकिन भगवान् महावीर की आज्ञा चातुर्मास मे एक स्थान पर रहने की न होती तो आपकी प्रार्थना भी स्वीकृत नही हो सकती थी। भगवान् की आज्ञा का पालन हमारा कर्त्तव्य है। उनकी आज्ञा के विरुद्ध, लाखो मनुष्यो की प्रार्थना होने पर भी चातुर्मास समाप्त होने के बाद क्या साधु एक दिन भी रह सकते हैं? नही।

भगवान् महावीर ने चौमासे मे एक ही स्थान पर रहना साधुओ के लिए कर्त्तव्य बतलाया है। भगवान् ने कहा है– 'हे मुनि! वर्षा ऋतु मे पानी बरसने से मार्ग बन्द हो जाते हैं, सब जगह हरियाली फैल जाती है, असख्य कीडे–मकोडे पैदा हो जाते हैं, इस कारण विहार करने मे कठिनाई होती है और विहार करने से अहिसा धर्म का उच्च आदर्श नही पल सकता। अतएव वर्षा मे उत्पन्न होने वाले जीवो की रक्षा के उद्देश्य से मै आज्ञा देता हू कि चार महीने एक स्थान पर निवास करना और प्रतिसलीनता धारण करना। प्रतिसलीनता धारण करने का अर्थ है– मन, वचन, कार्य को सदा की अपेक्षा अधिक रोक कर तप–सयम अधिक करना।

इस प्रकार चार मास तक एक स्थान पर रहना भगवान् की आज्ञा के अनुसार साधु का कर्तव्य है। अगर कोई साधु यह सोचता है कि यहा चार मास रहना ही है और यहा की मिठाई बडी स्वादिष्ट होती है तथा भक्त लोग खूब 'घणी खम्मा' करते है तो मिठाई खाकर 'घणी–खम्मा' की मौज क्यो न लूट ले? और ऐसा सोच कर वह अगर चातुर्मास को खाने–पीने ओर मान–बडाई का साधन बना लेता है तो क्या वह भगवान् की आज्ञा का और अपने कर्त्तव्य का पालन करता है? कदापि नही।

जो साधु चातुर्मास को जीवो की रक्षा एव अधिक तप–सयम करने अवसर न मानकर, जिह्वा–तृप्ति या मान–बडाई का अवसर समझता हे, व ` उसे पाप–श्रमण कहते हैं। चातुर्मास के सिवाय शेषकाल मे जो

तप–सयम किया जा सकता था, उसे चातुर्मास मे एक स्थान पर रहकर करना चाहिए। चातुर्मास मे अधिक–से–अधिक धर्म–जागृति करनी चाहिए और जिन पाणियो की दया के खातिर एक स्थान मे रहने की भगवान् ने आज्ञा दी है, उन प्राणियो की दया ससार मे फैलानी चाहिए।

यह तो हुई धर्म की आज्ञा। लेकिन इस अवसर पर हमे समाज की रूढियो पर भी विचार करना आवश्यक है। समाज का धर्म के साथ आधार–आधेय सम्बन्ध है। विशेष प्रकार के व्यक्तियो का समूह ही समाज कहलाता है और व्यक्ति ही धर्म का आराधन करते हैं। अतएव समाज की शुद्धि का अर्थ है व्यक्तियो के चरित्र का सशोधन। जब व्यक्तियो का जीवन शुद्ध होता है, उनके सामाजिक आचार–विचार विवेकपूर्ण और नीतिमय होते हैं, तभी तो उनके जीवन मे धर्म का बीज अकुरित होता है। बीज बोने से पहले किसान खेत जोत कर बीज बोने योग्य बनाता है, फिर बीज बोता है और तब अकुर उत्पन्न होते है। इसी प्रकार धर्म का बीज बोने से पहले सामाजिक जीवन को ठीक बना लेना अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक–जीवन को सुधारने का आशय है जीवन मे नैतिकता लाना। नीति, धर्म की नीव है। अतएव सच्ची धार्मिकता लाने के लिए नीतिमय जीवन बनाने की अनिवार्य आवश्यकता है। अनेक सामाजिक कुरीतिया इस प्रकार के जीवन निर्माण मे बाधक होती हैं, अतएव उन पर विचार करना भी आवश्यक है।

चातुर्मास मे साधुओ का जो कर्त्तव्य है, उसका साधारण दिग्दर्शन किया जा चुका है। साधु अपने कर्तव्य का पालन करे और अपनी जिम्मेदारी

मशीन का आटा

अभी कुछ दिन पहले तक गृहस्थ बहिने अपने हाथ से आटा पीसती थी। धनाढ्य और निर्धन का इस विषय मे कोई भेद नही था। शरीर के लिए किसी–न–किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती ही है। निरोग रहने के लिए यही अत्यावश्यक है। अपने हाथ से आटा पीसने मे बहिनो का अच्छा व्यायाम हो जाता था और वे कई प्रकार के रोगो से बची रहती थी। परन्तु आजकल हाथ की चक्की घरो से उठ गई और उसका स्थान कलचक्की ने ग्रहण कर लिया है। बहिने आलसी हो गई हैं। वे अपने हाथ से काम करने मे कष्ट मानती हैं और धीरे–धीरे बडप्पन का भाव भी उन्हे ऐसा करने के लिए रोकने लगा है। इसका एक परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि बहिनो ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है। आज अधिकाश बाइया निर्बल, नि सत्व और तरह–तरह के रोगो से ग्रस्त हैं। प्रसव के समय अनेक बहनो को भारी कष्ट उठाना पडता है और कइयो को तो प्राणो से भी हाथ धो बैठना पडता है। इसका एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी बदौलत वे शारीरिक श्रम से वचित रहती हैं। इतना सब होते हुए भी उनकी आखे नही खुलती, यही आश्चर्य है।

शारीरिक रोगो के अतिरिक्त कलचक्की के कारण और भी अनेक हानिया होती है। कलचक्की आटे के असली सत्त्व के असली को तो आप खा जाती है और सिर्फ आटे का नि सत्त्व कलेवर बाकी रखती है। ससार मे कहावत है कि जिस खाद्य वस्तु पर डाकिन की दृष्टि पड जाती है वह सत्त्वरहित हो जाता है। डाकिन के सम्बन्ध मे यह कहना तो सिर्फ बहम मात्र है, लेकिन कलचक्की तो प्रत्यक्ष ही अन्न का सत्व खा जाती है। कलचक्की मे पिस कर निकाला हुआ आटा जलता हुआ होता है और ठण्डा होने पर ही काम मे आता है। वह जलता हुआ आटा मानो कह रहा है कि– 'मेरा सत्व चूस लिया गया है और मैं बुखार चढे मनुष्य की तरह कमजोर हो गया हू।'

कलचक्की का आटा खाने मे आपको सुविधा भले ही मालूम होता हो, लेकिन किसी भी दृष्टि से देखिये, इसका व्यवहार करना भयकर भूल है। स्वास्थ्य की दृष्टि से वह लाभप्रद नही है, लेकिन ससार की दृष्टि से भी वह अत्यन्त हेय है। बम्बई मे सुना था कि मछली बेचने वाले लोग जिस टोकरी मछलिया रखकर बेचते हैं, उसी टोकरी मे गेहू लेकर कलचक्की मे पिसाने ते हैं। मछली वाली टोकरी के गेहू कलचक्की मे पिसते हैं, उसी मे दूसरे पिसते है। लोग यो तो छूआछूत का बडा ध्यान रखते हैं, लेकिन कलचक्की

मे वह छूआछूत भी पिस कर चूर–चूर हो जाती है। भाइयो! क्या मछली वाली टोकरी के गेहू का आटा कलचक्की मे रहकर आप लोगो के आटे मे नही मिलता होगा? और वह आटा बुरे सस्कार नहीं डालता होगा?

आप डॉक्टरो की राय लेगे तो वे आपको बतलाएगे कि कलचक्की का आटा हानिकारक होता है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की से अल्प–आरम्भ से काम चलता था, लेकिन कलचक्की से महा–आरम्भ होता है।

कलचक्की से गृहस्थ–जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

बिना छना पानी

गर्मी और वर्षा के कारण आटे मे भी कीडे पड जाते हैं, जल मे भी कीडे पड जाते है और ईंधन मे भी। लोग धर्म–ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवो की रक्षा करने मे और हिसा के घोर पाप से बचने मे न मालूम क्यो आलस्य करते हैं? बडे–बडे मटको मे भरा हुआ पानी कई दिनो तक खाली नही होता। पहले के भरे पानी मे दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचित् पहले का पानी आरम्भ मे छान कर भरा गया हो, तो भी उसमे जीव उत्पन्न हो जाते है। एक बार छना हुआ जल सदा के लिए छना हुआ नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी डाल देने से वह भी बिना छना हो जाता है। उसे व्यवहार मे लेना हिसा का कारण है। अगर जल छानने की यतना मर्यादापूर्वक की जाय तो अहिसा–धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप सामायिक धर्म–ध्यान तो करते है, पर कभी इस पर भी ध्यान देते हैं कि आपके घर मे पानी छानने की कपडे की क्या दशा है?

बढेगी, रोगो से रक्षा होगी और दया का पालन होगा। जो आदमी बिना जल भी न पियेगा, क्या उसके हृदय मे कभी मछली पकडने की भावना उत्पन्न होगी?

'नहीं।'

रात्रि–भोजन

जल छानने के साथ ही भोजन मे भी विवेक रखने की आवश्यकता है। रात्रि–भोजन अत्यन्त ही हानिकारक है। क्या जैन, क्या वैष्णव सभी ग्रन्थो मे रात्रि–भोजन को त्याज्य माना गया है। जिसने रात्रि–भोजन त्याग दिया है, वह एक प्रकार से तपस्या करके अनेक रोगो से बच रहा है, रात्रि–भोजन त्यागने से बहुत लाभ होता है। प्लेग के कीडो का जोर दिन मे उतना नही होता, जितना रात्रि मे होता है। रात्रि मे प्लेग के कीडे प्रबल हो जाते हैं, दिन मे सूर्य की किरणो से या तो वे नष्ट हो जाते हैं या प्रभावहीन हो जाते हैं। डॉक्टरो और शास्त्रकारो का कथन है कि जो भोजन रात्रि मे रहता है, उसमे अनेक प्रकार के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि का भोजन सब प्रकार से अभक्ष्य होता है। मगर खेद है कि कोई भाई चार पहर के दिन मे तो भोजन नहीं कर पाते और रात्रि मे ही उन्हे फुर्सत मिलती है।

रात्रि–भोजन की बुराइया इतनी स्थूल हैं कि उन्हे अधिक समझाने की आवश्यकता नही जान पडती। रात्रि मे चाहे जितना प्रकाश किया जाय, अन्धेरा रहता ही है। बल्कि प्रकाश को देखकर बहुत से कीडे आ जाते हैं ओर वे भोजन मे गिर जाते हैं। अगर एकदम अन्धेरे मे भोजन किया जाए तो आकर गिरने वाले जीव–जन्तुओ का पता लग ही नही सकता। इस प्रकार दोनो अवस्थाओ मे रात्रि–भोजन करने वाले अभक्ष्य–भक्षण ओर हिसा के पाप से नही बच सकते। रात्रि–भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषो का दिग्दर्शन कराते हुए आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है–

मेधां पिपीलिका हन्ति लूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्तिं, कुष्ठरोगं च कोलिक.।।
कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम्।
व्यजनान्तर्निपतितस्तालुं विध्यति वृश्चिक ।।
विलग्नश्च गले वाल, स्वमडाय जायते।
इत्यादयो दृष्टदोषा- सर्वेषां निशिभोजने।।

(योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश।)

अर्थात्– रात्रि मे विशेष प्रकाश न होने के कारण अगर कीडी भोजन के साथ पेट मे चली जाए तो वह मेधाशक्ति (बुद्धि) का नाश करती है। जू गिर जाए तो जलोदर नामक भयकर रोग होता है। मक्खी से वमन होता है। कोलिक (जीव विशेष) से कोढ होता है। काटा या लकडी की फास भोजन के साथ खाने मे आ जाए तो गले मे पीडा हो जाती है। कदाचित् बिच्छू व्यजनो मे मिल जाए तो तालू को फोड डालता है। बाल से स्वरभग होता है। इस प्रकार के अनेक दोष रात्रि–भोजन करने से उत्पन्न होते हैं।

पूर्वोक्त शारीरिक दोषो के अतिरिक्त रात्रि–भोजन हिसा का कारण तो है ही। इस विषय मे कहा है–

जीवाक कुथुमाईण घायण भायणधोयणाईसु।
एवमाइ रयणिभोयणदोसे कोसाहिउं तरइ।।

अर्थात्– जो लोग रात्रि मे भोजन करते हैं, उनके यहा रात्रि मे भोजन पकाने का भी विचार नही रहता और उसी स्थिति मे बर्तन धोने आदि कामो मे कुथवा आदि जीवो की घोर हिसा होती है। रात्रि–भोजन मे इतने अधिक दोष है कि कहे नही जा सकते।

रात्रि–भोजन के दोषो के उदाहरण खोजने से सैकडो मिल सकते है। जिस रात्रि–भोजन को अन्य लोग भी निषिद्ध मानते है, उसका सेवन अहिसा और सयम का अनुयायी जैन किस प्रकार कर सकता है? एक उदाहरण लीजिये–

जैनी रात को नही खाते है, सुन चतुर भाई।
हठ करके जिस किसी ने खाया, क्या नसीहत पाई।।
रामदयाल सागर मे हकीम था, उसकी थी नारी।
प्यास लगी पानी की उसको, रात थी अंधियारी।।
मकडी उसमे पडी आन पर जहरी थी भारी।
जहरी मकडी गई पेट मे, हो गई दुखियारी।
पेट फूला और सूजी सारी, वैद औषधि करी तैयारी।
नहि लागे कारी।।
छह महीने मे मुई निकली सागर मे भाई।। हठ ।।

बना, यह आज तक नहीं सुना। मनुष्य कहलाते हुए भी लोग राजनीतिक ओर लोकनीति के विरुद्ध कार्य करते है, इसी कारण ससार मे त्राहि-त्राहि मच रही है। अपने अधिकार के काम न करने से ही ससार मे गडबड है। लोग अपने अधिकारी को भूल कर लोगो के गले काटने मे लगे है, तब उन्हे अधिकारों कैसे कहा जाए? जो अपने अधिकार के काम नही करता, उसके लिए 'अकार लोपात्तस्य ककारो द्वित्वता व्रजेत्' अर्थात् अधिकार शब्द मे 'अ' का लोप होकर 'क' अक्षर को द्वित्व होकर 'धिक्कार'* हो जाता हैं। लोक धिक्कार से डरते है, पर अधिकार के काम नहीं करते । 'पशु' कहलाने मे अपना अपमान मानते हैं। मगर पशुओ के काम छोडना नही चाहते।

अगर पशु और मनुष्य की तुलना की जाए तो मालूम होगा कि विभिन्न पशुओ की अपेक्षा मनुष्य कई बातो मे गया – बीता है। सर्वप्रथम काम भोग को ही ले लीजिए। पशु की काम-वासना कितनी मर्यादित है? स्त्री जाति के पशु गर्भधारण के अतिरिक्त कभी काम सेवन नहीं करते। नर-जातीय पशु भी शेष समय मे उनके पास नही जाते। मगर मनुष्य विषय-वासना का कीडा बना हुआ है। उसने समस्त मर्यादा को लाघ कर घोर उच्छृञ्खलता धारण की है उसके लिए वर्ष मे तीन सौ पैंसठ दिन एक सरीखे है। इस विषय मे उसे समय-असमय और गम्यागम्य का कोई विवेक नही है।

वचे-खुचे और रूखे-सूखे रोटी के कतिपय टुकडो पर निर्वाह करके भी अपने स्वामी की भक्ति और रक्षा करने वाले कुत्ते की तुलना किस मनुष्य के साथ की जाए? कुत्ता अपने स्वामी की रात-दिन रक्षा करता हे, जबकि मनुष्य अपने स्वामी को, आजीविका देने वाले को भी धोखा देने मे नही चूकता।

गाय ओर भैंस आदि दुधारू पशु घास और खल जेसी चीजे खाकर उनके वदले मे मनुष्य को अपने हृदय का रस-दूध देते हें, जिसके बिना मनुष्य-समाज का काम चलना कठिन हे।

सिह बहुत ही भयकर प्राणी समझा जाता हे, मगर क्या वह अपने सजातीय सिह को मारकर खा जाता है? नही। लेकिन मनुष्य उसकी अपेक्षा इतना भीषण है कि वह मनुष्य को भी मारकर खा जाता हे।

आज ससार पर निगाह दोडाइये तो आपको यह समझने मे तनिक भी देरी नही लगेगी कि मनुष्य को मनुष्य से जितना भय हे, उतना किसी भी अन्य जीवधारी से नहीं हे। एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य के लिए कितना विकराल

---

* अधिकारपद प्राप्य नोपकार करोति य ।
अकारो लोपमात्रेण ककारो द्वित्वता व्रजेत्।

होता है? मनुष्य का जितना निर्दयतापूर्वक सहार मनुष्य ने किया और कर रहा है, उतना कभी किसी ने नहीं किया।

पशु, पशुओ को मारने के लिए कभी फौज नही बनाता मगर मनुष्यो ने जो करोडो मनुष्यो की फौज बना रखी है, वह किसलिए है? पशुओ के लिए नही, वह मनुष्यो का ही सहार करने के लिए है। बुद्धिमान् वैज्ञानिक भाति–भाति के सहारक साधनो का, विषमय गैस आदि का जो आविष्कार कर रहे हैं सो राक्षसो के लिए नहीं, अपितु मनुष्यो के ही प्राणो का हरण करने के लिए।

पशु ससार कम–से–कम वस्तुओ पर अपना निर्वाह करता है। वह पेटभर खाने के सिवाय कोई सग्रह नहीं करता, मगर मनुष्य की सग्रह–लालसा का कहीं ओर– छोर नहीं। वह अधिक–से–अधिक सग्रह करके भी सतोष नही मानता। अपनी वास्तविक आवश्यकता के अनुसार सग्रह करना तो समझ मे आ सकता है, किन्तु इतना अधिक और अनावश्यक सग्रह करना कि जिससे दूसरे मनुष्यो को भोजन–वस्त्र के कारण तडप–तडप कर प्राण देने पडे कहा तक उचित हो सकता है? अपनी लालसा की पूर्ति के लिए या बडप्पन दिखलाने के लिए अपने भाई–बन्धुओ पर भी रहम न करना और उन्हे काल के गाल मे भेजने मे सहायक बनना ही क्या असाधारण बुद्धि के धनी मनुष्य को शोभा देता है? क्या इसीलिए मनुष्य पशुओ से श्रेष्ठ कहलाता है? यह सब देखकर आपको क्या यह नही मालूम होता कि पशु मे पशुता के जितने अश हैं उनसे कही अधिक मनुष्य मे मौजूद है।

इसी प्रकार जज अथवा वकील वही है, जो अपने-अपने अधिकार के काम करता है। जो सच्चा न्याय न करके केवल पैसे के गुलाम बने रहते हैं, पैसे के प्रलोभन में पड कर न्याय की उपेक्षा करते हैं, यही नहीं वरन् अन्याय को न्याय प्रमाणित करते हैं, धनवान् का पक्ष लेकर निर्धन के साथ अन्याय करते हैं, वे अपने धिक्कार से अपने-आप को वचित करते हैं।

अधिकाश मनुष्य पैसे के दास बन कर धिक्कार के पात्र बनते हैं। झूठ और जालसाजी का मामला जानते हुए भी उसे सच्चा सिद्ध करने की कोशिश करना क्या वकीलो को कर्त्तव्य है? लेकिन वकील शायद यह सोचते हैं कि सीधे-सच्चे मुकदमे लेने से ही हमारा गुजर कैसे होगा? मनुष्य के लिए मेहनत-मजदूरी करना बुरा नहीं है, लेकिन झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा बनाना और इसी आजीविका से अपना पेट भरना शोभा नही देता। धर्मी मनुष्यो को समझना चाहिए कि हम प्राणो की बाजी चाहे लगा देगे मगर अन्याय करके आजीविका न चलाएगे।

इसी प्रकार चोरी-जारी, अभक्ष्य-भक्षण, नीच वातावरण मे रहना आदि बाते मनुष्य को उसके अधिकार से भ्रष्ट करती हैं।

सभी धर्म एक स्वर मे सदाचार की महिमा प्रकट करते हैं। सदाचार की बडाई न करने वाला कोई धर्म ही नहीं है। लोग अपने जीवन-व्यवहार मे सदाचार को महत्त्व देने लगे तो ससार मे सर्वत्र शान्ति और सुख का सचार हो जाये।

जसमा सती

महिला-वर्ग सदाचार की वृद्धि मे अच्छा योग दे सकता है। महिला-वर्ग चाहे तो पुरुष-वर्ग को जल्दी सदाचार मे प्रवृत्त कर सकता है। इस विषय मे एक आख्यान आपको सुनाता हू। इससे आप यह भी समझ सकेगे कि पर-स्त्री की ओर लोलुपता की निगाह रखने वाला पुरुष किस प्रकार धिक्कार का पात्र है ओर पर-पुरुष को न चाहने वाली स्त्री किस प्रकार धन्यवाद की पात्री है। जो आख्यान मैं कह रहा हू, उसका वर्णन गुजरात के इतिहास मे मौजूद हे और गुजराती लोग उसे बडे प्रेम से गाते ओर पढते हैं।

गरिमामय गुजरात नामक जनपद मे पाटन एक विख्यात नगर अब भी मोजूद हे, जहा आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य कुमारपाल राजा हो चुका हे। उसी पाटन मे सिद्धराज सोलकी नामक एक राजा था। सिद्धराज इतिहास-प्रसिद्ध राजा हे। वह बडा ही बली, साहसी ओर कला-कुशल राजा था। मगर उसमे

एक बडा दोष भी था और वह यह कि वह लम्पट था। उसकी लम्पटता ने उसे कलंकित कर दिया था।

कर्मदेवी नामक एक महिला का पति रायखेगार था। सिद्धराज सोलकी ने कर्मदेवी को अपने चगुल मे फासने के लिए उसी के सामने उसके पति का सिर उतार दिया। इसके पश्चात् वह क्रूरता की हसी हसकर बोला– देखो कर्मदेवी, अपने पति की हत्या के लिए तुम्ही जिम्मेदार हो। तुम मेरी बात मान लेती तो यह नौबत न आती। तुम चाहती तो मेरा कहा मान कर अपने पति की प्राण–रक्षा कर सकती थी। मगर 'गई सो गई अब राख रही को' इस कहावत पर ध्यान दो। जो हुआ उसकी चिन्ता छोड कर जो रहा है, उसकी रक्षा का विचार करो।

कर्मदेवी जानती हो, क्यो मैं यह चेतावनी दे रहा हूँ? अगर तुमने अब भी मुझे स्वीकार न किया तो मै तुम्हारे प्राणप्रिय पुत्र को इसी प्रकार काट डालूगा। क्या तुम अपने पुत्र की भी रक्षा नही करना चाहती? समझ लो, सोच देखो। मगर अधिक विलम्ब मत करो। उत्तर दो।

कर्मदेवी सती स्त्री थी। वह पति की हत्या से विचलित नही हुई और पुत्र की हत्या की धमकी भी उस पर असर न कर सकी। उसने सिहनी की भांति कडक कर उत्तर दिया– राजा, तू सत्ता के मद मे उन्मत्त हो रहा है। तुझे तनिक भी विवेक नही रहा। मैं अपने पतिदेव की रक्षा नहीं कर सकी, मगर याद रखना शीघ्र ही एक दिन आएगा जब तू आप–अपनी रक्षा करने मे असमर्थ हो जाएगा। तेरी इस नृशसता और लम्पटता की कहानी इतिहास मे काले अक्षरो मे लिखी जाएगी। तेरी यह गौरवगाथा तेरी सन्तान और दूसरे लोग घृणा और लज्जा के साथ पढेगे और अनन्तकाल तक तेरे नाम पर थूकते रहेगे। गुजरात के कलक! आज जो चाहे कर ले। मेरे पुत्र का घात करके भी

हो गया। कर्मदेवी दुनिया की दृष्टि मे अबला ही थी, मगर उसमे सतीत्व का जो असाधारण सामर्थ्य था, उसके कारण वह सबला ही नही वरन् प्रबला भी थी। ऐसी देविया ससार का सिगार हैं।

सिद्धराज की एक ऐसी ही भद्दी-से-भद्दी करतूत इतिहास मे और लिखी गई है। वह इस प्रकार है-

एक बार पाटन के राज्य मे दुष्काल पडा। सिद्धराज ने पाटन की प्रजा की रक्षा के लिए प्रजा को मजदूरी देने के अभिप्राय से सहस्रलिग नामक तालाब खुदवाना आरम्भ किया।

पाटन की ही भाति मालवा मे भी उस समय दुर्भिक्ष पडा हुआ था मालवा के लोग जीवन-निर्वाह के लिए देश-विदेश जा रहे थे। मालवा के रहने वाले ओड जाति के एक कुटुम्ब ने पाटन मे विशाल तालाब खुदने का समाचार सुना। यह सुनकर वह कुटुम्ब भी पाटन के सहस्रलिग तालाब का काम करने गया। उसे काम मिल गया। मिट्टी खोदने और ढोने का काम उस परिवार को सौंपा गया।

ओड लोगो मे टीकम नामक एक ओड था। उसकी पत्नी जसमा अद्वितीय सुन्दरी थी। मगर वह केवल सुन्दरी ही नही, साहस, चतुरता और विलक्षणता की भी मूर्ति थी। उसमे ऐसा साहस था कि उसने गुजरात के राजा सिद्धराज के भी छक्के छुडा दिए। जाति से ओड होने पर भी जसमा ने जिस साहस और वीरता का परिचय दिया, धर्म मे जैसी दृढता दिखलाई, वैसा करना कई-एक राजकुल की स्त्रियो के लिए भी कठिन है।

तालाब की खुदवाई का काम चल रहा था। ओड परिवार के पुरुष मिट्टी खोदते थे और स्त्रिया उसे उठा-उठा कर बाहर फेकती थी। जसमा भी मिट्टी ढोती थी। उसके एक छोटा सा बालक था। जसमा ने सोचा- 'बालक की रक्षा करना तो मेरा आवश्यक कर्त्तव्य है ही, मगर अपने पति की सहायता करना भी कम आवश्यक नही है। अपना बोझ पति पर डालना उचित नही हे। स्त्री के अर्धांगिनी होने की परीक्षा ऐसे ही आडे समय मे होती है।'

जसमा ने तालाव के किनारे एक बरगद के वृक्ष पर ऐसा मौका देखकर झूला बाध दिया कि वह मिट्टी फेकने के लिए आते-जाते समय बालक को देखती जाए और झुलाती रहे।

तालाव के काम का निरीक्षण करने के लिए सिद्धराज स्वय आया करता था। एक दिन जसमा पर उसकी दृष्टि पड गई। सिद्धराज की आखो मे जसमा का रूप-लावण्य खटक गया। उसका सौंदर्य देखकर उसकी

वासना भडक उठी। सिद्धराज मन–ही–मन विचार करने लगा–'अहा! क्या रूप–लावण्य है! मेरी रानिया तो इसके पैर के अगूठे की बराबरी नही कर सकती। यह अनमोल रतन राजमहल मे शोभा दे सकता है। यह साधारण मजदूरिन है, विपदा की मारी है और मै हू गुजरात का प्रतापशाली अधिपति– इसे प्राप्त कर लेना तो मेरे बाए हाथ का खेल है। इसका सुदर रूप देखकर जान पडता है, मानो कर्मदेवी ही नया अवतार लेकर जन्मी हो। जैसे भी हो, इसे हथियाना होगा। गुदडी के इस लाल को राजशय्या का आभूषण बनाकर इसका उद्धार करना ही चाहिए।'

राजा सिद्धराज धीरे–धीरे जसमा के पास आ पहुचा। एक ओर गुजरात का वीर राजा सिद्धराज और दूसरी ओर ओड जाति की गरीब मजदूरिन है। कामी पुरुष की जघन्य लालसा हृदय मे पैदा होती है और आखो के रास्ते बाहर फूट पडती है। उसके नेत्र ही उसके दिल का भेद जाहिर कर देते है। कौन जाने, कामी इस तथ्य को समझते हैं या नही? मगर कामान्ध पुरुष कैसे समझ सकते हैं? लेकिन आखो की यह नीरव भाषा पढने मे स्त्रिया कभी भूल नही करती। वे चट से ताड लेती है। फिर जसमा जैसी विचक्षण स्त्री के लिए तो यह समझना कोई बडी बात नही थी। सिद्धराज जैसे ही जसमा की ओर बढा कि वह समझ गई। वह जरा दूर हट गई।

सिद्धराज ने जसमा से कहा– 'क्या तुम्हारा यह सुकुमार शरीर मिट्टी उठाने के लिए है जसमा? जिस शरीर की रचना करने मे विधाता ने

अक्सर लोग परिश्रम से वचना चाहते हैं। मेहनत न करनी पडे, मगर भरपेट भोजन और आमोद–प्रमोद के साधन मिल जाए तो बस, धरती पर ही उन्हे स्वर्ग दिखाई देने लगता है। पुण्य का प्रताप ही क्या, जो बिना मेहनत किए खाना न मिला। अपनी कमाई का अन्न खाकर जीने का तत्त्व बहुत कम लोगो ने सीखा है। जसमा ऐसे ही व्यक्तियो मे थी।

जसमा ने कहा– मै बिना मेहनत किए, बैठी–बेठी खाना पसद नही करती। बैठी–बैठी खाऊ तो अनेक रोग हो जाए और फिर इलाज के लिए वैद्य फीस मागे तो मैं गरीब मजदूरिन कहा से दू?

हिस्टीरिया का रोग, जिसे अशिक्षित स्त्रिया भेडा या चेडा कहती है और जिसके होने पर मीरा दाता आदि स्थानो पर रोगी को ले जाया जाता है, बैठे रहने, परिश्रम न करने से होता है। यह रोग प्राय धनिक स्त्रियो को ही होता है, गरीब स्त्रियो को नही। गरीब स्त्रिया श्मशान के पास रहने पर भी इस रोग का शिकार नही बनती और अमीर स्त्रियो को बन्द घर मे बैठे भी यह रोग हो जाता है। असली बात तो यह है कि जो स्त्रिया आलसी होती हैं, परिश्रम नहीं करतीं, उन्हीं को यह भयानक बीमारी घेरती है। मगर अशिक्षा ओर कुसस्कारो के कारण लोग वास्तविकता को न समझ कर देवी–देवता की मिन्नत–पूजा करते है और डाक्टरो का बिल चुकाते–चुकाते परेशान हो जाते हैं। भोपा लोगो को, जो भैरवजी का प्रसाद डकार जाते हैं, कोई बीमारी नही होती, लेकिन भैरवजी को मानने वाले अगर उन्हे चढावा न चढावे तो अपनी हानि समझते हैं। यह सब भ्रम की बाते हैं। वास्तविक बात यह है कि परिश्रम न करने से ही हिस्टीरिया की बीमारी होती है।

जसमा पढी–लिखी न होने पर भी परिश्रम का मूल्य समझती थी। उसने सिद्धराज से कहा– 'मैं काम करके खाती हू। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा हे। मेरे सम्बन्ध मे आप चिन्ता न करे।'

जसमा का यह उत्तर सुनकर सिद्धराज ने सोचा– जसमा साधारण स्त्री नहीं मालूम होती। सोन्दर्य–सम्पत्ति के साथ उसमे बुद्धि की विभूति भी है।'

सिद्धराज प्रकट मे वोला– 'जसमा, में कहता हू, तू जगल मे भटकने ओर सुवह से शाम तक मजदूरी करने के लिए नही है। तू अपने सोन्दर्य को, अपनी सुकुमारता को अपने असली स्वरूप को नही समझती, क्या तेरा यह फूल–सा कोमल शरीर मिटटी ढोने के लिए हे? तू मेरे शहर मे चल। पाटन

शहर देखकर ही तू चकित रह जायेगी। पाटन इस पृथ्वी पर स्वर्ग है। शहर मे तुझे अच्छी आराम की जगह दिला दूगा।

जसमा समझ गई कि इससे पहले जो प्रलोभन दिया था, उसमे न फसती देख अब और बडे प्रलोभन मे फसाना चाहता है। मस्तक से विचार करने वाले के लिए राजा की बात ठीक हो सकती है। मस्तक आराम ढूढता है लेकिन हृदय कुछ और ही कहता है। आधुनिक शिक्षा ने मस्तिष्क का विकास चाहे किया हो, मगर हृदय के विचारो को नष्टप्राय कर दिया है।

राजा की बात सुनकर जसमा बोली– 'कहा तो प्रकृति की स्वच्छन्द लीला का धाम स्वभाव से सुन्दर, आनन्ददायक जगल और कहा निगोडा नगर जहा गदगी की सीमा नही। जिस प्रकार गर्मी के मारे कीडे–मकोडे निकल कर रेगते हैं, उसी प्रकार नगरो के तग मार्ग मे मनुष्य फिरते हैं। जगल मे मगल रहता है। जगल सरीखी स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहर मे कहा? जगल की अपेक्षा नगर अच्छा होता तो बडे–बडे महात्मा नगर छोड कर जगल मे क्यो रहते? रामचन्द्रजी वन–वास करने के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए। अगर वह नगर मे ही रहे होते तो उन्हे कौन पूछता? अपनी नागरिक सभ्यता प्रदान कर हमे असभ्य बनाने का अनुग्रह हम पर न कीजिए। हमारा बिगाड हमे प्रिय है और आपका सुधार आपको मुबारक हो। हमारी दृष्टि मे आपके सुधार से हमारा बिगाड लाख दर्जे श्रेष्ठ है।"

भारतवर्ष की सभ्यता और सस्कृति का निर्माण कहा हुआ है? जगल मे या नगर मे? जगल ने भारतवर्ष को अनुपम विभूतिया प्रदान की हैं, वे सारे ससार मे भारत का गौरव बढाने वाली हैं। जगलो ने एक–से–एक उच्चकोटि के महापुरुष विश्व को दिये हैं जगल ने दर्शनशास्त्र दिया, अध्यात्मवाद दिया, विज्ञान दिया कला–कौशल दिया और क्या नही दिया? मनुष्य समाज मे अगर कोई उत्तमता है तो वह जगल की ही देन है। जगल की बदोलत ही

घबराहट पैदा करने वाली हवा! एक जगह नरक का आभास मिलता है और दूसरी जगह स्वर्गीय दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

राजा जसमा का उत्तर सुन पशोपश मे पड गया। उसने सोचा– जसमा इस फन्दे मे भी नही फसी। अब उसने एक नया तरीका अख्तियार किया।

राजा ने कहा– 'जसमा! जान पडता है, तेरी बुद्धि बिगडी हुई है। गवारो का दिमाग ही उलटा होता है। उन्हे सीधी बात भी उलटी मालूम होती है। गवारो के साथ रहती–रहती तू भी गवार हो गई है। इसी कारण अधिक मनुष्यो को देखकर तुझे घबराहट होती है। अधिक मनुष्य मे रहना बडे भाग्य से मिलता है। शहरो का वास बहुत उपयोगी होता है। तू मगज की हलकी है। बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद? तू जगल मे रहने वाली शहरो के मजे क्या समझ सकती है? जगल जगली जानवरो के बसने की जगह है। तेरे लायक तो पाटन जैसा शहर ही है। तू चल! तुझे शहर मे रहने के लिए बहुत बढिया स्थान दिला दूगा।'

उत्तर मे जसमा ने कहा– 'आप मेरी ढिठाई ही समझ ले कि मै आपको उत्तर देने का साहस कर रही हू लेकिन सौ बातो की एक बात यह है कि जैसे आपको नगर प्रिय है वैसे ही मुझे जगल प्रिय है। शहरो के आदमी जेसे मन के मैले होते है, जगल के नही होते।'

बडे–बडे शहर पाप के किले बन रहे है। चोर, जुआरी, भगेडी, गजेडी, शराबी आदि सभी प्रकार के विकारी मनुष्य शहरो मे होते है। शहर मे बहुत–से लोग विकारो से भरे हुए ही सम्मिलित होते है। देहात मे सोने–चादी की चीजे पडी मिल जाएगी तो देहाती आदमी उसके मालिक के पास पहुचाने की इच्छा करेगा, लेकिन नगर के लोग छोटी–से–छोटी चीज के लिए भी हत्या जैसा क्रूर कर्म करने पर उतारू हो जाते है। ग्रामो की अपेक्षा नगरो मे बीमारिया ज्यादा होती है। डाक्टर की राय से बीमार लोग जगल मे रहने के लिए जाते है।

जसमा कहती है– जैसे नगरो के मार्ग सकीर्ण होते हे, उसी प्रकार वहा के निवासियो के हृदय भी सकीर्ण होते हैं। जेसे शहरो मे बदबू होती है, उसी प्रकार वहा के लोगो के हृदय मे भी वासनाओ और विकारो की बदबू होती है। आप कहते हे कि जगल पशुओ के रहने की जगह हे परन्तु क्या नगर मे नर–पशु नही रहते? जगल क्या महात्माओ का प्रिय आवास नही हे? खेर में जगल मे रहना ही पसन्द करती हू, मुझे जगल प्रिय हे। आपको जगल

बुरा लगता है, यह कोई आश्चर्य की बात नही। जहर के कीडे जहर मे रहना ही पसन्द करते हैं।

राजा– 'जसमा, तू बडी चतुर है। तेरी बुद्धि तारीफ के लायक है, मगर जान पडता है तूने शहर की गलिया ही देखी है, मेरा राज–दरबार नही देखा। चल कर देख तो सही, वह कितना स्वच्छ, भव्य और विशाल है। राजमहल कितने सुन्दर बने हुए है। कैसा सुन्दर बगीचा लगा है, तुझे इतना बढ़िया महल रहने को मिल जाय तो क्या हर्ज है?'

जसमा– 'महाराज! जगल के सामने बगीचा क्या चीज है? जगल प्राकृतिक रचना है और बगीचे मे बनावट होती है। सूर्य के सामने जैसे तारे फीके दिखाई पडते हैं, उसी प्रकार जगल के सामने बनावटी बगीचे मालूम होते है। जो जगल मे नही रह सकता हो, वह भले ही बगीचे मे जाय, राजमहल मे निवास करे परन्तु मुझे बाग या महल की आवश्यकता नही। प्राकृतिक जगल को छोडकर नकली बगीचे मे रहना कौन पसन्द करेगा? मै असली जगल मे ही भली हू।'

राजा– 'इतनी जिद्द! मै गुजरात का राजा हू और तू एक मामूली मजदूरिन है। मेरे सामने इस प्रकार की बाते करते तुझे शर्म मालूम नही होती? तू मेरा कहना मान ले। जगल मे रह कर अपने सुन्दर शरीर का नाश मत कर। शहर मे चल। वहा तुझे मृदग के मीठे स्वर और गान की मधुर तान सुनने को मिलेगी।'

जसमा मे जो शक्ति थी, वह आज हिन्दुस्तान मे होती तो हिन्दुस्तान कौन जाने कैसा देश होता? जहा प्रलोभन है, वहा शक्ति और साहस कहा? विदेशी वस्तुओ के आकर्षण मे भारतीय जनता बुरी तरह लुभा गई है। आज यह दशा है कि जिसके घर मे विलायती वस्तुए नही वह घर नही जगल माना जाता है। अगर सामान्य हिन्दुस्तानियो की तरह जसमा लोभ मे पड जाती तो क्या उसका सतीत्व की अनमोल निधि सुरक्षित रहती है? हर्गिज नही। आज लोग फैशन की फासी मे बुरी तरह फस गए हैं।

दूषित है कि वह बालको के जीवन–सुधार की ओर जरा भी ध्यान नहीं देती। मगर यह सब कहे कौन? अगर कोई कहता भी है तो वह राजद्रोही समझा जाता है।

सिद्धराज से जसमा कहती है– 'तुम्हारे गिद्धो और वाजो मे विष भरा है। मेरा मन उस विष की ओर नहीं जाता। मुझे तो जगल मे रहने वाले मोर, पपीहा और कोयल की मीठी ध्वनि ही भली लगती है। मेरे कान इन्हीं की मधुर टेर के अभ्यासी हैं।'

कोयल को चाहे सोने के पिजरे मे रखो और उत्तम–से–उत्तम भोजन दो, फिर भी वह आनन्दविभोर होकर नहीं बोलेगी। उसकी मस्त टेर आम की मजरी पर ही सुनाई देगी। वह परतत्र होकर नही बोलेगी, स्वतत्र होकर ही कूकेगी।

जसमा कहती है– 'कहा तो मोर, पपीहा और कोयल का निसर्ग–सुन्दर मधुर गान और कहा निर्जीव बाजो की आवाज! मोर, पपीहा और कोयल की अमृतमय ध्वनि मे जो आकर्षण है, जो मनोहरता है, मिठास है वह नकली गीतो मे कहा? मुझे तो इन पक्षियो की बोली ही प्यारी लगती है महाराज, मैं मूर्ख और गवारिन जो ठहरी!'

'मोर, पपीहा और कोयल की टेर से आज तक किसी मे बुरी बात पैदा हुई है?'

'नहीं।'

और वेश्या के नाचो से कोई सुधरा है?

'नहीं।'

जसमा का निर्भीक और निश्चित उत्तर सुन कर भी सिद्धराज ने हार न मानी। वह कहने लगा– 'पगली जसमा! मेरी बात पर भलीभाति विचार कर देख।' क्यो कि इस जगल मे अपना सुन्दर जीवन वृथा बर्बाद कर रही है? तुझे अत्यन्त सुन्दर महल रहने को मिलेगा। बहुत सी दासिया तेरा हुक्म बजाने को तैयार रहेगी। मेरे पास हाथी, घोडे, रथ आदि सभी कुछ हें। वे सव तेरे होगे। तेरा अच्छा स्वभाव देखकर ही तुझसे आग्रह करता हू। ऐसे स्वभाव वालो से प्रीति करना राजाओ का धर्म है।

राजा की नीयत को जसमा पहले ही ताड गई थी। अव उसके वाक्यो से वह एकदम स्पष्ट हो गई। जसमा बोली– 'महाराज! मुझे महलो की आवश्यकता नहीं हे। मुझे झोपडी ही पसन्द हे। मेंने महलो पर चढना सीखा ही नहीं। में स्वय अपने पति की दासी हू। मुझे ओर दासियो का क्या करना

है? दासी होने के साथ मैं अपने पति की स्वामिनी हू। ऐसी दशा मे दासियो की स्वामिनी बनकर क्या करूगी?

सिद्धराज– 'ओडन, चलो। क्यो रूखी–सूखी रोटियो पर गुजर करती हो? मैं तुझे मेवा, मिष्ठान्न और षट्–रस दूगा। तू जानती है, मैं गुजरात का स्वामी हू। असीम सम्पति और ऐश्वर्य मेरे यहा बिखरा पडा है। सोच ले, ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। अभी राजमहल का द्वार तेरे लिए खुला है, जिसके लिए अप्सराए भी तरसती होगी।

जसमा–'आप बडे दयालु हैं। इसी कारण मुझे पकवान और उत्तम भोजन खिलाना चाहते हैं। मगर मुझ अभागिन के भाग्य मे यह सब कहा है? मेरे पेट ने तो मक्की की घाट खाना ही जाना है। वह पकवानो को पचा नही सकता। मुझे राब और दलिया भला। पकवान और मेवा–मिष्ठान्न आपको मुबारक हो। आपके पास हाथी हैं, घोडे हैं, मगर मैं उन पर सवारी करने मे डरती हू। कही गिर कर मर गई तो? मेरे लिए मेरी भूरी भैंस ही भली है जो दूध–दही देती है और हम सब आनन्द के साथ खाते हैं।

'ससार का काम घोडे से चलता है या भैंस से?'

'भैस से।'

लेकिन असल बात को लोग भूल जाते हैं, इसी कारण लोग घोडे को पसन्द करते हैं।

सिद्धराज– 'क्या तुम ऐसे फटे–पुराने और मोटे कपडे पहनने के लिए जन्मी हो? मै ऐसे मुलायम और बारीक वस्त्र दूगा कि तुम्हारा एक रोम भी छिपा न रहेगा। तुम्हे हीरा और मोती के सुन्दर गहने पहनने को मिलेगे।'

जो स्त्रिया शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण समझती हैं उनके सामने बढिया वस्त्र और हीरा–मोती के आभूषण की क्या कीमत हो सकती है? [illegible] इन्द्राणी बना देने का प्रलोभन भी नही गिरा सकता। शील का सिगार [illegible] वाली के लिए यह तुच्छ – अतितुच्छ है। सच्ची शीलवती अपने शील [illegible] मूल्य देकर कदापि उन्हे लेना नही चाहेगी।

और बारीक कपडे तो निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन है। कुलीन [illegible] ये शोभा नही देते। खेद है कि आजकल बारीक वस्त्रो का चलन [illegible] है। यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते हैं?

नही।

बारीक वस्त्र लाज ढक सकते हैं? इन बारीक वस्त्रो की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका बयान नही किया जा सकता।

गहनो और वस्त्रो का लालच स्त्रियो के लिए साधारण नहीं है। लेकिन जसमा साधारण स्त्री भी नही है। वह कहती है– 'मुझे बारीक कपडे नही चाहिए। मेरे शरीर पर तो खादी के कपडे ही ठहर सकते हैं। बारीक कपडे पहन कर मैं मजदूरी कैसे कर सकती हू?'

मोटे कपडे मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन कपडे मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपडा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेने मे भी सकोच करती है, इस डर से कि कहीं कपडो मे धूल न लग जाए। इस प्रकार बारीक कपडो ने सन्तान–प्रेम भी छुडा दिया है।

जसमा कहती है– 'मुझे न बारीक वस्त्रो की आवश्यकता है, न हीरो और मोतियो की ही। हीरा–मोती पहनने से तो जान का खतरा बढ जाता है। मेरा पति आभूषणो के बिना ही मुझे प्रेम करता है। फिर और सिगार की मुझे क्या आवश्यकता है? मैं अपने पति को ही प्रसन्न रखना चाहती हू। मुझे औरो की प्रसन्नता से कोई मतलब नही।

राजा सभी प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने उद्देश्य मे सफल न हो सका। उसने अनेक फन्दे फैलाये, फिर भी शिकार न फसा। तब कुछ–कुछ निराश–भाव से राजा ने कहा–'तू जिस पति को प्रसन्न करना चाहती है, उसे दिखा तो सही। कौन है तेरा पति? देखू, वह कैसा है?

बडे–बडे महलो मे और बडी–बडी हवेलियो मे रहने वालो के लिए दाम्पत्य–प्रेम का क्या मूल्य?

दाम्पत्य– प्रेम की कीमत जगल वाले ही जानते हैं। सीता और राम ने अपने दाम्पत्य– प्रेम की वृद्धि जगल मे ही की थी। विषय– भोग के कीडे दाम्पत्य–प्रेम की पवित्रता को क्या समझेगे?

जसमा ने कहा– 'वह जो कमर कस कर काम कर रहा हे, जिसके हाथ मे कुदाली हे, जो अपने साथियो को साहस बधाता हुआ मिट्टी खोद रहा है ओर जो मिट्टी खोदने मे सबसे आगे हे, जिसकी कुदाली की चोट से पृथ्वी कापती है और जिसके सिर पर फूल गुथे हैं, वही मेरा पति हे, मेंने उसके सिर पर फूल गूथ दिये हें, जिससे थकावट के समय उसे विश्राम मिले।'

जसमा के पति का नाम टीकम था। टीकम की ओर देखकर सिद्धराज ईर्ष्या से जल–भुन गया। उसने जसमा से कहा–'बस, यही तेरा पति है? कोवे के गले मे रत्नो की माला? उस मिट्टी खोदने वाले मजदूर के लिए

तू मेरा अपमान कर रही है? हसनी कौवे के पास नही सोहती, जसमा! हसनी की शोभा हस के साथ रहने मे ही है। तू मेरे महल मे चल। तेरी शोभा महलो मे बढ़ेगी। तेरे पति को तुझ पर विश्वास भी नही है। देख न, तेरी ही तरफ वह टेढ़ी-टेढ़ी नजरो से देख रहा है। उसकी नजर से साफ मालूम होता है कि उसका तेरे ऊपर न प्रेम है, न विश्वास ही है। ऐसा आदमी तेरी कद्र क्या जाने? ऐसे अविश्वासी पति के साथ रहना घोर अपमान है। तू चिन्ता मत कर, तुझे रानी बना दूगा।

सचमुच टीकम इसी ओर देख रहा था। वह सोचता था– 'राजा मेरी स्त्री से क्या बात कर रहा है?'

राजा ने साम और दाम से काम लेने के बाद भेद-नीति से काम निकालने की चेष्टा की। मगर जसमा को फुसलाना बालू से तेल निकालना था।

जसमा कहने लगी– 'राजा साहब, कहावत मशहूर है 'साच को आच नही'। सत्य सदैव निर्भय होता है। मेरे पति को मुझ पर पूर्ण विश्वास है। मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषो को भाई के समान समझती हू। पारस्परिक अविश्वास की भावना तो राजघरानो की ही सम्पत्ति है। हम दरिद्रो को यह सम्पत्ति कहा नसीब होती है? अगर मुझे अपने पति पर अविश्वास हो तो उसे मुझ पर भी अविश्वास हो सकता है। मगर ऐसा नही है। मेरा पति आपको देख रहा है क्योकि आपकी दृष्टि बिगडी हुई है।'

राजा ने देखा भेदनीति भी यहा कारगर सिद्ध नही हो सकती । तब सिहराज ने कड़क कर कहा– 'जसमा होश सम्भाल। तू जानती नही , मैं वो हू कि बड़े-बड़े शूरवीर राजा और महारथी भी मेरे चरणो मे सिर झुकाते

'बडे–बडे सूरमाओ को अपने चरणो मे झुकाने वाला वीर एक मजदूरिन के तलवे चाटने को तैयार हो जाय, यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है? महाराज, आपकी बहादुरी का इससे बढकर और क्या सबूत हो सकता है? हा, मैं जानती हू कि आप गुजरात के स्वामी हैं और मैं असहाय स्त्री हू। मैं यह भी जानती हू कि रावण लका का प्रचण्ड प्रतापी राजा था और उसके पजे मे पडी सीता असहाय थी। मगर सीता ने अपना धर्म नहीं छोडा। आप पूछते हैं– मेरे पास क्या बल है? मेरे पास सतीत्व की शक्ति है, जो तीन लोक मे अजेय है और जिस शक्ति की बदौलत सीता आज भी अमर है।'

आपने बडे–बडे राजाओ को वश मे किया है, यह ठीक है। किन्तु आपका बल काया और माया पर ही तो है। आत्मा इन दोनो से जुदा है। मेरे गुरु ने यह बात मुझे पहले से ही बता रखी है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

गीता, 1 / 22 /

आत्मा उसी प्रकार शरीर बदलती है, जिस प्रकार पोशाक बदली जाती है। शरीर का नाश है, लेकिन आत्मा का नाश नहीं है। मेरे लिए जीवन–पर्यन्त वही पति है। वह अच्छा है तो मेरा है और बदसूरत है, मजदूर है तो भी मेरा ही है। प्रेम से उसके साथ विवाह किया है, तो उसके प्रेम मे प्राण भी दे सकती हू। ससार की कोई भी शक्ति उसे मेरे हृदय से अलग नही कर सकती।

राजाजी, आपको–अपने उत्तरदायित्व का विचार करना चाहिए। आप प्रजा के पालक हैं, प्रजा के पिता हे, प्रजा के आदर्श है। प्रजा राजा का अनुकरण करती हे–'यथा राजा तथा प्रजा।' सदाचार की सीमा की रक्षा करना आपका उतना ही आवश्यक कर्त्तव्य हे, जितना राज्य की सीमा की रक्षा करना। बल्कि सदाचार की रक्षा, राज्यरक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हे। आप सदाचार को तिलाजलि दे देगे तो राज्य भर मे दुराचार का दोर–दोरा हो जाएगा। रक्षक ही भक्षक बन जाएगे तो पृथ्वी केसे स्थिर रहेगी? अतएव आप–अपने पद का विचार कीजिए। न्याय–नीति का त्याग न कीजिए। आप मुझे होश मे आने को कहते हें लेकिन होश मे आने की आवश्यकता आपको ही हे। में होश मे ही हू, अव क्या होश मे आऊगी।'

'वह मेरी अन्तिम प्रार्थना हे। मेंने अव तक आपसे वातचीत की हे। लेकिन अव में समझ गई कि आप मेरे पति के शत्रु हें। में अपने पति के शत्रु

अपने महल मे सजा लेना। यह तेरी लम्पटता की, तेरी कामुकता की और तेरी नीचता की गौरव–गाथा सुनाता रहेगा।

पतिव्रता जसमा ने अपने प्राण क्या दिये, जगत् को एक उज्ज्वल आदर्श प्रदान किया। उसने अपने सतीत्व की रक्षा ही नहीं की, नारी के गौरव की और सम्मान की भी रक्षा की। वह मर कर भी चिर–अमर हो गई। जसमा का जस इतिहास के पृष्ठो पर सुनहरे अक्षरो मे चमक रहा है। आज भी लोग इससे प्रेरणा पाते हैं।

कहते हैं– सती जसमा ने मरते–मरते सिद्धराज को शाप दिया था–'राजा, तेरा तालाब खाली रहेगा ओर तेरा वश नही चलेगा।'

यह सब देख और सुनकर राजा का दिल दहल गया। उसे अपनी करतूत का पछतावा होने लगा। तालाब खाली रहा।

जसमा ने कौन–सा शास्त्र पढा था, किस गुरु ने उसे शिक्षा दी थी, यह नहीं कहा जा सकता। तथापि इसमे सन्देह नही कि वह सच्ची पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मर्म उसने भली–भाति समझा था।

मैंने व्याख्या मे कहा था–

श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राणहमारो छे।

इस प्रार्थना मे बतलाया गया है कि राजमती के प्यारे नेमीश्वर हमे भी प्यारे लगते हैं। जसमा ने अपने पति टीकम के लिए गुजरात के प्रतापी राजा को भी ठुकरा दिया, तो क्या हमारा भगवान् टीकम से छोटा है? 'नही।'

तो फिर उस भगवान् को मोहनगारो बनाकर ससार के कलुषित सुखो को आप भी लात क्यो न मार दे? भगवान् को मोहनगारो मान कर धर्म का पालन करोगे तो परम कल्याण के भाजन बनेगे।

ईश्वर की खोज

श्री महावीर नमू वर नाणी।
शासन जेहना जाण रे प्राणी।।

यह चौबीसवे तीर्थकर भगवान् महावीर की प्रार्थना है। आज जो संघ विद्यमान है वह भगवान् महावीर का ही है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यह चतुर्विध सघ भगवान् महावीर ने ही स्थापित किया है।

आज भगवान् महावीर स्थूल रूप मे हमारे सामने नही हैं, लेकिन जिसे भगवान् महावीर पर श्रद्धा है, उसे समझना चाहिए कि चतुर्विध सघ मे ही भगवान् महावीर है। भगवान् तीर्थकर थे और तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते है। आज तीर्थकर नही है, लेकिन उनके बनाये तीर्थ मौजूद है। जिस कारीगर का बनाया हुआ किला विशाल और सुदृढ है तो निश्चय ही वह कारीगर बड़ा विशाल होगा। जिसका सघ आज हजारो वर्ष की नींव हो जाने पर भी मौजूद है उस सघ का सस्थापक कोई होना ही चाहिए और इस प्रकार महावीर भगवान् सघ के रूप मे पत्यक्ष है।

व्यावहारिक दृष्टि से हममे और भगवान् मे समय का बहुत अन्तर है, और गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय मे ही थे। भगवान् ने तो

प्रश्न होता है, भगवान् स्वय मौजूद थे, फिर उन्होने गौतम स्वामी से क्यो कहा कि आज तुझे जिन नहीं दिखलाई देते? इस कथन का अभिप्राय क्या है?

इस गाथा का अर्थ करते हुए डॉक्टर हर्मन जैकोबी भी गड–बड मे पड गये थे। अन्त मे उन्होने यह गाथा प्रक्षिप्त (बाद मे मिलाई हुई) समझी। उनकी समझ का आधार यही था कि खुद भगवान् महावीर बैठे थे, फिर वे कैसे कह सकते थे कि आज तुझे जिन नहीं दिखते? इस कारण उन्होने लिख दिया कि यह गाथा प्रक्षिप्त है।

डॉक्टर हर्मन जैकोबी की दौड यही तक रही लेकिन वास्तव मे यह गाथा प्रक्षिप्त नहीं है, सूत्रधार की ही मौलिक रचना है। भगवान् महावीर केवलज्ञानी जिन थे और गौतम स्वामी छद्मस्थ थे। केवल ज्ञानी को केवल ज्ञानी ही देख सकता है, छद्मस्थ नहीं देख सकता। अगर गौतम स्वामी, जो छद्मस्थ थे– केवलज्ञानी को देख लेते, तब तो वह स्वय उसी समय केवलज्ञानी कहलाते। आचाराग सूत्र मे कहा है–

'उवएसो पासगस्स नत्थि।'

अर्थात्– सर्वज्ञ के लिए उपदेश नहीं है।

इस गाथा से और ऊपर की गाथा से प्रकट है कि गौतम स्वामी उस समय छद्मस्थ थे। इस कारण उन्हे पूर्ण करने के लिए भगवान् ने उपदेश दिया। भगवान् के कथन का अभिप्राय है कि –हे गौतम! तेरी छद्मस्थ –अवस्था के कारण मैं तुझे केवलज्ञानी नहीं दिखता। मेरा जिनपना तुझे मालूम नही होता। क्योकि शरीर जिन नही है और जिन शरीर नही है।

जिनपद नहीं शरीर को, जिनपद चेतन मांय।
जिन वर्णन कुछ और है, यह जिन वर्णन नांय।

साधारण जनता नेत्रो से दिखाई देने वाले अष्ट महाप्रतिहार्य को जिन समझती है, लेकिन यह महाप्रतिहार्य जिन नही हे। ऐसे महाप्रतिहार्य तो मायावी– इन्दजालिया भी अपनी माया से रच सकते हैं। वास्तव मे जिन तो चेतना हे और उस चेतन रूप जिनको जिन ही प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

इस कथन का आशय यह नहीं है कि जिन भगवान् का शरीर भी नहीं दिखता। इसका ठीक आशय यह है कि जिन दशा वास्तव मे आत्मा की ही होती हे ओर उसे केवलज्ञानी के सिवाय दूसरा कोई नही देख सकता।

तव प्रश्न उपस्थित होता हे कि साधारण आदमी उस पर श्रद्धा केसे करे? जिन को हम पहचान नहीं सकते। ऐसी अवस्था मे कोई भी हमे कह

सकता है कि मै जिन हू। जब हमे जिन दिखाई नही देते तो हम किसे वास्तविक जिन माने और किसे न माने?

इस विषय मे शास्त्र कहते हैं– बिना प्रमाण के किसी को जिन न मानना ठीक ही है, लेकिन जिन भगवान् को पहचानने के लिए तुम्हारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण का साधन नही है। जिन को केवली ही प्रत्यक्ष से जान सकते है। तुम छद्मस्थ हो, इसलिए अनुमान से निश्चय करना होगा। अनुमान प्रमाण से किस प्रकार निश्चय होता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए।

एक आदमी यमुना नदी को बहती देखता है। वह प्रत्यक्ष से यमुना को बहती देख रहा है, लेकिन कालिन्दी कहलाने वाली और कालिजर पहाड से निकलने वाली यमुना का उद्गम स्थान उसे नही दिखता। उसे यह भी नही दिख पडता कि वह किस तरह समुद्र मे मिल गई है। इस प्रकार यमुना नदी सामने है मगर उसके आदि और अन्त उसे नजर नही आता, सिर्फ थोडा–सा मध्यभाग ही दिखाई देता है। इस मध्य भाग को देखकर मनुष्य को अपनी बुद्धि लगानी चाहिए कि जब इसका मध्य है तो आदि और अन्त भी होगा ही। हा अगर मध्य भाग भी दिखाई न दे और आदि–अन्त मानने को कहा जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा एक अश को देख कर दूसरे पर बिना देखे भी विश्वास करना न्याययुक्त है।

उदाहरण की यही बात गौतम स्वामी के लिए भी समझ लेना चाहिए। भगवान् कहते है गौतम! तू मुझे जबर्दस्ती जिन मत मान। किन्तु जैसे यमुना को देख कर उसका उद्गमस्थान और सगम स्थान मान लिया जाता है उसी प्रकार तू जिन के उपदिष्ट मार्ग को देखकर अनुमान से जिन को

गौतम! अगर मुझ पर तेरा विश्वास है, मेरे उपदेश की सत्यता तुझे अनुभव हो रही हो तो मेरा कहना मान। मेरा कहना यह है कि तू समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

प्रमाद मत कर यह भगवान का वचन अत्यन्त गम्भीर है। गौतम स्वामी बेले–बेले का पारणा करते थे। शरीर को तो मानो वह त्याग ही चुके थे। वह चौदह पूर्वो के ज्ञाता और सर्वाक्षर सन्निपाति थे। तप और सयम मे लीन रहते थे। ऐसी दशा मे उन्हे समय मात्र का भी प्रमाद न करने का उपदेश देने की क्या आवश्यकता पडी?

सर्वज्ञ के सामने गौतम स्वामी जैसे विशिष्ट श्रुतज्ञानी और साधारण जीव समान ही हैं। उनका उपदेश सबके लिए समान है। गौतम आदि के लिए उपदेश न देकर वे दूसरो को ही उपदेश दे, ऐसी बात नहीं है। यह बात दूसरी है कि भगवान् के उपदेश का जो सूक्ष्म रहस्य गौतम स्वामी ही ग्रहण कर सके थे, वह दूसरा ग्रहण न कर सका, फिर भी उपदेश तो सबके लिए समान ही था। उपदेश को ग्रहण करने की मात्रा तो श्रोता की अपनी शक्ति पर निर्भर करती है। सरोवर किसी को जल लेने से इनकार नही करता, लेकिन जिसके पास जितना बडा पात्र होगा, वह उतना ही जल ग्रहण करेगा। इसी प्रकार भगवान् का ज्ञान–सागर सबके लिए है। जिसका जितना सामर्थ्य हो, उतना ग्रहण कर ले। गौतम अधिक ग्रहण कर सके, दूसरे लोग उतना ग्रहण न कर सके।

भगवान् ने गौतम को सम्बोधन करके कहा कि एक समय मात्र मे भी प्रमाद मत करो। एक न्यायशील राजा यही कहेगा कि मेरा कानून प्रधान और प्रजा सभी के लिए समान हे। अगर कोई कानून प्रधान के लिए न हो और सिर्फ प्रजा के लिए ही हो तो उस कानून को बनाने वाला राजा न्यायशील नहीं कहला सकता। न्यायशील राजा वही हे जो सबके लिए समान कानून बनाता हे। जब राजा अपने प्रधान से भी यही कहेगा कि मेरा कानून तुम्हारे लिए भी हे, तब प्रजा आप ही काप जाएगी। वह सोचेगी– प्रधान को भी कानून की मर्यादा पालनी पडती हे तो हमारी क्या विसात? हमे तो पालनी ही पडेगी।

इसी प्रकार गोतम स्वामी मे विशेष प्रमाद नही हे फिर भी भगवान् ने उन्हे प्रमाद न करने की हिदायत की हे। इससे हमे यह समझ लेना चाहिए कि भगवान् ने यह बात हमारे लिए ही कही हे। भगवान् को गोतम स्वामी का जसा ध्यान था वेसा ही सवका था।

भगवान् तीर्थंकर हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र तीर्थ हैं और चतुर्विध सघतीर्थ के आधार हैं या यो कहिए कि जिसमे उपर्युक्त रत्नत्रय मिल गया वह तीर्थ है। जिसमे ये तीन रत्न नही हैं, वह तीर्थ नही–हड्डियो का ढेर है।

आज भगवान् नही दीखते, लेकिन उनका उपदेश किया हुआ मार्ग आज भी दीख रहा है। उनके द्वारा स्थापित तीर्थ आज भी विद्यमान है। इसे देखकर ही गौतम स्वामी ने भगवान् को केवलज्ञानी माना था। भगवान् का उपदेश किया हुआ मार्ग और स्थापित किया हुआ तीर्थ आज भी मौजूद हैं। इन्हे देखकर यह मानना चाहिए कि आज भी भगवान् मौजूद है।

ईश्वर चर्म–चक्षु से नही दीखता। हा, ईश्वर का शरीर चर्म–चक्षु से भले ही दिखाई दे और दिखाई देता भी है लेकिन ईश्वरत्व तो उसी को दीखेगा जो स्वय ईश्वर होगा। जो लोग ईश्वर को आखो से ही देखना चाहते हैं और देखे बिना उस पर विश्वास नहीं करना चाहते, वे भ्रम मे पडे हुए हैं। ईश्वर को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता है। दिव्य–दृष्टि प्राप्त करने के लिए योग साधना करना नही चाहते, फिर भी ईश्वर को देखना चाहते हैं, उनकी स्थिति बडी विचित्र है। उनका यह बालहठ ही कहा जा सकता है।

हमे अपने अनन्त सामर्थ्य पर विश्वास रखते हुए भी मौजूद असामर्थ्य को भूलना नही चाहिए। आत्मा मे अनन्त ज्ञानशक्ति है अनन्त दर्शनशक्ति है। आत्मा अनन्त वीर्य का भण्डार है, किन्तु आज वह अप्रकट है। अतएव हमे ईश्वर द्वारा उपदिष्ट तत्त्व को ही देखना चाहिए और यदि वह परिपूर्ण दिखाई दे तो उसके उपदेष्टा को भी परिपूर्ण समझ लेना चाहिए। इस प्रकार करने

भक्तो का कथन है कि ईश्वर को ढूढने के लिए इधर–उधर मत भटको। पृथ्वीतल बहुत विशाल है और तुम्हारे पास छोटे–छोटे दो पैर हैं। इनके सहारे तुम कहा–कहा पहुच सकोगे? फिर उतना समय भी तुम्हारे पास कहा है? ईश्वर को खोजने का ठीक उपाय यह नही है। मन को शान्त और स्वस्थ बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे ही निकट–निकटतर दिखाई देगा।

मो को कहाँ तू ढूंढे, मैं तो हरदम तेरे पास में।
ना मैं मदिर ना मैं मस्जिद ना काशी कैलास में।।
ना मै बैसूं आज द्वारिका, मेरी भेट विश्वास में।।मोको।

कस्तूरी मृग की नाभि मे ही होती है। लेकिन मृग यह बात नही जानता और कस्तूरी खोजने के लिए इधर–उधर दौडता फिरता है। घास पानी को सूघ–सूघ कर उसमे कस्तूरी खोजता हैं इस प्रकार कस्तूरी के लिए वह पागल होकर जगल–जगल भटकता फिरता है। उसे क्या मालूम है कि यह सुगध मेरे ही शरीर से आ रही है! इसी प्रकार आत्मा भी अज्ञानी बनकर ईश्वर की खोज करने के उद्देश्य से ससार मे भटकता फिरता है, लेकिन यह नही जानता कि ईश्वर जब मिलेगा तब अपने आप मे ही मिलेगा। उसकी भेट विश्वास मे है। यह बात जैन सिद्धात तो कहता है, वेदान्त, उपनिषद् और गीता सभी यही कहते हैं, इसमे तर्क या सदेह को स्थान नही है। जहॉ सदेह आया, चित्त मे चचलता उत्पन्न हुई कि ईश्वर दूर भाग जाता है।

जब तक कोई आप मे, अपने को पाता नही।
मोक्ष के मार्ग में हर्गिज, कदम जाता नहीं।।

ईश्वर को अपने आप मे खोजो। जेसे प्रकाश से सूर्य जाना जाता है, वेसे ही भगवान् के वचनो से भगवान् को समझो। भगवान् के वचनो से प्रकाश लेकर उनमे बुद्धि लगाओ। यह देखो कि जिन भगवान् का उपदेश पूर्ण है तो वे भगवान् केसे अपूर्ण होगे?

ससार मे रजोगुण, तमोगुण ओर सतोगुण की प्रकृति वनी रहती हे। तमोगुण की वृद्धि होने पर रजोगुण ओर सतोगुण दब जाते हें ओर आत्मा, महाशक्ति की उपेक्षा करके गडवड मे पड जाता हे। द्रोपदी के आख्यान से यह वात आपकी समझ मे अच्छी तरह आ जायेगी।

पाण्डवो के राजदूत बनकर जब श्रीकृष्ण कोरवो के पास सधि करने के लिये जाने लगे तब द्रोपदी ने कृष्ण से कहा–'में नही जानती थी कि पुरुप इतने मानहीन बुद्धिहीन ओर सत्वहीन होते हें। लोग स्त्रियो को कायर

बतलाते हैं, मगर पुरुषो की कलई खुल रही है। ऐसे पुरुषो से तो स्त्रियाँ ही अधिक बहादुर हैं।

फिर दुष्ट दुश्शासन हुआ था, मुदित जिनको खीचकर।
ले दाहिने कर मे वही, निज केश लोचन सीचकर।।
रख कर हृदय पर वाम कर ,शर विद्ध हरिणी सी हुई।
बोली विकलतर द्रौपदी, वाणी महा करुणामई–
करुणासदन! तुम कौरवो से, सधि जब करने लगो।
चिन्ता व्यथा सब पाण्डवो की, शान्ति कर हरने लगो।।
हे तात! तब इन मलिन मेरे, मुक्त केशो की कथा।
है प्रार्थना मत भूल जाना, याद रखना सर्वथा।।

द्रौपदी उग्र रूप धारण करके कृष्ण और पाण्डवो के सामने अपने हृदय के भाव प्रकट कर रही है। द्रौपदी का करुण–कथन सुनकर कृष्ण के रथ के घोडे और समस्त प्रकृति भी जैसे स्तम्ध्ध रह गए । सब लोग चकित रह गये। वे सोचने लगे–आज द्रौपदी अपने हृदय की सारी कथा शब्दो के मार्ग से कृष्ण के आगे उडेल रही है।

दु शासन द्वारा खीचे हुए केशो को अपने दाहिने हाथ मे कर और बायाँ हाथ अपनी छाती पर रखकर द्रौपदी ने कृष्ण से कहा–'प्रभो! आप सधि करने जाते है? और सिर्फ पाच गाव लेकर सधि करेगे? ठीक है, कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विशाल राज्य मे से केवल पाच गाव देकर सधि न कर लेगा? फिर आप सरीखे सधि कराने वाले दूत जहाँ है वहाँ तो कहना ही क्या है? वहाँ सधि होने मे शका ही क्या हो सकती है? आप सधि करके पाण्डवो की चिन्ता और उनके कष्ट हरने चले है लेकिन प्रभो! दुष्ट दु शासन का हाथ

मास–मदिरा मिली औषध को भी मलिन मानते हैं? आप कॉड–लीवर ऑयल–जो मछली के लीवर का तेल है, उसे भी मलिन नहीं मानते । अनेक आर्य और अहिसा धर्मी कहलाने वाले लोग उसे भी पी जाते हैं। द्रौपदी को राज्य जाने का इतना दु ख नही था, जितना कि वस्त्र खींचने के समय हुआ था। वस्त्र खीचने से उसकी लज्जा जाती थी। मतलब यह हुआ कि वस्त्र लज्जा की रक्षा करने के लिए हैं। लेकिन लाज मोटे कपडो से रहती है या बारीक वस्त्रो से? मोटे कपडो से।

लेकिन आजकल तो बडे घरानो की स्त्रियॉ कहती हैं–जाडे (मोटे) कपडे जाटनी पहनती है। हम भी वैसे ही पहनने–ओढने लगेगीं तो उनमे ओर हम मे क्या अन्तर रह जाएगा?

द्रौपदी बाण से बिधी हुई हिरनी की तरह रोने लगी। कहा है–

कहकर वचन यह दुःख से, तब द्रौपदी रोने लगी।
नेत्राम्बु धारा पात से कृश, अंग को धोने लगी।।
हो द्रवण करके श्रवण, उसकी प्रार्थना करुणाभरी ।
देने लगे निजकर उठाकर, सान्त्वना उसको हरी।।

द्रौपदी अपनी आखो के आसुओ से अपने दुबले शरीर को जैसे स्नान कराने लगी । हृदय के घोर सताप–सतप्त शरीर को मानो ठडा करने का निष्फल यत्न करने लगी। निष्फल यत्न इसलिए कि उसके ऑसू भी गरम ही थे और उनसे सताप मिटने के बदले वह बढ ही सकता था।

द्रौपदी की प्रार्थना सुनकर कृष्ण का हृदय भी पिघल गया फिर भी उन्होने अपने को सभाला और हाथ उठाकर वे द्रौपदी को सान्त्वना देने लगे।

द्रौपदी की बातो का उत्तर देना कृष्णजी को भी कठिन जान पडा। कृष्णजी द्रौपदी की कही बाते सत्य मानते थे, लेकिन क्या कृष्णजी को सधि की चर्चा भग करके धर्मराज से कह देना चाहिए था कि–बस, अब सधि की बात मत करो। एक बार दूत भेज ही दिया, अब ज्यादा पचायत मे पडने की जरूरत नही हैं, दुर्योधन दुर्जन हे। वह यो मानने का नही उससे कोई भी न्याययुक्त बात कहना, ऊसर मे बीज बोना हे। अतएव समय न खोकर लडाई की तैयारी करो। द्रौपदी की बातो की सच्चाई समझते हुए भी बुद्धिमान् कृष्ण ने ऐसा नहीं कहा। बल्कि वे द्रोपदी को सान्त्वना देने लगे। उन्होने अपना ध्येय नहीं छोडा।

एक ओर सधि द्वारा शान्ति स्थापित करने की बात हे ओर दूसरी ओर द्रोपदी का कहना मानकर युद्ध करने की। द्रोपदी की बात प्रबल दीखती हे,

लेकिन कृष्णजी महापुरुष थे। दौपदी के भाषण मे रजोगुण छलक रहा है, लेकिन धर्मराज की बात सतोगुणी है और कृष्ण द्वारा समर्थित है।

सुन कर कथन यह दौपदी का, कृष्णजी कहने लगे–

धीरज बँधाकर प्रेमयुत यो, वचन अमृत से पगे।

है नीति–युक्त सुयुक्त तेरा, कथन पर जँचता नही,

कर्त्तव्यपथ पर यह सहायक, हो कभी सकता नही।

सन्तप्त होकर सधि से ही, यह वचन तुमने कहे,

पर सोचती हो तुम नही, क्या मेद उसमे छिप रहे।

पट खीचने के समय मे, जो कुछ प्रमाण तुम्हे मिला,

कौरव गणो पर क्रुद्ध हो, उसको दिया तुमने भुला।

पहले जो कुछ कहा है, वह एक कवि की कल्पना है। अब जो कहता हूँ, वह मेरी कल्पना समझिए। कवि की कल्पना मे कमी यह है कि उसने रजोगुण मे ही बात समाप्त कर दी है। प्रतयेक बात और विशेषत आदर्श आख्यान सतोगुण मे लाकर समाप्त करना और सतोगुण का आदर्श स्थापित करना उचित है।

दौपदी को सन्त्वना देकर कृष्णजी कहने लगे–भद्रे! रुदन मत करो। चित्त को शान्त और स्थिर करो। तुम्हे पहले की बाते स्मरण करके सताप होता है और इसीसे तुम पाण्डवो पर कुपित हो रही हो। शक्ति होने के समय ऐसा–स्वार्थ और माया द्वारा चित्त का चचल हो जाना स्वाभाविक है। साधारण मनुष्य को ऐसा ही होता है। लेकिन मेरा जन्म मनुष्य प्रकृति की हॉ मे हॉ मिलाने के लिए नही है। मै अपने आचरण द्वारा मानव–पकृति को शुद्ध करके सत्पथ पर लाना चाहता हूँ। यही मेरा जीवन उद्देश्य है। अगर तुम्हे मुझ पर विश्वास है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो।

द्रोपदी की वात का उत्तर देने मे धर्मराज अपनी असमर्थता अनुभव करते थे। उसने धर्मराज पर भी अभियोग लगाया था । मगर कृष्ण का सहारा मिलने से उन्हे प्रसन्नता हुई।

कृष्णजी की वात सुनकर सव लोग आश्चर्य करने लगे कि द्रोपदी की ये प्रवल युक्तियो से परिपूर्ण वाते भी कृष्णजी को नहीं जॅचीं! सव विस्मय मे डूवे हैं ओर धर्मराज प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं।

इस अवस्था मे कृष्णजी कहने लगे–'द्रौपदी! तुम्हारी वाते नीति ओर युक्तियो से पूर्ण हैं, फिर भी मुझे जॅचती नहीं हैं। तुम्हारा कथन कर्त्तव्य–मार्ग मे सहायक नहीं हो सकता । मेरा कर्त्तव्य लडाई कराना नहीं, शान्ति स्थापित करना हे।'

लोग कुछ दिन पहले अहिसा की शक्ति का उपहास करते थे। उनका कथन था कि अहिसा का राजनीति से क्या सरोकार है? अहिसा तो मदिरो मे या इतर धर्मस्थानो मे पालन करने की चीज हे। राजनीति और अहिसा तो परस्पर विरोधी वाते हैं। मगर अन्त मे सत्य छिपा नहीं रहा। आज सवने अहिसा की प्रचण्ड शक्ति का अनुभव कर लिया हे। अहिसा की यह शक्ति तो अपूर्ण हे। उसकी परिपूर्ण शक्ति का पता कभी भविष्य मे चलेगा।

कई लोग समझते हैं कि कृष्ण का उद्देश्य लडाई कराना था। लेकिन उनके उपदेश से–गीता से इस कथन का समर्थन नही होता। **'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्'** का उपदेश देने वाला हिसा का उपदेशक कैसे माना जा सकता हे? कृष्ण ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है–'सब प्राणियो को अपने समान समझो। में सत्पुरुषो की रक्षा एव दुष्कृतो का विनाश करने के लिए जन्मा हूँ। दुप्टो का नाश करने के लिए नहीं, किन्तु दुप्टों से प्रेम करने, उन पर दया करने और दुष्ट कृत्यो का नाश करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ हे।'

गीता मे इस आशय की अनेक युक्तिया विद्यमान होने पर भी लोग गीता को लडाई कराने वाली पुस्तक ओर कृष्ण को लडाई कराने वाला पुरुष समझते हैं। मर्मज्ञ ही इन वातो की गहराई समझ पाते हैं। ऊपरी दृष्टि से वास्तविकता नजर नही आती ।

कृष्णजी कहने लगे–'द्रोपदी! लडाई कराना मेरे लिए उचित नहीं हे। तुम्हे मुझ पर पूर्ण विश्वास हे, इसीलिए तुमने मेरे सामने सव वाते कह दी हैं। लेकिन मुझे अपना कर्त्तव्य करने दो। तुमने जो कुछ कहा हे, सो आवेश के वश होकर ही। तुम सधि की वार्त्ता से दु खित हुई हो। तुम सोचती हो कि पाच गावो से हमारा काम कैसे चलेगा? ओर इस प्रकार सधि कर लेने से

उनकी जीत और हमारी हार समझी जायेगी। द्रौपदी! तुमने वन मे रहकर भी अपना काम चलाया है इसलिए शायद पाच गाव लेकर काम चलाने मे तुम्हे कठिनाई नही भी मालूम होती हो तो भी इस प्रकार की सधि मे तुम्हे कौरवो की गुरुता और अपनी लघुता पतीत होती है। इन्ही कारणो से तुम सधि का विरोध कर रही हो। लेकिन तुम्हे यह नहीं मालूम कि सधि करने मे क्या रहस्य छिपा हुआ है। यह बात मैं जानता हूँ या धर्मराज जानते हैं। सधि मे पाच गाव राज्य करने के लिए मैंने नहीं मागे हैं और न कौरवो से भयभीत होकर ही ऐसा किया है। कौरवो की दुष्टता का नाश करने के लिए ही यह माग उपस्थित की गई है। अगर कौरव पॉच गॉव दे देगे तो वे दुष्ट कहलायेगे। ससार उन्हे घृणा की दृष्टि से देखेगा। कोई आदमी किसी के पास एक करोड की धरोहर रख देता है और फिर केवल पाच रुपया लेकर फैसला कर लेता है, तो पाच रुपये मे फैसला करने वाले का ससार मे यश ही होगा। पाच रुपया देने वाला सोचेगा कि एक करोड के बदले पाच रुपया देने से मुझे ससार क्या कहेगा? यही बात पाच ग्राम लेकर सधि करने मे है।

विशाल राज्य के बदले सिर्फ पाच ग्रामो से सतुष्ट हो जाने मे पाण्डवो का तो कल्याण ही है। हा, इसमे कौरवो की ही लघुता है। मैं लडाई कराने के बदले इस प्रकार का उत्तम आदर्श पेश करना अच्छा समझता हूँ। इस सधि से ससार पाडवो की प्रशसा करेगा। सभी लोग मुक्तकठ से पाडवो की सराहना करते हुए कहेगे—पाडवो ने बारह वर्ष तक वन मे और एक वर्ष अज्ञात रहकर भी अपने अधिकार का राज्य केवल शान्ति के लिए छोड दिया।

क्रोध से आवेश हो आता है। मगर क्रोध का त्याग करना साधारण काम नहीं है।

तुमने सब बल छोड दिया और जब मन ही मन कहा—प्रभो! शरीर, लाज, तन, मन, धन आदि तुझे सौंप चुकी हूँ। अब तू चिन्ता कर, मुझे चिन्ता नहीं है। इस प्रकार कह कर निर्बल बन गई थी, तब तुम्हारी रक्षा हुई थी या नहीं? दु शासन बडा बली था, लेकिन तुम्हारा चीर खींचते—खींचते तो वह भी थक गया। उस समय किसने तुम्हारी रक्षा की थी?

श्रद्धा रखो उस सत्य पर जो, अखिल जग का प्राण है।
सच्चा हितैषी पाण्डवों का, और अटल महान् है।।

द्रौपदी! तुम्हे उस अटल सत्य पर विश्वास रखना चाहिए।

'सच्चं खु भगवं ।'

सत्य विश्वास ही ईश्वर है, यह समझ कर सत्य पर श्रद्धा रक्खो। सत्य पर विश्वास होगा तो ईश्वर पर भी विश्वास होगा।

कृष्ण ने कहा—'द्रौपदी! जिसने तुम्हारे वस्त्र बचाए, वही सत्य तुम्हारी बात रखेगा। तुम शान्त होओ! उत्तेजना के वशीभूत होकर तुम इस समय सत्य को भूल रही हो।'

तुम्हे भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण न होने की चिन्ता है लेकिन इससे सत्य पर अविश्वास होता हे, इसकी चिन्ता है या नही? क्या चीर खीचने के समय भीम और अर्जुन काम आये थे? जिस सत्य का अपरिमित प्रभाव तुम जान चुकी हो, उसे क्यो भुलाये देती हो? तुम साधारण स्त्री नही हो, ससार को अनुपम शिक्षा देने वाली आदर्श देवी हो। तुम पाण्डवो के साथ वन—वन भटकी हो, तुमने विराट के घर दासीपना किया है, लेकिन यह सब किया हे राज्य पाने की आशा से। मैं कहता हूँ—तुम ईश्वर बनने के लिए ईश्वर को भजो। जरासे राज्य के टुकडे पर ललचा कर सत्य पर अविश्वास मत करो।

भाइयो और बहिनो! कृष्णजी का यह उपदेश केवल द्रौपदी के लिए नही है। यह वर्त्तमान और भावी प्रजा के लिए भी हे। इतिहास और भूगोल समयानुसार पलटता रहता हे, लेकिन सत्य का यह उपदेश सत्य की भाति सदेव रहेगा। जेसे सत्य ध्रुव है, उसी प्रकार यह उपदेश भी ध्रुव हे।

कृष्ण कहते हैं—सधि हो जाने पर तुम्हारा सिर न गूथा जायेगा तो क्या वह मुडित न हो सकेगा? सिर का मुडन भी तो किया जा सकता हैं। लोकोत्तर धर्म की भावना से मुडन कराया हुआ सिर अनत सोभाग्य का सूचक है। भीम की प्रतिज्ञा भी अगर नही रहती तो न रहे, लेकिन सत्य उससे भी बढकर हे। उसे जाने देना, उस पर अविश्वास करना उचित नहीं हे। जो

मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य की रक्षा करता है, सारा ससार सगठित होकर भी उसका कुछ नही बिगाड सकता।'

दौपदी! तुम कहती हो, जिन कौरवो ने पाण्डवो को विष दिया, उन पर दया कैसी? लेकिन यह तो सोचो कि पाण्डवो को कैसा भयकर विष दिया होगा? उस उग्र विष से कोई बच सकता था? फिर उस विष से उस समय उन्हे किसने बचाया? जिस सत्य ने उस भयानक विष से रक्षा की थी, वह सत्य क्या भुला देने योग्य है? जिसने पाण्डवो की प्राण रक्षा की, उसकी पाण्डवो द्वारा हत्या करना तुम पसद करोगी?'

दौपदी! तुम लाक्षा गृह का घोर सकट बतलाकर कहती हो, उसकी याद आ जाती है। तुम उस विकराल आग की याद तो करती हो, लेकिन यह भी याद आता है कि लाक्षगृह मे से बच निकलने की आशा थी या नही? जिस सत्य के प्रताप से वह सकट टल सका, उसी सत्य पर अब अविश्वास करने चली हो?

कृष्ण फिर कहते है–'दौपदी! आवेश मे आने पर आज तुम्हे कौरवो की बुराई दिखाई देने लगी, पाण्डवो को भटकते देखा और सर्वस्व चला गया, इसलिए आज तुम्हे चिन्ता हो गई, लेकिन आवेश को त्याग कर सत्य का चिन्तन करो। सत्य से तब भी कल्याण हुआ था, अब भी कल्याण होगा, जैसे मलिन काच मे मुह नही दीखता उसी पकार लोभ और तृष्णा से भरे हुए हृदय को सत्य नही सूझता। तुम अपने कष्ट–सहन की बात कहती हो, सहनशीलता का स्मरण करती हो लेकिन सत्य ने भी तुम्हारे लिए कुछ उठा नही रक्खा। हृदय का मालिन्य दूर कर दो सत्य उस पर प्रतिबिम्बित होने लगेगा।

दौपदी! ससार के समस्त आभूषणो मे विद्या बडा आभूषण है। मनुष्य

प्रकार विराट् शक्ति को भूल जाता है, यह बतलाने के लिए ही यह कहा गया है।

अब हमे फिर अपने मूल विषय पर आ जाना है, महापुरुष की पहचान उसके वचनो से होती है। जिन वचनो से जीवन मे ऊर्ध्वता आवे, जीवन मे निर्मलता और शुद्धता की वृद्धि हो, समझना चाहिए कि वे वचन महापुरुष के हैं। जिन वचनो से विकारो का उपशमन न होकर उत्तेजन हो, जिनसे हृदय मे अशान्ति का सचार होता हो, वे वचन महापुरुष के नहीं हो सकते।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र मे कहा है कि सृष्टि के मध्य मे सुमेरु पर्वत है। एक बार एक मासिक पत्रिका मे भी 'पवित्र सुमेरु' शीर्षक लेख किसी लेखक ने लिखा था। लेखक, सुमेरु को इतिहास और भूगोल की दृष्टि से देखते हैं, जिसे लाभ के बदले जनता को सन्देह ही ज्यादा होता है। कोई मुझसे पूछे कि सुमेरु पर्वत कहा है? मैं इसका उत्तर दूगा कि सुमेरु प्रथम तो केवली ज्ञान मे है, दूसरे शास्त्र मे है, तीसरे नक्शे मे है। पृथ्वी पर सुमेरु कहा है, यह मुझे मालूम नहीं और पता लगाने की आवश्यकता नही, क्योकि भगवान् ने पिड मे ब्रह्माड बतलाया है।

परिकर कर घर कंचुकी, पुरुष फिर चकचोर।
यह आकार है लोक का, देख्यो ग्रथ निचोर।।

झगा पहनकर और कमर पर हाथ रख कर नाचता हुआ पुरुष जिस आकार का दिखाई देता है, वह लोक का आकार है। सक्षेप मे कहा जाय तो यह कि मनुष्य सारी दुनिया का नक्शा हे। लोक को देखने के लिए कृत्रिम नक्शा देखने की जरूरत नही है। लोक के नक्शे मे जो रेखाए हैं, वैसी ही मनुष्य के शरीर मे नसो के रूप मे मौजूद हैं। मानव–शरीर के ठीक बीचोबीच नाभि है। यह नाभि सूचित करती हे कि सुमेरु पर्वत भी इसी तरह का है। शरीर की नाभि ओर सुमेरु गिरि रूप लोकनाभि ठीक बीच मे हे। कदाचित् कोई प्रश्न करे कि मनुष्य के शरीर मे सुमेरु कहा हे? तो में कहूगा– अपनी नाभि मे। सृष्टि के मध्य का सुमेरू पर्वत तभी मिलेगा, जब उर्ध्वगामी वन कर ब्रह्माड, मस्तक ओर नाभि को एक कर दोगे तथा जब सोती हुई शक्तिया जाग उठेगी। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर आप ही सुमेरु गिरि का पता लग जाएगा।

सुमेरु पर्वत पर भगवान् ने चार वन बतलाये हें। सबसे नीचे भद्रशाल वन है। उससे पाच सा योजन की ऊचाई पर नन्दनवन हे। उससे साढे वासठ

योजन ऊपर सौमनस वन है और उससे भी छत्तीस हजार योजन ऊपर पाण्डुक वन है। उस पाण्डुक वन के ऊपर अभिषेक शिला है। तीर्थंकर के जन्म के समय इन्द्र उन्हे उस अभिषेक–शिला पर ले जाते हैं और वहा उनका अभिषेक करते हैं। उपनिषद् मे कहा है–

'देवो भूत्वा देव यजेत्।'

अर्थात्– ईश्वर बनकर ईश्वर को देख– ईश्वर की पूजा कर। यानि अपने आत्मा का स्वरूप पहचान ले, बाहर के झगडे दूर कर।

हम भी परमात्मा की पूजा करते है, मगर धूप, दीप, फल और मिठाई आदि से नही। ऐसा करना जड–पूजा है। सच्ची पूजा वह है जिसमे पूज्य और पूजक का एकीकरण हो जाय। जैसे शक्कर की पुतली पानी की पूजा करने मे उसके साथ एकमेक हो जाती है– उसी से मिल जाती है, उसी प्रकार ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। शास्त्र मे कहा है–

'कित्तिय वन्दिय–महिया'

अर्थात्– हे प्रभो! तू कीर्तित है, वन्दित है और पूजित है।

साधु भी यह पाठ बोलते है यह पाठ षडावश्यक के दूसरे अध्ययन का है। भगवान की पूजा यदि केवल धूप, दीप आदि से ही हो सकती होती तो साधु उनकी पूजा कैसे कर सकते थे?

परमात्मा की पूजा के लिए पूजक को सर्वप्रथम यह विचारना चाहिए कि मै कौन हू? पूजक क्या हाड, मास नख या केश है अगर तेरी यही धारणा है तो तू ईश्वर की पूजा के लिए अयोग्य है। तू देवो भूत्वा देव यजेत् तत्व नही जान सकता। क्योकि हाड–मास का पिड अशुचि है। जो ईश्वर की पूजा [illegible] नही कर सकता। अपने आपको मास का पिड समझने वाला पहले तो ईश्वर की पूजा करेगा नही अगर करेगा भी तो केवल मास पिड बढाने के लिए। अगर मास पिड बढाने के लिए ईश्वर की पूजा की और उससे मास [illegible] चलने–फिरने मे कष्ट होगा मरने पर उठाने वालो को कष्ट होगा [illegible]

होने पर तुम देव बन कर देव की पूजा के योग्य अधिकारी बन सकोगे। गीता मे कहा है–

इन्द्रियाणि पराण्याहु, इन्द्रियेभ्यो पर मन· ।
मनसस्तु परा बुद्धि: यो बुद्धे परतस्तु स· ।।

तू इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं है। वरन् बुद्धि को शक्ति देकर उसका प्रयोग करने वाला है।

जिसने इस प्रकार ईश्वर को समझ लिया है, वह ईश्वर की खोज मे मारा–मारा नही फिरेगा और न ईश्वर के नाम पर अन्याय ही करेगा। वह कानो मे उगली डालकर ईश्वर को पुकारे और कहे या अल्लाह! तू हिन्दुओ को मार डाल। वह ऐसा कदापि नहीं करेगा। जर्मन लोग इग्लैण्ड वालो को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और इग्लैण्ड वाले जर्मनी को मार डालने के लिए। अब बेचारा ईश्वर किसकी रक्षा करे और किसे मार डाले? वह किसका पक्ष ले? यह ईश्वर की सच्ची प्रार्थना नहीं है। ऐसी प्रार्थना करने वाला ईश्वर को समझता ही नही हे।

कहा जाता है कि सिकन्दर के हाथ मे उसके शत्रु पक्ष की ओर से आया हुआ तीर चुभ गया। सिकन्दर आग बबूला हो गया और उसने तीर मारने वाले की जाति के दो हजार कैदियो के सिर कटवा दिये। क्या यह ईश्वर को जानना है? क्या यह न्याय हे? लेकिन सिकन्दर के सामने कोन यह प्रश्न उपस्थित करता? ईश्वर की सच्ची पूजा तो आत्मा को उन्नत बनाने के उद्देश्य मे ही निहित हे। जिसने आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया हे, उसने परमात्मा को पा लिया हे। परमात्मा की खोज आत्मा मे तन्मय होने पर समाप्त हो जाती है।

परमात्मा प्राप्ति के सरल साधन

प्रत्येक आस्तिक और अध्यात्मप्रेमी पुरुष की आकाक्षा परमात्मा की प्राप्ति मे ही पर्यवसित होती है। अतएव यह विचारणीय है कि किन उपायो द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होना सभव है? जिज्ञासुओ के हित के लिए मैं सक्षेप मे यह बतलाता हूँ कि परमात्मा को प्राप्त करने के सरल साधन कौनसे हैं? वे इस प्रकार है–

1 जुआ न खेलना, धर्मशास्त्र मे जुआ का बहुत निषेध है। इसका दुष्फल महापुरुष के चरित्र पर घटाकर बताया गया है जुए ने युधिष्ठिर पर भी सकट लाद दिया था। जिसमे हार–जीत की बाजी है वह सब जुआ हे, फिर उसका नाम चाहे कुछ भी हो।

2 मासाहार न करना, यद्यपि कुल और वश की परम्परा के कारण बहुत से लोग मासाहार से बचे हुए है, लेकिन समय के फेर से पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल प्रभाव से लोग मास–भक्षण करने लगे हैं और धीरे–धीरे मास के प्रति घृणा घटती जा रही है।

6 शिकार न खेलना। आजकल के कई रईस मक्खियो का भी शिकार खेलने लगे हैं। वे लोग बारूद और शक्कर जमीन पर बिखेर देते हैं और जब मक्खिया शक्कर पर बैठती हैं तब दियासलाई लगा देते हैं। बेचारी मक्खियो को जलती देखकर क्रूरता और पिशाचता की हसी हसते हैं। यह कितना दानवीय कृत्य है?

साप, बिच्छू आदि जतुओ को, जिन्होने कोई अपराध नहीं किया है, मारना सर्वथा अनुचित है। कई लोग कहते हैं—आज नही किया तो कल करेगा। मगर ऐसा समझकर उन्हे मारना घोर अन्याय है। कौन भविष्य मे अपराध करेगा और कोन नहीं, यह कौन जानता है? मनुष्य भी भविष्य मे अपराध कर सकता है तो क्या सभी मनुष्यो को भी फासी पर लटका देना न्याय है?

7 चोरी न करना। जो चोरी राज्य के कानून के अनुसार दण्डनीय समझी जाती है और लोक मे निन्दनीय मानी जाती है, कम से कम ऐसी स्थूल चोरी से सदैव बचना चाहिए।

8 विवाह आदि के अवसरो पर गालिया न गाना, अश्लील गीत न गाना, काला मुह नही करना।

9 प्रिय—जन की मृत्यु होने पर विलख—विलख कर न रोना और छाती एव माथा पीटकर न रोना ।

10 बच्चो को भूत या हौआ आदि का भय दिखाकर कायर न बनाना।

11 मृतक—भोज न करना। शास्त्र मे मृतक—भोज का उल्लेख कही नही मिलता।

12 जीमनवार मे जीमने के बाद जूठन न छोडना।

13 ठहराव करके वर या कन्या के निमित्त पैसा न लेना।

14 विवाह मे वेश्या न बुलाना। वेश्या बुलाकर उसका गान—नृत्य कराने से दुराचार का प्रचार होता हे और दुनिया बिगडती हे।

15 तेरह वर्ष से कम आयु की कन्या और अठारह वर्ष से कम आयु के लडके का विवाह न करना।

16 महीने मे अष्टमी ओर चतुर्दशी को कम से कम चार उपवास करना। उपवास और धारण—पारण नियमपूर्वक करने वाला डाक्टरो को हजारो रुपया देने से बचा रहता हे ओर स्वस्थ रहता हे। पाप से भी बचाव होता ह।

17 किसी मनुष्य से घृणा मत करो। अस्पृश्य कहलाने वाले लोग भी तुम्हारे ही भाई हैं। वे तुम्हारा बहुत उपकार करते हैं। उनका भूलकर भी तिरस्कार मत करो।

18 आलस्यमय जीवन मत बनाओ। आलस्य मनुष्य का महान् शत्रु है। आलस्य के कारण लोग अधर्म मे प्रवृत्त होते हैं।

19 जीवन को सयममय बनाओ। धर्म का ही आचरण करो। ज्ञान का उपार्जन करो, सत्सगति मे समय बिताओ। भगवान् का भजन करो।

20 जिन कपडो मे चर्बी लगती है उनको न पहनना। जो गाय लोक मे पूजनीय मानी जाती है और अत्यन्त उपकारक और रक्षक है, उसकी चर्बी लगे चमकीले वस्त्रो को पहनना सर्वथा अनुचित है। ये कपडे अक्सर बारीक होते है और बारीक कपडो से लज्जा नही रहती। लज्जा–शास्त्र मे बडा गुण गाया गया है और निर्लज्जता दोष है।

आजकल की बहुत–सी स्त्रिया घूघट, पर्दा आदि से ही लज्जा की रक्षा समझती है, किन्तु वास्तव मे लज्जा कुछ और ही है। लज्जावती अपने अग–अग को इस प्रकार से छिपाती है कि कुछ कहा नही जा सकता। लज्जावती कैसी होती है, यह बात एक उदाहरण से समझ लीजिये–

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिता रही थी। उसने यह निश्चय कर रक्खा था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी, उसे भी मै यही शिक्षा दूगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत–सी स्त्रिया सदाचारिणी बन गई।

जाती थी। जब वह बाहर निकलती तो निर्लज्जा उससे कहती–'मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूँ कि तू कैसी है। बडी बगुला–भगत बनी फिरती है, लेकिन तेरे जैसी दूसरी कही शायद ही मिले।'

निर्लज्जा ने दो–चार बार लज्जावती से ऐसा कहा। लज्जावती ने सोचा–क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से–चुपचाप सुन लेने से, तो लोगो को शका होने लगेगी। एक बार ऐसा ही प्रसग उपस्थित होने पर उसने रुककर कहा–'तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है। मेरा–तेरा कोई लेन–देन नही, फिर बिना मतलब अपनी जबान क्यो बिगाडती है?'

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भडक उठी। वह कहने लगी–'तू मीठी–मीठी बाते बनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती है। मगर मैं तेरे सारे ऐब ससार के सामने खोलकर रख दूगी।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई। उसने उस कुलटा से कहा–'तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने का अधिकार है, मगर जो यद्वा–तद्वा ऊल–जलूल कहा तो तेरा भला न होगा।'

पतिव्रता की यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर लोगो पर उसका अच्छा प्रभाव पडा। लोगो ने उससे कहा, 'बहिन, तुम अपने घर जाओ। यह कैसी हे, यह बात सभी जानते हैं। लोगो की बात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई। यह देखकर कुलटा ने सोचा–'हाय! वह भली और मैं बुरी कहलाई। अब इसकी इज्जत और बढ जायगी ओर मेरी बदनामी बढ जायेगी । ऐसे जीवन से तो मरना ही भला! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है? अगर उसे कोई कलक लगाकर उसके प्राण ले सकू तो मेरे रास्ते का काटा दूर हो जाए। मगर कलक क्या लगाऊ? ओर कोई कलक लगाने पर तो उसका सावित करना कठिन हो जायेगा। अत क्यो न मे अपने लडके को ही मार डालू और दोप उसके माथे मढ दू। लोगो को विश्वास हो जायेगा ओर उसका खात्मा हो जायेगा।

इस प्रकार का क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लडके के प्राण ले लिये। लडके का मृत शरीर उस सदाचारिणी के मकान के पास कुए मे फेंक आई । इसके बाद रो–रोकर, विलख 2 कर अपने लडके को खोजने लगी। हाय! मरा लडका न जाने कहा गायब हो गया हे! दूसरे लोग भी उसके लडके का ढूढने लगे । आखिर वह लोगो को उसी कुए के पास लाई, जिसमे उसने लडके का शव फेंका था। लोगो ने कुए को ढूढा तो उसमे से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदाचारिणी का नाम

ले—लेकर कहने लगी—'हाय! उस भगतन की करतूत देखो। उस पापिनी ने मुझसे वैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया। हाय! मेरे लडके को गला घोटकर मार डाला।'

आखिर न्यायालय मे मुकदमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लडके को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय मे उपस्थित होना पडा। उसने सोचा—बडी विचित्र घटना है। मै उस लडके के विषय मे कुछ नही जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पडेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश किये। सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लडके की हत्या की है?'

सदाचारिणी—नही, मैंने लडके को नही मारा। किसने मारा है, यह भी मैं नही जानती और न मुझे किसी पर शक है।

मामला बादशाह के पास पहुचाया गया। बादशाह बडा बुद्धिमान् और चतुर था। उसने सदाचारिणी को भली—भाति देखा और सोचा कि कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नही की।

बादशाह का वजीर भी बडा बुद्धिमान् था। उसने कहा—इस मामले मे कानून की किताबे मददगार नही होगी। यह मेरे सुपुर्द कीजिये। मैं इसकी जाच करूगा।

बादशाह ने वजीर को मामला सौंप दिया। वजीर दोनो स्त्रियो को साथ लेकर अपने घर गया। वह उस सदाचारिणी को साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मै अकेली परपुरुष के साथ एकान्त मे कदापि नही जा सकती। आप जो पूछना चाहे, यही पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त मे जाना धर्म नही, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यो न हो।

वजीर ने धीमे स्वर मे कहा—तुम मेरी एक बात मानो तो मैं तुम्हे बरी कर दूगा।

सदाचारिणी—आपकी बात सुने बिना मै नही कह सकती हूँ कि मै उसे मान ही लूगी। अगर धर्म—विरुद्ध बात नही हुई तो मान लूगी, अन्यथा प्राण देना मजूर है।

वजीर—मै तुम्हारा धर्म नही जाने दूगा तब तो मानोगी।

सदाचारिणी–अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यो नहीं कहते?

वजीर– तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लडके को मारा है। न मारने की बात केवल तुम्ही कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय? अपनी बात पर विश्वास कराना है तो नगी होकर मेरे सामने आ जाओ। इससे मैं समझ लूगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नही रक्खा, उसी प्रकार बात कहने मे भी पर्दा न रक्खोगी।

सदाचारिणी–जिसे प्राणो से भी अधिक समझती हूँ, उस लज्जा को मैं नही छोड सकती और आपका यह कर्त्तव्य नही है। आप चाहे तो शूली पर चढा सकते हैं। फासी पर लटकाने का आपको अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा।

इतना कहकर वह वहा से चल दी । वजीर ने कहा–'देखो, समझ लो। न मानोगी तो मारी जाओगी।' सदाचारिणी ने कहा–'आपकी मर्जी। यह शरीर कौनसा हमेशा के लिए मिला है। आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है।'

वजीर ने सोच लिया–'यह स्त्री सच्ची और सती है।

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा– 'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी।'

कुलटा–मैं तो जीती हुई हूँ ही। मेरे पास बहुत से सबूत हैं।

वजीर–नही, अभी सदेह है। वह बाई हत्यारिणी नही है।

कुलटा–आप इसके जाल मे तो नही फस गये? वह बडी धूर्त्ता है।

वजीर–यह सदेह करना व्यर्थ है।

कुलटा–फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते है?

वजीर–अच्छा, मेरी एक बात मानो।

कुलटा–क्या?

वजीर–तुम मेरे सामने कपडे खोल दो तो मैं समझूगा कि तुम सच्ची हो।

कुलटा अपने कपडे खोलने लगी। वजीर ने उसे रोक दिया ओर जल्लाद को बुलाकर कहा–'इसे ले जाकर बेत लगाओ।

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई, ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्लाद ने पूछा–'तो बता, लडके को किसने मारा हे?'

कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली। मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया। उसने कहा–लडके की हत्या उसकी मा ने ही की है।

बादशाह ने कहा–यह बात कौन मान सकता है कि माता अपनी पुत्र को मार डाले! लोग अन्याय का सदेह करेगे।

वजीर ने कहा– यह कोई अनोखी बात नही है। धर्म– शास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है। जहा लज्जा है, वही दया है। मैंने दोनो की लज्जा की परीक्षा की । पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज तजना स्वीकार न किया। वह धर्मशीला है। इस दूसरी ने मुझे भी कलक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई। यह देखकर इसे पिटवाया तो इसने लडके की हत्या करना स्वीकार कर लिया।

सारा मामला बदल गया। सच्चरित्रा बाई के सिर मढा हुआ कलक मिट गया। बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा–'आज से तुम मेरी बहिन हो।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई। वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते। बादशाह ने कुलटा को फासी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा–'बहिन! तुम जो चाहो, मुझ से माग सकती हो।'

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा–'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हूँ। मै आपके आदेशानुसार यही मागती हूँ कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय। इस पर दया की जाय।'

बादशाह ने वजीर से कहा–तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है। जिसमे लज्जा होगी उसमे दया भी होगी। इस बाई को देखो। अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है!

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मान कर कुलटा को क्षमा–दान दे दिया। कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पडा कि उसका जीवन एकदम बदल गया।

साराश यह है कि लज्जा एक बडा गुण हैं। जिसमे लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा।

परमात्मा की प्राप्ति के ये सरल उपाय हैं। इन्हे अपनाओगे तो निस्सदेह आपका कल्याण होगा।

प्रभु–प्रार्थना का प्रयोजन

(क)

श्री आदीश्वर स्वामी हो।

भगवान् ऋषभदेव की यह प्रार्थना है। देखना चाहिए कि इस प्रार्थना के साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध है?

प्रार्थना वही करता है, जिसे किसी प्रकार की अभिलाषा होती है। चाहे वह अभिलाषा किसी चिन्ता को दूर करने की हो, किसी न्यूनता की पूर्ति करने की हो या ओर किसी प्रकार की हो। दूसरे शब्दो मे कहना चाहिए कि जब कोई गरज होती हे, तभी प्रार्थना की जाती है। बिना गरज के न तो प्रार्थना की जाती हे ओर न बेगरज की प्रार्थना सच्ची प्रार्थना ही हे। जब यह सत्य है तो देखना चाहिए कि भगवान् ऋषभदेव की यह प्रार्थना किस गरज से की गई हे? इस प्रार्थना मे कहा गया हे–

'मेटिजे चिन्ता मन तणी।'

अर्थात् मेरे मन की चिन्ता मिटा दो। प्रार्थना करने वाले को सज्ञान होकर ही प्रार्थना करनी चाहिए, मूर्खता या अन्धविश्वास मे रहना उचित नही हे। इस धारणा से यह जानना आवश्यक हे कि हम जिस चिन्ता को मिटाने की भगवान् से प्रार्थना करते हें, वह चिन्ता क्या हे ओर वह किसी दूसरे से भी मिट सकती हे या नही?

किसी बडे आदमी से छोटी वस्तु के लिए प्रार्थना करना उसका अपमान करना हे। किसी न्यायाधीश (जज) को झाडू निकालने के लिए बुलाना, उसका अपमान करना हे। झाडू देने का काम तो बुलाने वाला स्वय ही कर सकता हे या किसी भी साधारण आदमी से करा सकता हे। इसके लिए न्यायाधीश को बुलाने की क्या आवश्यकता हे? अगर किसी ने झाडू देने के लिए न्यायाधीश को बुलाया तो उसने विवेक से काम नही लिया। 'योग्य

योग्येन योजयेत्' जो जैसा हो, उससे वैसा ही काम लेना चाहिए। यही विवेकशीलता का लक्षण है।

परमात्मा सर्वोपरि है । वह ससार और त्रैलोक्य से भी बडा माना गया है। परमात्मा को त्रिलोकीनाथ कहते है। इस प्रकार परमात्मा जब अखिल विश्व का सिरमौर है, तब उसकी प्रार्थना करने का क्या आशय होना चाहिए? किस गरज से प्रभु की प्रार्थना करना उचित है? जो लोग परमात्मा को केवल व्यवहार के हेतु त्रिलोकीनाथ कहते है, उनकी प्रार्थना भी कोरा व्यवहार ही है, उसमे वास्तविकता नही है। जो लोग अन्त करण से परमात्मा को त्रिलोकीनाथ मानते हैं, उन्हे सावधानी के साथ अपने हृदय की जाच करनी चाहिए। उन्हे देखना चाहिए कि वास्तव मे उनके हृदय की चिन्ता क्या है, जिसे मिटाने के लिए वे प्रार्थना कर रहे है? त्रिलोकीनाथ से झाडू निकालने के समान कोई तुच्छ चिन्ता दूर करने के लिए तो प्रार्थना नही की है? दर असल आपकी चिन्ता क्या है?

आप कहेगे– हमारी चिन्ताओ का क्या पूछना है! हमारे जैसी चिन्ताये तो घर–घर मे फैली है। किसी को धन की चिन्ता है, किसी को परिवार की चिन्ता है, किसी को राज–सम्मान की चिन्ता है। इस प्रकार अनेक विध चिन्ताओ के कारण सुख की नीद सोने वाला कोई बिरला ही मिल सकता है। यद्यपि आराम के लिए निद्रा ली जाती है, परन्तु कइयो की चिन्ता तो ऐसे समय मे भी नही मिटती।

प्राय इन्ही चिन्ताओ को मिटाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की जाती है। पर विचारणीय बात यह है कि अगर आपने धन की चिन्ता मिटाने के लिए त्रिलोकीनाथ से प्रार्थना की तो क्या आपने त्रिलोकीनाथ को पहचाना है? अगर परमात्मा से आपने यही चाहा तो उसे त्रिलोकीनाथ समझा या सेठ–साहूकार समझा?

धन की चिन्ता तो किसी धनवान् की सेवा करने से ही मिट सकती थी। तुमने धन की चिन्ता का नाश करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की तो उसे त्रिलोकीनाथ नही समझा, किन्तु दरिद्रता का कूडा–कचरा साफ करने वाला समझा। तुमने इससे ज्यादा उसका क्या महत्व जाना?

धन की तरह कई लोग पुत्र सम्बन्धी चिन्ता का नाश करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। विशेषत स्त्रियो को पुत्र–लाभ की लालसा इतनी प्रबल होती है कि अनेक स्त्रिया ताजियो के तीजे की रोटी खाने को तैयार हो जाती है और भैरव–भवानी आदि आदि पूजती फिरती हैं। वह

समझती हैं—भवानीजी पुत्र दे देती हैं। लेकिन भैरव—भवानी पुत्र दे देते हैं, ईश्वर भी पुत्र दे देता है और ताजिया भी, तो ईश्वर भी भवानी—भैरव और ताजिया के समान ही ठहरा!

क्वारेपन मे बेटा नहीं मागा जाता। विवाह के पश्चात् ही यह लालसा पूरी करने की चाह होती है। मतलब यह है कि विवाह होने पर स्त्री से गरज न सरी तब परमात्मा का सहारा लिया। अर्थात् परमात्मा को स्त्री से कुछ बडा माना। क्या यही त्रिलोकीनाथ को समझना कहलाता है?

कई लोग परमात्मा की प्रार्थना शारीरिक रोग मिटाने के लिए किया करते हैं। उनकी समझ मे भगवान् कोई डाक्टर या वैद्य है? जो कार्य एक साधारण वैद्य से भी हो सकता है, उसके लिए तुम परमात्मा से प्रार्थना करते हो तो परमात्मा की महिमा नही समझते।

दुनिया की सभी चीजे मूल्य वाली हैं और परमात्मा अनमोल है। अनमोल परमात्मा से तुच्छ मूल्य की चीजो की याचना करना क्या परमात्मा का अपमान करना नहीं है क्या यह उसके त्रिलोकीनाथ—स्वरूप को समझना हे?

तात्पर्य यह है कि जिस चिन्ता का नाश वैद्य, साहूकार, राजा, स्त्री आदि से भी न हो सके और जिस चिन्ता का नाश होने के पश्चात् फिर कभी कोई चिन्ता प्रादुर्भूत ही न हो—अनत निश्चिन्तता उत्पन्न हो जाय, उस चिन्ता को मिटाने के लिए प्रार्थना की जाय, तो समझे कि तुमने परमात्मा को जाना है। जो क्षुद्र चिन्ताये वैद्य आदि के द्वारा भी दूर हो सकती हैं, उनके लिए परमात्मा से प्रार्थना करना परमात्मा की महिमा को न समझना हे।

अब प्रश्न होता है—परमात्मा की प्रार्थना किस उद्देश्य से करनी चाहिए? इस सम्बन्ध मे कहा हे—

'मेरे काटो पुराकृत पाप।'

भगवान्! तू त्रिलोकीनाथ हे। में तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे पूर्वकृत पाप काट दे।

परमात्मा से जब मॉगने लगे तो ऐसी चीज ही क्यो नही मॉगते कि जिसमे सभी का समावेश हो जाय?

एक बुढिया पर उसका आराध्य देव प्रसन्न हो गया। देव ने कहा—'वृद्धे! तेरी इच्छा हो सो माग।' बुढिया होशियार थी। उसने सोचा—अलग—अलग चीजे मागने से तो कई एक हो जाएगी, कुछ ऐसा माग लू जिसमे सभी बाते आ जाए। उसने देव से माग की—में सातवे मजिल पर, अपने पोते को, सोने

के थाल मे खीर खाते देखू।' बुढिया की इस माग मे सभी कुछ आ गया। सोने के थाल मे पोता खीर खाएगा तो उसके साथ और धन–सम्पत्ति भी होगी ही। इस पकार उसने धन भी माग लिया, पोता भी माग लिया, महल भी माग लिया और लम्बा आयुष्य भी माग लिया।

तुम गृहस्थ हो, तुम्हे पैसे की, पुत्र की और धन आदि सभी व्यावहारिक वस्तुओ की आवश्यकता रहती है। लेकिन इन्ही सबके लिए ईश्वर की प्रार्थना करना क्या ईश्वर को पहचानना है? तुम उस बुढिया की तरह, परमात्मा से एक ही बात क्यो नही माग लेते जिसमे इन सबके समावेश के साथ और भी बहुत–सी बातो का समावेश हो जाता है? ऐसी क्या चीज है? इसके लिए कहा गया है–

"मेरे काटो पुराकृत पाप।"

जब परमात्मा से पूर्वोपार्जित पापो के नाश की याचना कर ली तो और क्या याचना करना शेष रहा? पाप ही सुख मे बाधक है? वह न रहेगा तो सभी सुख बिना बुलाये आएगे।

गाडी चलने पर आप ही मालूम हो जाता है कि रास्ता साफ है या नहीं? गाडी बेरोक चली जाय तो समझा जाता है रास्ता साफ है, अगर कही रुकावट आ गई तो यह मान लिया जाता है कि रास्ते मे गड–बडी है। इसी प्रकार शरीर रूपी गाडी मे आत्मा विराजमान है। आत्मा की गति मे रुकावट न आए और सब काम बराबर होता रहे तो समझ लो कि पुण्य का उदय है। ऐसा न हो तो पाप का उदय समझो। आप अपनी गाडी को देखो, कही अटकती तो नही है? आपके मन की सभी अभिलाषाए बराबर पूरी हो रही हैं या नहीं?

तो गाडी अटकी है। रास्ता साफ करने का उपाय पाप काटना है। मगर स्मरण रखना, परमात्मा की शरण लिये बिना, दूसरे मिथ्या उपायो से पापो को काटने का प्रयत्न करोगे तो पाप और बढ जाएगा।

पाप मे भी एक प्रकार की मिठास है। पाप मे मिठास न होती, पाप अच्छा न लगता तो कोई करता ही क्यों? मिठास, यही कारण है कि लोग पाप की ओर प्रवृत्त होते हैं।

धन की आवश्यकता अनुभव करके आपने व्यापार किया। व्यापार करने पर आपको लोभ हो आया। लोभग्रस्त होकर आपने परमात्मा से धन की याचना की तो आपने परमात्मा को नही जाना। इसके विरुद्ध, आपने प्रभु से कहा–मै तन, धन आदि तुझे सौंपता हूँ, लेकिन मेरे पाप कट जाएँ। तो ऐसा

कहने से और पापो का नाश हो जाने से परमात्मा को भी जाना और तन, धन आदि तो रहेगे ही। लेकिन यह कथन जीभ का न हो, अन्तरात्मा का हो, यह ध्यान रखना होगा।

आप मन, वचन, काय के अनुसार कार्य करना चाहते हैं, लेकिन होते नहीं हैं। इस प्रकार गाडी का अटकना पाप की निशानी है। लेकिन इस कथन मे अपवाद भी हो सकता है। कभी–कभी गाडी अटकना पुण्य का प्रताप भी हो सकता है। उदाहरणार्थ–एक आदमी एकान्त मे मदिरापान करना चाहता है, मगर उसे अवसर नही मिलता। यह भी गाडी अटकना है। यह पुण्य का प्रताप है। ऐसे अवसर पर कोई परमात्मा को स्मरण करके अपनी गाडी चलाना चाहे तो यह गाडी चलाना नही है, किन्तु चलती गाडी को गड्ढे मे गिराना है। अगर मदिरापान के बिना चैन नहीं मिलता तो ईश्वर से यह प्रार्थना करो कि–प्रभो! मेरी गाडी रुकी है, मेरा मार्ग साफ कर दे। अर्थात् मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करे कि मै अपने मन को अपने नियत्रण मे रख सकू।

पाप–जनक इष्ट सयोग होने पर भी अगर नही मिलते तो पाप का नही, पुण्य का उदय समझो। उदाहरणार्थ–तीव्रतर क्रोध के आवेश मे आकर एक मनुष्य आत्म–घात करने के अभिप्राय से शस्त्र या विष खोजता है। उसे शस्त्र या विष मिल जाना पुण्य है या न मिलना पुण्य है? 'न मिलना।'

क्रोध की आग के समान ही काम की आग भी प्रचड होती है । काम की आग से सतप्त होकर ही पुरुष वेश्या आदि की अभिलाषा करता है। अगर उसे उसकी प्राप्ति नहीं होती तो वह पुण्य के कारण या पाप के कारण ? 'पुण्य के कारण।'

अब विचार कर देखो कि परमात्मा को किधर बुलाना चाहते हो? वेश्या आदि न मिलने के लिए भगवान् को बुलाना है या मिलने के उद्देश्य से?

क्रोध से पागल हुए को आत्महत्या के लिए शस्त्र न मिलना पुण्य का प्रताप है। इसी प्रकार काम–वासना का जागना ओर व्यभिचार की भावना होना भी आत्महत्या से कम पाप नही है। काम वासना की पूर्ति का साधन न मिलना भी पुण्य ही समझो। प्रार्थना मे कहा है–

'म्हारा काटो पुराकृत पाप।'

भगवान्! तेरी कृपा हुए बिना पाप की वासना नही मिटेगी। मेरे मन से काम वासना चली जाए, यही तुझसे चाहता हूँ।

लोभ से प्रेरित होकर कोई मुद्दई वकील के पास झूठा मुकदमा ले जाता है। लोभी वकील भी सोचता है कि मुकदमे मे तो अधिक आमदनी नही

होती, इसलिए हे भगवान्! कोई झूठा मामला आ जाय तो अच्छा है। प्रभो! तेरी कृपा से ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो सकता है। बस, मै यही चाहता हूँ कि कोई अच्छा–सा झूठा मामला आ जाए और उसमे सफलता मिल जाए।'

अब आप विचार करे कि झूठे मामले का खारिज हो जाना ईश्वर की कृपा समझी जाय या उसमे सफलता मिलना?

मित्रो! स्वच्छ हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करने से मनोवाछित कार्य की सिद्धि होती है। लोभ–लालच, वासना, काम, क्रोध, आदि से मलिन हृदय की पुकार परमात्मा के पास नही पहुचती। इस बात को जानते हुए भी बहुत–से लोग कहते हैं–ईश्वर ने हमारा झूठा मुकदमा सफल नही किया और इस प्रकार हमे ईश्वर ने सहायता नही दी।

आज यही हो रहा है। अपने पक्ष को अन्याययुक्त और असत्य समझते हुए भी लोग उसे सर्वसाधारण के समक्ष न्याययुक्त और सत्य सिद्ध करना चाहते है। असल मे साधु नही है, मगर साधु कहलाना चाहते है। ऐसे समय मे तो यही प्रार्थना करनी चाहिए–हे प्रभो! यह आत्मा साधुपन नही पालन करना चाहता, फिर भी साधु कहलाना चाहता है। तेरी कृपा से इसकी असाधुता का भण्डाफोड हो जाय तो अच्छा है।

पाप हो जाना कोई बडी बात नही है। इन्द्रियॉ बलवान् है और मन अत्यन्त चचल है। अनादि कालीन सस्कार भी कम शक्तिशाली नही हैं। यद्यपि यह ठीक है कि आत्मा इन सभी से अधिक सामर्थ्यवान् है, तथापि वह इन सबके चगुल मे फसकर अपने आपको निर्बल अनुभव करता है। उसकी शक्ति कुण्ठित है। अतएव वह पाप की ओर प्रवृत्त हो जाता है। पाप मे प्रवृत्ति होने पर एक मात्र उत्तम उपाय यह है कि परमात्मा से उन पापो के प्रकट हो जाने के लिए प्रार्थना की जाय। ऐसा करने से पापो से बचने की इच्छा और शक्ति उत्पन्न हो जायेगी। पतिव्रता के वेष मे दुराचार का सेवन बुरा है।

आपको विचार करना चाहिए कि पापी पुरुष पाप बढाने के लिए भले ही ईश्वर का स्मरण और ध्यान करे, मगर ईश्वर पाप बढाने के लिए नही है। कभी विवश होकर असत्य या पाप का आश्रय लेना पडे, तब भी उसे बुरा तो मानो। कम से कम उसकी सफलता के लिए ईश्वर की सहायता तो न चाहे। काम–क्रोध मद–मोह आदि विकारो को दूर करने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करो। परमात्मा से कहो–'प्रभो! मुझे अपने आन्तरिक विकार दूर करने की चिन्ता लग रही है। तू मेरी यह चिन्ता दूर कर दे।'

मोह के प्रताप से छोटी चीज भी बडी दीखने लगती है और बडी चीज भी छोटी दिखाई देने लगती है। कहावत है—मेरा सो अच्छा और अपना नही, सो अच्छा नही। हम बडे रूपवान् और हमारा बेटा बडा गुणवान्! मुह बन्दर जैसा ही क्यो न हो, पर काच मे देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता? बन्दर भी काच मे मुह देखकर प्रसन्न होता है। यह मोह नहीं तो क्या है? मोह के प्रताप से ही लोग सत्य को भूल कर असत्य का आश्रय लेते हैं। एक उदाहरण लीजिए—

एक मेले मे एक मालिन फूल लेकर बेचने के लिए बैठी थी। उसके सामने फूलो से भरा टोकरा था और पास ही छोटा बच्चा भी था। बच्चे ने फूलो के टोकरे के पास अशुचि कर दी। बाजार का मौका ठहरा। मालिन अशुचि फैंकने जाती है तो लोग सूने टोकरे मे से फूल ले जायेगे। अशुचि फैंकने के लिए पास मे कोई स्थान नही है। अगर वही अशुचि पडी रहने देती है तो अशुचि के पास के फूल कौन लेगा? और पुलिस भी रोक—टोक करेगी।

मालिन स्वभावत चतुर होती है। उसने सोचा—और कोई नही है तो दमडी के फूल जाये तो भले जाये, आफत तो मिटेगी। उसने अशुचि पर थोडे से फूल चढा दिये। अशुचि गुलदस्ते के समान मालूम होने लगी।

मालिन ने अपने टोकरे के सब फूल बेच दिये और उठकर चल दी। फूल चढी अशुचि वही पडी रही। दो—तीन मित्र टहलते—टहलते उधर ही जा निकले। एक मित्र ने कहा—देखो, सामने फूलो का गुलदस्ता पडा है। दूसरे ने कहा—मालिन फूल बेच रही थी, भूल गई होगी। तीसरे ने कहा—चलो, आज फूल नहीं खरीदे थे, यह गुलदस्ता सूघने को हो गया। इतना कहकर उसने गुलदस्ते पर हाथ मारा ओर उसकी पाचो उगलिया भर गई। उसने सोचा यह गजब हुआ। यह बात प्रकट करते हैं तो मित्र मजाक करेगे। उसने चटपट अपनी उगलिया धूल आदि से पोंछ ली।

उसके मित्र ने पूछा—क्यो, फूल उठाये नही?

उसने उत्तर दिया—नहीं, वे अपने काम के नही। वे तो हगा देवी पर चढे हुए हैं। इस प्रकार अपनी बात छिपाने के लिए उसने अशुचि को हगा देवी बना दिया।

इस दृष्टान्त मे मोह के सिवा और क्या हे? ऊपरी सोन्दर्य देखकर लुभा जाना और भीतर की असलियत पर विचार न करना ही तो मोह हे। यदि हाथ लगाने वाले को पहले ही मालूम हो जाता कि यह अशुचि हे, गुलदस्ता नहीं है तो क्या वह हाथ लगाता? 'नही।'

अगर वह जान बूझकर ऐसा करता तो मूर्ख गिना जाता मगर ससार के लोग जानते–बूझते भी ऐसा ही करते है।

मल–मूतर की कोथली रे अशुचि तणो भंडार।
ऊपर से कमला लगी रे ता ऊपर सिगार।
हगा देवी समजिया सो,तुम देखो हृदय विचार जी।।

आप लोग हगा देवी की अशुचि को देखते हैं, लेकिन वह अशुचि और कही से नही आई थी, मनुष्य शरीर की ही थी। ऐसे शरीर के प्रति इतना मोह! इस शरीर के खातिर लोग आत्मा को भी भूल जाते है और परमात्मा से भी इसी के हेतु प्रार्थना करते है।

भक्त जन कहते हैं–'प्रभो! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं अपने पुराने पापो को काटना चाहता हूँ। मैं निष्पाप बन गया तो त्रिभुवन की सम्पदा से क्या प्रयोजन है?

यही प्रभु की प्रार्थना का प्रयोजन है। आत्मशुद्धि के लिए चित्त की चचलता के कारण उसमे उत्पन्न होने वाले विकारो को दूर करने के लिए और आत्मा का बल–वीर्य बढाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। निष्काम भक्ति सर्वोपरि मानी गई है। मगर जब तक पूर्ण निष्काम दशा प्राप्ति नही होती, तब तक भी कम से कम सासारिक वासनाओ की पूर्ति और उसके साधन मागने के लिए तो परमात्मा की प्रार्थना करना उचित नहीं है। आत्मा की शुद्धि ही जीवन का श्रेष्ठतम उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा का बल पाने के हेतु उसकी प्रार्थना करोगे तो आपका कल्याण होगा।

प्रभु–प्रार्थना का प्रयोजन

(ख)

सहज उपाय और सहज योग सबके लिए सुन्दर है, कठिन योग का साधन विरले ही कर सकते हैं। इस उद्देश्य से ज्ञानियो ने प्रार्थना का मार्ग निकाला है। प्रार्थना का मार्ग किसी के लिए दुर्गम नही, सबके लिए सुगम है।

प्रार्थना बाल–कवियो की कृति है, यह समझना भूल है। ज्ञानियो ने ओजस्वी भाषा मे जो कुछ बतलाया है, वही बात सर्व साधारण की समझ मे आने योग्य सुगम बाल–भाषा मे प्रार्थना द्वारा प्रकट की जाती है। भक्त–कवियो ने ऐसी प्रार्थनाए उन महात्माओ को भूलकर नही की है, वरन् अपने आपको तुच्छ मानकर और साथ ही जगत् के प्राणियो का असामर्थ्य देखकर की है।

प्रार्थना कवि की भाषा मे बोली जाती है, मगर उसे अपनी ही भाषा समझना चाहिए। प्रार्थनाकार कवि अपने समान ससार के ताप से सतप्त सभी मनुष्यो का प्रतिनिधि है। वादी अदालत मे दावा दायर करता है, मगर उसे अपना दावा समझना नहीं आता। इस कारण फेसला गलत होने की सभावना को टालने के लिए वह अपना प्रतिनिधि वकील नियत करता है। इसी प्रकार भक्त–कवि ससारी जीवो का प्रतिनिधि होकर प्रार्थना करता है। वह ऐसी सरल भाषा मे प्रार्थना करता है कि उसे सब भली–भाति समझ सके। इस प्रकार की एक प्रार्थना है–

श्री अभिनन्दन दु खनिकदन, वंदन पूजन जोग जी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।।

यह कोन नहीं चाहता? प्राणी मात्र की यह प्रार्थना है। दु खी ही प्रार्थना करते हैं। जिन्हे किसी भी प्रकार का दु ख नही वे क्यो प्रार्थना करगे?

इस प्रार्थना मे कहा है—प्रभो! हम दुखी हैं। हमारा दु ख दूर करो। तू वन्दन और पूजन के योग्य है। ससार मे वन्दना, पूजा, सब चाहते हैं, लेकिन वास्तव मे वन्दन–पूजन के योग्य तू ही है! क्यो कि तू दु ख–निकदन है। सूर्य की पूजा उसके प्रकाश के कारण ही हैं। वह प्रकाश न करे तो उसे कौन पूजता? प्रकाश न करना, पर का उपकार न करना और वन्दना–पूजा चाहना बेईमानी और चालबाजी है।

आज सर्वत्र यही विरूपता दिखाई पडती है। उद्योग न करना पडे परन्तु धन के ढेर लग जाए। अगर कोई जुआ का अक बताने लगे तो सब उसके चरणो पर लोटने लगे। लोगो की इस आलस्यमयी दशा ने उन्हे सच्चाई से गिराकर गुलामी मे फसा दिया है। इसी कारण लोग अपने ही लायक गुरु खोज लेते हैं और वैसा ही धर्म भी तलाश करते फिरते हैं। धर्म का मार्ग वीरो का है और लोगो मे कायरता आ गई है। कायर लोग वीरो के धर्म को कैसे अपना सकते हैं? मेहनत न करके मजे का मनोरथ रखना वीरो का काम नही है, और जब तक वीरता न होगी, ईश्वर का स्वरूप भी नजर नही आएगा।

'जब भगवान् ही दु ख का नाश कर देता है—दुख निकन्दन है—तो हमे क्या करना है? हम उद्योग करने की खटपट मे क्यो पडे? सूर्य हो तो दीपक जलाने की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहने वाले प्रमादशील व्यक्ति दु खो से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं?

परमात्मा से सभी अपना–अपना दु ख दूर कराना चाहते हैं, प्रार्थना भी इसीलिए करते हैं, लेकिन जब तक यह न जान लिया जाय कि दु ख क्या है और किन दु खो का नाश करने के लिए प्रार्थना मे परमात्मा से कहा गया है, तब तक काम नही चल सकता।

सूर्य तो प्रकाश करता ही है, मगर प्रकाश को ग्रहण करने के लिए आपको आखे खोलने की आवश्यकता है या नहीं? कदाचित् कहने लगोगे—सूर्य प्रकाश करने वाला है ही फिर हमे आख खोलने की क्या आवश्यकता है? वह हमारे आख न खोलने पर भी हमारे लिए प्रकाश क्यो न करे? यह कथन बुद्धिमत्तापूर्ण नही है।

ईश्वर दु ख का नाश करता है, इस विषय मे भी यही बात समझ लेनी चाहिए। ईश्वर अपना काम करता है, आप अपना काम करे। सूर्य प्रकाश करता है मगर हम भी अपनी आखे खोले! कहते हैं, बिल्ली के बच्चो की आखे कई दिनो तक बद रहती है, परन्तु आखिर तो वे खुलती ही हैं। लेकिन आप अपनी आखे कब तक बद किये रहेगे?

आपके आखे खोलने का अर्थ यह है कि आप अपने दु ख को भली–भाति समझे। यानि यह जाने कि हमारा दु ख क्या है? जब तुम अपना दु ख ही न समझोगे तब परमात्मा दु ख क्या नष्ट करेगा? प्रकाश वही चाह सकता है जो अन्धकार को जानता हो। आप अपने दु ख को समझो परमात्मा तो दु ख–निकदन है ही। अगर आप अपने असली दु ख को समझ पाएगे तो परतात्मा की प्रार्थना का प्रवाह कभी बद नहीं होगा। फिर निरन्तर और प्रमोदमय प्रार्थना जारी ही रहेगी।

'सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके।'

अर्थात् हे भगवन्! तेरी महिमा सूर्य से भी अधिक है।

जो काम सूर्य से हो सकता है उसके लिए परमात्मा का स्मरण करने की क्या आवश्यकता है? सूर्य से न हो सकने वाले कार्य के लिए ही परमात्मा को याद करना उचित है। जो अधेरा सूर्य से नहीं मिट सकता, उसे मिटाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करना बुद्धिमत्ता है।

आज के लोग इन्द्रिय–भोग की पूर्ति के साधन को ही धर्म मान बैठे हैं। इसी भ्रम के कारण गडबड मे पड जाते हैं। ईश्वर से भी ऐसा ही दु ख मिटाने की प्रार्थना करते हैं। मगर ऐसी प्रार्थना करना ईश्वर को न समझने का प्रमाण है।

अब देखना चाहिए कि सूर्य कौनसा प्रकाश नही कर सकता, जिसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करना उचित हे?

कदाचित् सूर्य का प्रकाश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर सकता होता, सूर्य के प्रकाश से अन्तरात्मा के पाप धुल जाते होते, तो ससार मे चोरी–जारी न रहती, पुलिस ओर कचहरिया भी न रहती ओर न सत्सग या धर्मोपदेश की आवश्यकता ही रहती। लेकिन सूर्य से यह काम न हो सका। धूर्त मन को, बेवकूफ इन्द्रियो को और मिथ्याचारिणी बुद्धि को नियन्त्रित करके इन पर विजय पाने का काम सूर्य से नहीं हुआ। तभी परमात्मा से प्रार्थना करने की आवश्यकता हुई कि–'हे प्रभो! यह काम तेरे सिवा ओर कोई नही कर सकता।'

भक्त कहते हैं–'प्रभो! मेरा हृदय ही वह भूमिका है, जिस पर दु ख का विकराल विषवृक्ष बढता है, अकुरित होता ओर फूलता फलता हे। मगर में अभी तक यह भी न जान पाया था। ज्ञान का अभिमान तो मुझे वहुत था, मगर अपने हृदय का हाल भी मुझे मालूम नहीं था। में वाहर के पदार्थो मे ही

दुख देखा करता था, [illegible]
का बीज मेरे अन्तकरण मे है—बाहर नही।'

मित्रो! क्या अन्तरात्मा के विकारो का नाश करना अपना कर्तव्य नहीं है? आप गृहस्थ हैं, इसलिए गृहस्थी के दुख से घबराकर भी शान्ति चाहते हैं, लेकिन बाह्य शान्ति न चाहकर आन्तरिक शान्ति चाहो। आन्तरिक शान्ति ही असली, परिपूर्ण और शाश्वत शान्ति है। आन्तरिक शान्ति प्राप्त होने पर मनुष्य की सकल कामनाए सफल हो जाती है, त्रिलोक की सम्पदा दासी बन जाती है।

बाह्य विभूति, ऋद्धि–सिद्धि, सम्पदा, कुटुम्ब–परिवार आदि शान्ति और सुख के माने जाने वाले साधन पारमार्थिक शान्ति नही दे सकते। इतना ही नही, बल्कि इनके निमित्त से अशान्ति ही पल्ले पडती है। पर–पदार्थों के साथ जितना अधिक सयोग होगा, उतनी ही व्याकुलता बढेगी और जहा व्याकुलता है वहा शान्ति कहा? पर–निर्भर रहने वाले को सदैव अशान्ति का अनुभव करना पडता है। आध्यात्मिक दृष्टि से, तात्त्विक विचार से देखो तो आत्मा के अतिरिक्त सभी सासारिक पदार्थ 'पर' हैं और उनके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध न जोडने मे ही सुख और शान्ति है। यही आन्तरिक शान्ति है।

उदाहरणार्थ–कल्पना कीजिए, एक आदमी को भयानक बीमारी है। वह बीमारी भीतरी है। बीमार मनुष्य के सामने एक वैद्य खडा है और एक धनिक खडा है। वैद्य कहता है—तू भीतर की बीमारी मिटाने के लिए मुझसे दवा ले। मैं तुझे दवा देता हूँ। धनिक कहता है—तू मुझ से अच्छे–अच्छे कपडे और गहने ले ले, पर तेरा रोग नही जाने दूगा। बीमार को धनिक की यह बात जचेगी? 'नही!'

अब एक तीसरा आदमी कहता है—'मैं ऐसा उपाय करूगा कि तेरे बाहर के कपडे भी हो जाएगे और भीतर का रोग भी चला जायेगा। यह बात रोगी को पसद आएगी या नही? 'पसद आएगी।'

मतलब यह है कि भीतरी शान्ति के बिना बाहरी शान्ति किसी काम नही आती। अलकारिक भाषा मे रावण की लका सोने की कही जाती है, इसका यह अर्थ तो है ही कि रावण के पास सम्पत्ति की कमी नही थी। उसे असीम ऊपरी वैभव प्राप्त था, मगर भीतरी विकार नही दबा तो पलग पर पडा हुआ भी वह 'हाय सीता, हाय सीता' करता था। वह विकार के वश होकर अपनी अपार सम्पदा को ओर मदोदरी आदि को तुच्छ मानता था। इस प्रकार उसका सताप ही उसे दुख दे रहा था। यह आतरिक शान्ति न होने का कारण

है। वह वाह्य शान्ति पाकर भी आन्तरिक शान्ति नहीं पा सका और अन्त मे आन्तरिक अशान्ति की धधकती हुई धूनी मे उसकी सम्पूर्ण बाह्य शान्ति भी भस्म हो गई।

इस उदाहरण से आप समझ लीजिए कि आप रावण की तरह अपना दु ख मिटाना चाहते हैं या राम की तरह?

रावण की तरह दु ख मिटाने के लिए कौन दु खो के अग्निकुण्ड मे प्रवेश करना चाहेगा? अगर कोई इस प्रकार से अपना दु ख मिटाना चाहता हे, तो उसे सतो का उपदेश सुनने की क्या आवश्यकता है?

मुकुट राम के सिर पर भी था और रावण के सिर पर भी। किन्तु राम का मुकुट हृदय की शुद्धि के लिए था और रावण का दूसरो को दु ख देने के लिए। दोनो के जीवन के अतिम परिणाम को देखो कि उनमे कितना अन्तर पड गया। एक ने असीम, अनन्त और शाश्वत सुखशान्ति प्राप्त की और दूसरे को नारकीय यातनाओ का अतिथि बनना पडा। फिर भी आप बाह्य वैभव को ही शान्तिदाता मानते हे?

राम ने अन्त मे कहा था–

नाह रामो न मे वाछा, विषयेषु न च मे मन ।
शान्ति मिच्छामि जिनो यथा।।

राम कहते हैं–तुम जिस दृष्टि से मुझे राम कहते हो मैं वह राम नही न मुझ मे वह वाछा ही हे। मे माया की गोदी मे रमने वाला राम नही हूँ। अब मैं त्रिगुणातीत होना चाहता हूँ–त्रिगुण मे नही रहना चाहता। मैं अपनी आत्मा मे शान्ति चाहता हूँ। जेसी शान्ति जिन भगवान् ने प्राप्त की, वेसी ही शान्ति मैं भी प्राप्त करना चाहता हूँ।

राम ने आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिए जिन का ध्यान किया है, राग–द्वेष मिटाने की चेष्टा की हे। अगर तुम अपनी आत्मा को शान्त बनाना चाहते हो तो हृदय मे उठते हुए क्रोध ओर काम को हटाओ। रावण की तरह वाह्य शान्ति प्राप्त करने पर हृदय मे काम–क्रोध की भयकर अशाति का उदय होगा ओर उस अशान्ति मे वाहरी शान्ति भी समाप्त हो जायेगी।

साराश यह हे कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा अगर आप दु ख मिटाना चाहते ह तो पहले दु खो को समझना होगा। जव तक आप दु खो का असली स्वरूप नहीं समझ लेते तव तक दु खो का नाश भी नही हो सकता। असली दु ख आन्तरिक ही हे। वाहरी तो कोई दु ख ही नही ह। आन्तरिक विकारो

को नष्ट करने का यत्न करो, फिर देखोगे कि दुःखो की जड ही उखड गई है।

खट-पट मे पडे रहने पर भी लोभ को जीते बिना और काम-क्रोध को मारे बिना भी सुख मिल सकेगा, यह समझना भूल है। मागने से ही कोई वस्तु नही मिलती। हॉ, कद्र जरूर घट जाती है। ऐसी हालत मे माग कर इज्जत गवाने से क्या लाभ है? विश्वास रक्खो, ईश्वर के दरबार मे सतोष करके रहोगे तो रोटी दौडकर आएगी। ससार मे बडे कहलाने वालो के भी घर गया हुआ और शान्ति से बैठने वाला, न मागने पर भी भूखा नही रहता, तो क्या ईश्वर के चरणो मे बैठकर भूखे रहोगे? सतोष रखकर कल्याण-कामना करोगे तो अवश्य कल्याण होगा। गीता मे कहा है-

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

मनुष्य को कर्त्तव्य करने का अधिकार है, फल मागने का अधिकार नही है। कर्त्तव्य करो और फल की चाह से बचो, तो सच्ची शान्ति मिलेगी।

ससार के अन्यान्य व्यापारो की तरह धर्म भी व्यापार बन गया है। लोग चाहते हैं-इधर धर्म करे और उधर तत्काल फल मिल जाय। उधार धर्म किस काम का? ऐसे ही एक कवि ने कहा है-

मने रोटना आपो राम, जदि भजू तमारो नाम।
चार अवेरी चार सवेरी, चार दोपहरी वारा।।
एटला माही चूक पडे, तो मेलो थारी माला।।
छाछडो तीरथ राबडो, तीरथ तीरथ घुग्ररी बाकरा।
विचले विचले रोटलो, तीरथ बडो तीरथ अगा कडा।।

इस प्रकार की क्षुद भावनाओ के साथ की हुई प्रार्थना सार्थक नही होती। पार्थना का प्रयोजन महान् है, उच्च है, उज्ज्वल है। मानव-जीवन के चरम साध्य शाश्वत मुक्ति के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। जो इस निर्मल और निर्विकार भाव से प्रभु की प्रार्थना करते है, समस्त कल्याण उन्हे खोजते हुए आते हैं।

परमात्मा की महिमा इतनी अधिक है कि प्रत्येक ईश्वर प्रेमी उसका साक्षात्कार करना चाहता है। कभी-कभी भक्त जनो के हृदय मे ईश्वर के लिए इतनी तीव्र व्याकुलता पैदा हो जाती है कि न पूछिए बात। भारत का सन्त-साहित्य देखने से यह बात स्पष्ट मालूम हो जायेगी। ऐसी अवस्था मे यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि ईश्वर का साक्षात्कार किस प्रकार हो सकता है?

भौतिक दृष्टि से ईश्वर नही देखा जा सकता। यह सभव नहीं कि हम अपने बाह्य नेत्रो से ईश्वर का रूप निरख ले। ऐसा होता तो सभी के लिए वह प्राप्त होता। ईश्वर को देखने के लिए ज्ञान–दृष्टि की आवश्यकता है। ईश्वर के विषय मे सिद्धान्त कहता है–

'चदेसु निम्मलयरा आईच्चेसु अहिय पयासयरा।'

अर्थात्–भगवान् चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल और सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान है। तात्पर्य यह है कि अगर ईश्वर को नही देखा तो चन्द्रमा को तो देखा है। ईश्वर चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल है। सूर्य को प्रति दिन देखते हो। ईश्वर का प्रकाश सूर्य से भी अधिक है।

सूर्य का प्रकाश सारे ससार को व्याप्त कर लेता है तो जो ईश्वर सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान है, क्या वह दूर होगा?

सूक्षम से सूक्षम प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप।
पवन शब्द आकाश थी, सूक्षम ज्ञानसरूप।।अनंत ।।

वह अनन्त परमात्मा कहा और कैसा है? उसके अनन्त रूप–शक्तिया हैं। यह स्थूल सूर्य भी पदार्थ को स्पर्श न करे तो उसे प्रकाशित नही कर सकता, तो ईश्वर के साथ एक–मेक हुए बिना ईश्वरीय प्रकाश किस प्रकार मिल सकता है?

सूर्य का पता लगाने के लिए पहले स्थूल वस्तु देखी। सोचो–यह वस्तु रात मे दिखाई नहीं देती थी और अब दिखाई देने लगी है। इससे सिद्ध हे कि सूर्योदय हो गया। ऐसा विचार करने से सूर्य को न देखने वाला भी सूर्योदय का पता लगा लेता हे। इसी प्रकार ईश्वर के सबध मे विश्वास करो कि अभी अज्ञान हे। इस कारण बडी–वडी वस्तुए भी दिखाई नही देती, परन्तु ज्ञान ज्यो–ज्यो बढेगा त्यो–त्यो ईश्वर का भी रूप दिखाई देता जायेगा।

बचपन मे सूक्ष्म ओर पेचीदा वाते समझ मे नही आती थी, मोटी ओर सीधी बात ही समझ मे आती थी। अब बडे होने पर वहुत–सी वाते समझ मे आने लगी हे। वालक जो कुछ भी देखता हे, आत्मा की ही शक्ति से देखता हे। आत्मा की शक्ति ही विभिन्न स्रोतो के द्वारा प्रवाहित होती हे। लेकिन उसकी आत्मा, वुद्धि ओर उसका मन अधिक विकसित नहीं हे। इनका विकास होने पर वही वालक सूक्ष्म वाते भी समझने लगता हे।

एक आदमी विद्याध्ययन द्वारा चर्मचक्षु को नही हृदय की आख को खोलता ह। दूसरा मूर्ख वना हुआ हे। इन दोनो की दृष्टि मे अन्तर रहता हे या नहीं? मूर्ख मनुष्य केवल दीखने वाली मोजूदा चीज को ही देखता हे ओर

विद्वान् पुरुष भूत, भविष्य और वर्त्तमान सभी को जानता है। सात भोयरो के भीतर बैठा हुआ भी ज्योतिषी चन्द्र–सूर्य–ग्रहण का जो समय बतला देता है, उसी समय ग्रहण होता है। उसने ग्रहण को चर्म चक्षुओ से नही देखा वरन् विद्याध्ययन से हृदय के जो नेत्र खुल गये हैं, उनसे देखा है। इन नेत्रो का जब अधिक विकास होता है–साधना के द्वारा आत्मज्ञान हो जाता है, तब परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् जिस विद्या से सब प्रकार के बधन कट जाते हैं, वही सच्ची विद्या है। इस विद्या की तरफ ध्यान दिया जाय तो बारीक से बारीक चीज भी दिखाई देने लगेगी । आत्मा के सब आवरण हट जाएगे, बन्धन कट जाएगे, आत्मा पूर्ण और मुक्त हो जायगा। इस स्थिति मे स्वत भान होने लगेगा कि–'य परमात्मा स एवाह।' अर्थात् मै ही परमात्मा हूँ।

आत्मा मे ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोडी भूल हो रही है। भूल यही कि जिस ओर मुह करना चाहिए, उस ओर मुह न करके विपरीत दिशा मे कर रक्खा हैं।

सूर्य पूर्व मे उदित हुआ है। एक व्यक्ति पश्चिम की ओर मुह करके खडा है। उसकी परछाई पश्चिम मे पड रही है। अपनी परछाई देखकर वह व्यक्ति उसे पकडने दौडता है। ज्यो–ज्यो वह आगे बढता है, परछाई भी आगे बढती है। वह खीझकर परछाई पकडने दौडता है, तो परछाई भी उसी तेजी के साथ आगे–आगे दौडती जाती है, किसी तरह भी परछाई हाथ नही आती।

इस व्यक्ति की परेशानी किसी ज्ञानी ने देखी। उसने दयालुता से प्रेरित होकर कहा–'भाई, तू करता क्या है? क्यो इस प्रकार भाग रहा है?'

भागने वाला बोला–'मै अपनी छाया पकडने के लिए दौड रहा हूँ मगर वह हाथ नही आती। मैं जितना दौडता हूँ, छाया भी उतनी ही दौड लगा देती है।'

ज्ञानी ने कहा–'छाया को पकडने का उपाय यह नही है। तू पूर्व की ओर मुह करके आगे बढे तो तेरी छाया भी तेरे पीछे–पीछे हो लेगी। तू अपना मुह बदल लेगा तो तुझे छाया के पीछे भागने की आवश्यकता नही रहेगी, बल्कि छाया तेरे पीछे भागेगी।'

भागने वाले ने अपना मुह फेरा और पूर्व की ओर भागने लगा। परछाई भी उसके पीछे–पीछे साथ–साथ आने लगी। इस प्रकार पहले वह

छाया के पीछे दौडकर परेशान हो रहा था, फिर भी छाया हाथ नही आती थी, अब छाया ही उसके पीछे दौडने लगी।

इस उदाहरण का अभिप्राय यह है कि अगर तुम आत्मा और परमात्मा की ओर दृष्टि न लगाकर माया के पीछे दौडकर उसे पकडना चाहोगे तो माया तुम से दूर रहेगी। माया के दूर रहने का अर्थ यह है कि तृष्णा कभी नही मिटेगी परन्तु आत्मा एव परमात्मा पर दृष्टि रखोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौडेगी, जिस प्रकार सूर्य की ओर दौडने से परछाई पीछे–पीछे दौडती है। माया के पीछे भागने से तृष्णा कभी नही मिटती। इसके लिए एक उदाहरण लीजिये–

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुचा। महात्मा ने कहा–'मनुष्य शरीर सुलभ नही है। धर्म क्रिया करो। धर्म का आचरण न किया तो शरीर किस काम का?' आगत मनुष्य ने कहा–'महाराज! घर मे तो बाल–बच्चे हैं। उनका पालन–पोषण करना पडता है। ससार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। सारे दिन दौड धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता हे। कही कुछ आजीविका का प्रबध हो जाय, घर का काम चलने लगे तो धर्म ध्यान करू!

महात्मा ने पूछा 'तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो तू भगवान् का भजन किया करेगा?'

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा– 'ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या हैं? फिर तो में ऐसा भजन करू कि ईश्वर ओर मे एक–मेक हो जाऊ!'

महात्मा ने उसका हाथ लेकर उस पर एक का अक लिख दिया। उसे किसी भी प्रकार प्रतिदिन एक रुपया मिल जाता था। एक रुपया रोज मे वह खाता–पीता ओर अपनी सन्तान का पालन–पोषण करता। मगर उससे अब पहले जितना भी भजन नही होता था।

एक दिन वह फिर उन्ही महात्मा से मिला। महात्मा ने उससे कहा–'आजकल तू क्या करता हे? अब भी भजन नही करता!'

वह बोला–'हॉ महाराज अच्छी याद दिलाई आपने। आपने एक रुपया रोज का प्रबध कर दिया हे, मगर आप ही सोच देखे कि एक रुपया रोज मे खाने–पीने कपडे–लत्ते स्त्री के गहने आदि का खर्च किस प्रकार निभ सकता हे?

महात्मा ने पूछा– फिर चाहता क्या हे?

उसने कहा–'महाराज, और कुछ नही, दस रुपया रोज मिल जाय तो खर्च बखूबी चल सकता है।'

महात्मा 'दस रुपया रोज मिलने पर तो भगवान् का भजन किया करेगा? फिर गडबड तो नही करेगा?'

उसने उत्तर दिया–'नही महाराज! फिर काहे की गडबड। इतने मे तो मजे से काम चला जायगा।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक का जो अक बना दिया था, उसके आगे एक शून्य और बढा दिया। अब उसे प्रतिदिन दस रुपये अर्थात् तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगे। उसने अपना काम खूब बढा लिया। कही कोई दूकान, कही कोई कारखाना चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसे तनिक भी फुर्सत न मिलती। स्त्री कहने लगी–घर मे अच्छे दिन आये है तो मेरी भी कुछ सुध लोगे या नहीं? स्त्री के ऐसे आग्रह से उसके लिए भी आभूषण बनने लगे। उसके रहन–सहन का पैमाना (Standard) भी ऊचा हो गया। विवाह सगाई भी ऊची हैसियत के अनुसार ही होने लगे।

कुछ दिनो के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले। बोले–'आजकल तुझे दस रुपये रोज मिलते हैं, अब क्या करता है? अब भी तू भजन नही करता?'

उसने उत्तर दिया–'दीनदयाल! खूब स्मरण दिलाया आपने। आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है, मै उसका दुरुपयोग नही करता। आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता नही! ससार मे बैठे है। गृहस्थी का भार सिर पर है। इज्जत के माफिक ही सब काम करने पडते है।

महात्मा बोले–'मैंने दस रुपये रोज ससार का प्रपच बढाने के लिए दिये थे या घटाने के लिए?'

उसने कहा–'करुणानिधान! गृहस्थी मे प्रपच के सिवाय और क्या धरा है? प्रपच न करे तो काम कैसे चले?'

महात्मा–'फिर तू क्या चाहता है?'

वह बोला–'आपकी दया। आपकी दया हो जाय और कुछ आमदनी बढ जाय तो जीवन सफल हो।'

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढा कर सौ रुपया रोज कर दिये। अब उसे प्रतिदिन सौ, महीने मे तीन हजार और वर्ष मे छत्तीस हजार रुपये मिलने लगे। अतनी आमदनी होते ही उसका काम–धधा और बढ गया। मोटर बग्घी और तागे दौडने लगे। पहले कदाचित् अवकाश मिलने की

जो सभावना थी, वह भी अब जाती रही । वह इतनी उलझनो मे फस गया कि उसे महात्मा को मुह दिखलाना भी कठिन हो गया।

आज के श्रीमत भी आत्मकल्याण मे कितना समय व्यतीत करते हैं? वे समझते हैं, मानो हमारी सृष्टि ही अलग है, गरीबो और अमीरो की दो भिन्न–भिन्न सृष्टिया हैं।

प्रार्थना

श्री महावीर नमूं वरनाणी।

यह भगवान् महावीर की प्रार्थना है। प्रार्थना आत्मा की आनन्ददायिनी वस्तु है। प्रत्येक प्राणी और विशेषत मनुष्य को प्रार्थनामय जीवन बनाना आवश्यक है। त्यागीवर्ग यानि साधु–सतो को ही नही, किन्तु पतित से पतित जीवन बिताने वालो को भी परमात्मा की प्रार्थना करके जीवन को पवित्र और पवित्रतर बनाने का अधिकार है। ससार मे जिसे पापी कह कर लोग घृणित समझते हो, ऐसे घोर पापी, गो, ब्राह्मण, स्त्री और बालक के घातक, चोर, लबारी, जुआरी और वेश्यागामी अथवा पापिनी, दुराचारिणी और दुष्कर्म करने वाली स्त्री को भी परमात्मा की प्रार्थना का आधार है।

इस प्रकार जो प्रार्थना त्यागी और भोगी, सदाचारी और दुराचारी, सज्जन और दुर्जन, पापी और पुण्यात्मा सभी को समान रूप से आधारभूत है, गुणदायिनी है, उस प्रार्थना मे कैसी शक्ति है? एकाग्र–चित्त होकर प्रार्थना मे ध्यान लगाने से ही इस प्रश्न का समाधान हो सकता है। प्रार्थना का वास्तविक मूल्य और महत्व प्रार्थनामय जीवन बनाने से ही मालूम हो सकता है। प्रार्थना चाहे सादी भाषा मे हो या शास्त्रीय शब्दो मे हो, उसका आशय यही होता है कि –

गो ब्राह्मण प्रमदा बालक की मोटी हत्याकारो।
तेनो करणहार प्रभु भज ने होत हत्या से न्यारो।।पदम प्रभु।।
वेश्या चुगल छिनाल कसाई चोर महा बटमारो।
जो इत्यादि भजे प्रभु! तो ने तो निवृत्ते ससारो।।पदम ।।

जो वस्तु इतनी पावन है, उसकी महिमा जीभ से किस प्रकार कही जा सकती है? जीभ मे बुद्धि मे और मन मे प्रार्थना की महिमा प्रकट करने की शक्ति कहा? ससार ने जिसकी अवहेलना कर दी है, लोग जिसका मुह

देखना पाप समझते हैं और जिसे पास मे खडा भी नहीं रहने देना चाहते, ऐसे पापी को भी जो प्रार्थना पवित्र बना देती है और ऐसा पवित्र बना देती है कि उसको घृणा करने वाले लोग ही उसकी प्रार्थना करने लगते हैं तथा प्रार्थना करके अपना जीवन सफल मानने लगते हैं। उस प्रार्थना की महिमा अपार है। उसकी महिमा कौन कह सकता है?

परमात्मा की प्रार्थना मे इतनी पावनी शक्ति है। फिर भी जो लोग प्रार्थना मे न लग कर गदी बातो मे जीवन लगाते हैं, उन–सा मूर्ख और कौन होगा? परमात्मा की प्रार्थना मे न धन खर्च करने की आवश्यकता है, न कष्ट सहन करने की ही। हृदय को शुद्ध करके परमात्मा पर विश्वास रखकर उसका स्मरण करना ही प्रार्थना है। ऐसे सरल उपाय का अवलम्बन करके कौन विवेकशील पुरुष पवित्र न बनना चाहेगा?

प्रार्थना किसे पवित्र नही बना सकती? जो पानी राजा की प्यास बुझा कर उसके प्राण बचाता है, वही पानी क्या एक अधर्मी की प्राण रक्षा न करेगा? जो अन्न राजा, महाराजा, तीर्थंकर, अवतार आदि सब के प्राणो की रक्षा करता है, वह क्या कनिष्ठ प्राणी के पेट मे जाकर उसकी रक्षा नही करेगा? अन्न की कीमत चुकानी पडती है और पानी भी बिकने लगा है लेकिन पवन प्राणरक्षा करता हे या नही? और वह सभी के प्राणो की रक्षा करता है या किसी–किसी के ही प्राणो की? अगर थोडी देर तक ही पवन नाक मे न आवे तो क्या जीवनरक्षा हो सकती है? नही। ऐसी दशा मे मरण के सिवाय और क्या शरण हे? पवन स्वय नाक मे आता है ओर प्राण बचाता है। इस प्राणरक्षक पवन की कोई कीमत नही देनी पडती। जहा मनुष्य है, वही वह आ जाता है। यही नहीं वरन् कई बार लोग उसकी अवहेलना करते हें, उसे रोकने की चेष्टा करते हें, तब भी वह नाक मे आ ही जाता हे। उदाहरणार्थ–बुखार आने पर रोगी के परिचारक उसे अनाप–सनाप कपडे ओढा देते हैं। ऐसा करना पवन रुकने के कारण स्वास्थ्य के लिए घातक हे। फिर भी पवन किसी न किसी मार्ग से पहुचकर नाक मे घुसता ही हे ओर जीवन देता है।

जेसे पवन की कीमत नहीं देनी पडती, फिर भी वह जीवन देने वाला है उसी तरह प्रार्थना भी जीवन देने वाली हे और उसकी भी कीमत नही देनी पडती। लेकिन लोग शायद यह चाहते हें कि जिस तरह पवन स्वय ही आकर हमारी नाक मे घुस जाता हे, उसी तरह प्रार्थना भी स्वय आकर हमारे हृदय मे घुस जाय! और शायद इसी विचार से वे परमात्मा की प्रार्थना नहीं करते। उन्हे प्रार्थना के लिए समय नहीं मिलता, गन्दी ओर निरर्थक बातो के लिए

समय मिल जाता है। जिन कामो से गालिया खानी पडती है, बुराइया पैदा होती हैं और आत्मा पर सकट आ पडता है, ऐसे कामो के लिए समय की कमी नही है, समय की कमी सिर्फ प्रार्थना के लिए है।

आप कहेगे कि हम प्रार्थना करने मे कब प्रमाद करते है? तो मैं सब से अलग–अलग न पूछ कर सभी से एक साथ पूछता हूँ कि आप लोग जब रेल मे बैठकर कही जाते–आते है, तब वहा कोई काम नही रहता। फिर भी उस समय मे से कितना समय प्रार्थना मे लगाया है और कितना निरर्थक गप्पो मे? कभी आपने इस बात पर विचार भी किया है? उस खाली समय मे क्यो प्रार्थना करना भूल जाते हो? कितने मनुष्य ऐसे हैं जो एकान्त तन्मयता से पार्थना करते है और प्रार्थना करते समय उनका रोम–रोम आह्लाद का अनुभव करता है? दर्पण मे मुह देखने की तरह सभी लोग अपने–अपने को देखो कि हम कितना समय प्रार्थना मे लगाते हैं और कितना समय रगडो–झगडो मे खर्च कर देते है?

लोग कहते है–भगवान् के भजन के लिए समय नही मिलता। मै कहता हूँ–भजन के लिए जुदा समय की आवश्यकता ही क्या है? भजन तो चलते, फिरते, उठते–बैठते समय भी किया जा सकता है। आपका बाहरी जीवन किसी काम मे लगा हो, लेकिन अगर आपके अन्त करण मे प्रार्थना का सस्कार है तो प्रार्थना करने से विघ्न उपस्थित नही होगा।

कई लोग प्रार्थना करते हैं, मगर सासारिक लालसाओ से प्रेरित होकर। किन्तु ज्ञानी पुरुष कहते हैं–ससार की सम्पद्–विपद् मत मानो, ससार सम्बन्धी लालसा से रहित होकर परमात्मा का भजन होना सम्पद् और भजन न होना ही विपद् है।

गई सो गई, अब राख रही को। आप लोग आगे से अपना जीवन प्रार्थनामय बनाइए। आपका हृदय समाधान पाया हुआ हो और आपको कल्याण करना हो तो दूसरी सब बाते भूल कर अखण्ड प्रार्थना की आदत डालो। ऐसा करने से तुम देखोगे कि थोडे ही समय मे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा है।

ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि अखड प्रार्थना करने वाले को सदैव योग–क्षेम रहता है। अप्राप्त वस्तु का प्राप्त होना योग कहलाता है और प्राप्त वस्तु की रक्षा को क्षेम कहते हैं। योग और क्षेम के लिए ही आप दौडधूप मचाते है और ईश–प्रार्थना से यह प्रयोजन सहज ही सिद्ध हो जाता है। अखड प्रार्थना करने वाले को योग और क्षेम की चिन्ता नही रहती।

ऐसा होते हुए भी आपका मन प्रार्थना पर विश्वास नही पकडता और रात–दिन बुरे कामो मे व्यस्त रहता है। मूल्यवान् मनुष्य–जन्म इस प्रकार बर्बाद होते देख कर ज्ञानियो को दु ख होता है, जेसे कीमती रत्न को समुद्र मे फैंकते देख जौहरी को दु ख होता है। जैसे जौहरी रत्न का मूल्य जानता है इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मानव–जीव का मूल्य समझते है। इसीलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं–

खयाल आता है मुझे दिलजान तेरी बात का।
फिकर तुझको है नहीं आगे अन्धेरी रात का।।
जोबन तो कल ढल जायेगा दरियाव है बरसात का।
बेर कोई न खायेगा उस रोज तेरे हाथ का।।

ज्ञानी अपनी हार्दिक वेदना इस कविता द्वारा प्रकट करते है। वे कहते हैं प्यारे भाई! हमे तेरी दशा देख कर बहुत ही खयाल होता है कि तू अपना जीवन वृथा बर्बाद कर रहा है। तुझे जरा भी ध्यान नही है कि आगे चल कर मौत का और सकटो का सामना करना होगा! तू अपनी जवानी के जोश मे भविष्य को भूल रहा है, मगर वह तो वर्षा से आने वाला नदी का पूर है। अधिक दिन ठहरने का नहीं। अतएव जल्दी चेत, वर्त्तमान मे न भूल, भविष्य की ओर देख ।

पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया वृथा बाते अधिक करती हैं। परनिदा और आलोचना मे जो समय लगता है, उतना समय अगर परमात्मा के भजन मे लगे, तो फिर बेडा पार हो जाय। एक वेश्या को भी अपना जीवन उन्नत बनाने का अधिकार है तो क्या श्राविका को यह अधिकार नही है? घर का कामकाज करते हुए भी भगवान् का भजन किया जा सकता है। फिर आत्मा को उस ओर क्यो नही लगाती? आज अपने मन मे दृढ सकल्प कर लो कि बुरी ओर निकम्मी बातो की ओर से मन हटा कर भजन ओर प्रार्थना मे ही मन लगाना है। जो बात बडे बडे ग्रथो मे कही गई हे, वही मैं आप से कह रहा हूँ। गीता मे कहा है–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ।।

दुराचारी होकर भी जो अनन्य भाव से परमात्मा का भजन करता हे उसे साधु होने मे देर नहीं लगती। जिसने दुराचार किया है, उसे हमेशा के लिए हिम्मत हार कर नहीं वेठ जाना चाहिए।

आशका हो सकती है कि–यह कैसे सम्भव है कि महापापी भी साधु बन सकता है? इसका समाधान यह है कि क्या ससार मे यह बात प्रसिद्ध नही है कि ताबे मे जरा–सी रसायन डालने से वह सोना बन जाता है और पारस के ससर्ग से लोहा भी सोना हो जाता है? हा, बीच मे पर्दा हो तो बात दूसरी है। इसी प्रकार भजन मे भी पर्दा हो तो बात न्यारी है। कहावत है–

सुणिया पिण सरध्या नही, मिटा न मन का मोह।
पारस से भेट्या नही, रह्या लोह का लोह।।

जैसे पारस और लोहे के बीच मे कागज का पर्दा रह जाय तो लोहा सोना नही बनता, उसी प्रकार हृदय मे जब तक पाप का पर्दा है, तब तक भजन से काम नही बन सकता। अतएव अपने हृदय के पर्दो को देखो। वृथा बातो से काम नही चल सकता और न कपट से ही काम हो सकता है।

बहुत से लोग माला फेरते और भजन करते तो देख पडते हैं, लेकिन उनके भजन करने का उद्देश्य क्या है? भगवान् की भक्ति करने के लिए भजन करते हैं या भगवान् को नौकर रखने के लिए? भगवान् के होकर उसे भजते है या कनक कामिनी के लिए? जो भगवान् का बन कर भगवान् को भजता है, उसे किसी वस्तु की कामना नही रहेगी। चाहे उसके शरीर के टुकडे–टुकडे हो जॉए, फिर भी वह परमात्मा से बचाने की प्रार्थना नही करेगा। ऐसे कठिन और सकट के समय भी उसकी प्रार्थना यही रहेगी कि–हे प्रभो! मुझे ऐसा बल दीजिए कि मैं तुझे न भूलू।

गजसुकुमार मुनि के सिर पर सोमल ने आग रख दी। फिर भी मुनि ने यह नही कहा कि 'हे नेमिनाथ भगवान्! मुझे बचाओ, मैं तेरा भक्त हूँ।' मुह से गजसुकुमार मुनि की गाथा गाई जाय और हृदय मे मारण–मोहन आदि की कुविद्या चलती रहे, यह तो भगवान् के भजन को लजाना है। ऐसा करने वालो ने भगवान् का मजाक उडाया है और ईश्वर का फजीता किया है। यो तो परमात्मा के भजन से शूली भी सिहासन बन जाती है लेकिन भक्त यह कामना नही करता। गजसुकुमार मुनि चाहते कि आग ठडी हो जाय या सोमल अशक्त हो जाय तो क्या ऐसा न हो जाता? मगर वह तो सोचते थे कि मुझे जल्दी मुक्ति प्राप्त करनी है और सोमल मेरी सहायता कर रहा है। आप बडे चाव से गाते है–

वसुदेवजी का नन्दन धन धन गजसुकुमार।
रूपे अति सुन्दर कलावन्त वय बाल।

भीखू री पडिमा गया मसाणे महाकाल।
देखी सोमल कोप्यो मस्तक बांधी पाल।।
खेर ना खीरा सिर ठविया असराल।
मुनि नजर न खंडी मेटी मनडा री झाल।।
परिषह सहि ने मोक्ष गया तत्काल।
भावे करि बन्दूं दिन मे सौ सौ बार।।

क्षमा और शान्ति का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण अन्यत्र कहा मिलेगा? गजसुकुमार मुनि की क्षमाशीलता की कथा ससार के इतिहास मे अद्वितीय है।

मित्रो! यह बात आपका हृदय कहता हो तो इस पर कुछ विचार करो कि–जिनके पिता वासुदेव थे, माता देवकी थी और श्रीकृष्ण भाई थे उनकी छत्रछाया मे रहने वाले गजसुकुमारजी भगवान् नेमिनाथ से मुनिदीक्षा लेकर, श्मशान मे जाकर ध्यान करने लगे। उनका ध्यान यही था कि मैं कब इस शरीर के बन्धन से मुक्त होऊ। मुनि ध्यान मे मग्न थे कि उसी समय वहा सोमल आ गया। मुनि पर नजर पडते ही सोमल का क्रोध भडक उठा। क्रोध का कारण यही था कि इसने मेरी लडकी से विवाह नही किया। यद्यपि विवाह करना या न करना अपनी मर्जी पर हे ओर उस लडकी को इच्छानुसार कार्य करने का अधिकार था, फिर भी सोमल ने मुनि पर यह अभियोग लगाया। अगर गजसुकुमार मुनि सोमल पर भी अभियोग लगाते तो जीत उन्ही की होती। मगर उन्होंने दावा नही किया। उनमे इतना सामर्थ्य था कि अगर वह जरा–सा घुडक देते तो भी सोमल के प्राण छूट जाते। मगर उन्हे तो सिद्ध करना था कि उन्होने सोमल को अपकारी नही उपकारी माना।

क्षमासागर गजसुकुमार की भावना थोडी देर के लिए भी आप मे आ जाय तो कल्याण होते देर नही लगेगी। मगर आप यहा की खटपट मे वहा की बात भूल रहे हैं। आप यह नही देखते कि आपकी आत्मा कल्याण के मार्ग से किस प्रकार दूर ही दूर होती जा रही हे। आज वही होशियार माना जाता हे जो ज्यादा बोल सके ओर लड कर जीते लेकिन ससार के किसी भी बडे से बडे नेता से पूछो कि गजसुकुमार मे इतना ज्यादा सामर्थ्य होने पर भी उन्होंने सोमल से बदला नहीं लिया, तो बताओ, बडा कोन रहा? आज के होशियार बडे हं या गजसुकुमारजी महान हैं? आज के लोग लडाई–झगडा करके विजय चाहते हैं, छल–कपट मे ही वीरता मानते हैं। ऐसे वास्तविकता के समय में आपके भाग अच्छे हं कि आपके सामने गजसुकुमार जी का आदर्श हे जिसके कारण आप और लोगों की तरह गेस या बम फेंक कर लोगों की

जान नहीं लेना चाहते। अब जरा मन को सावधान करके देखो कि गजसुकुमार मुनि ने क्या भावना की थी? वह कहते थे कि–

सुसरो सुभागी म्हाने पगडी बंधावे।

जब सोमल सिर पर धधकते अगार रखने के लिए चिकनी मिट्टी की पाल बाध रहा था तो महामुनि गजसुकुमार कहते थे–मेरे पगडी बाध रहा है। धन्य मुनि! धन्य है तुम्हारी उत्कृष्ट भावना! धन्य है तुम्हारी क्षमाशीलता!

लोगो को पुरानी और फटी पोशाक बदलने मे जैसा आनन्द होता है, वैसा ही आनन्द ज्ञानी को मृत्यु के समय शरीर बदलने मे होता है। जीवनभर आचरण किये हुए तप, सयम आदि का फल मृत्यु–मित्र की सहायता के बिना प्राप्त नही होता।

गजसुकुमारजी सोचते थे–जिसके लिए घर छोडा, माता–पिता का त्याग किया, ससार के सुखो की उपेक्षा की, राज–पाट को तुच्छ गिना और भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा धारण की, उस उद्देश्य की सिद्धि मे विलम्ब हो रहा था। लेकन इस भाई ने आकर मुझे सहायता पहुचाई है। अब मेरा प्रयोजन जल्दी पूरा हो जायगा।

अगर आप गजसुकुमार सरीखे नही बन सकते, तो उनके भक्त ही बनो। गजसुकुमार बनने की भावना रक्खो।

शका की जा सकती है कि मुनि मे और धर्म मे अनन्त शक्ति है तो फिर अगार ठडे क्यो नही हो गये? इस शका का उत्तर यह है कि यदि गजसुकुमार मुनि इच्छा करते तो आग अवश्य ठडी हो जाती । पर उन्होने ऐसी इच्छा ही नही की। आपको किसी आवश्यक काम से कही जाना हो और रेल निकल गई हो इसी समय कोई मोटर वाला आपसे कुछ लिए बिना ही आपको उस स्थान तक पहुचाने लगे तो आप उस मोटर का बिगाड चाहेगे या कुशल चाहेगे? इसी प्रकार गजसुकुमार को मोक्ष मे पहुचना है, जिसके लिए उन्होने दीक्षा ली है। मगर मोक्ष पहुचने मे देरी हो रही है। एकाएक सोमल वहा आ पहुचता है। वह गजसुकुमार को जल्दी ही मोक्ष मे पहुचाने का उपाय करता है। ऐसी अवस्था मे मुनि अड्गार ठडे करके अपनी अभीष्ट सिद्धि मे विघ्न क्यो डालेगें?

गजसुकुमार मुनि की इस ऊँची भावना को यदि हृदय स्वीकार करता है तो इसे बार–बार अपनाओ। प्रार्थना मे तुच्छ वस्तुओ की कामना न करो। यही सोचो कि–हे भगवान्! तू और मैं एक ही हैं।'

मे तो मतभेद भी हो सकता है, लेकिन भगवान् ऋषभदेव के मानने मे मतभेद नही है। प्राचीन हिन्दू पुराणो मे भी भगवान् ऋषभदेव की उतनी ही प्रशसा पाई जाती है, जितनी जैन शास्त्रो मे है। यही नही, वेद मे भी भगवान् ऋषभदेव का वर्णन आता है। सस्कृत के कवियो ने भगवान् ऋषभदेव के विषय मे जो भाव व्यक्त किये हैं, उनके द्वारा वे ससार मे महान् से महान् प्रकट किये गये है। भक्तामर स्तोत्र मे आचार्य मानतुग कहते हैं।–

त्वामव्यय विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्य,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनग्नकेतुम्।
योगीश्वर विदितयोगमनेकमेकम्,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्त ।।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

प्रभो! तेरे अनेक रूप हे। किस किस रूप मे तेरी स्तुति की जाय? तू अव्यय हे। तेरा कभी नाश नही, तू अविनाशी है। ऐसा होने पर भी तू किसी एक स्थान पर नही रहता, किन्तु विभु अर्थात् व्यापक हे। जैसे आकाश सभी जगह हे, उसी प्रकार तू भी सभी जगह हे। जिस प्रकार आकाश अनन्त है, उस प्रकार तू भी ज्ञान घन होने से अनन्त हे। तू साधारण जनो के चिन्तन मे नही आता।

तू आद्य हे, ब्रह्मा हे, ईश्वर हे। ससार मे एक से एक उत्तम योगी हुए हें मगर तू उन सबमे योगीश्वर हे। सन्त पुरुष तुझे ज्ञान रूप चेतना स्वरूप ओर निर्मल रूप मे देखते हें।

प्रभो! तू वुद्ध हे क्योकि विवुध अर्थात् देवता भी तेरे बोध ज्ञान की पूजा करते हे। प्रभो! तू शकर हे, क्योकि तीन लोक का कल्याणकारी हे। प्रभो! तू विधाता ह क्योकि तू ने मोक्ष मार्ग का विधान किया हे। प्रभो! तू इन सव गुणो के कारण पुरुषोत्तम भी हे।

भगवान अविनाशी ओर विभु हे। तव क्या आपने उसके साथ अपना सम्वन्ध जोडा ह? आप समझते होंगे–सम्वन्ध नही जोडा हे तो सामायिक क्या यो ही करते हे? या साधुपन क्या यो ही लिया हे? लेकिन सामायिक करना ओर साधु बनना ओर वात हे तथा परमात्मा को विभु ओर अविनाशी समझकर उससे सम्वन्ध जोडना ओर वात हे। वर्दी पहिनने वाले सभी सिपाही वीर नही

होते। वीर कोई विरला ही होता है। इसी प्रकार परमात्मा को अविनाशी और विभु जानने वाले वीर भी कुछ और ही होते हैं।

परमात्मा को अविनाशी और विभु जानने का प्रमाण है—पाप मे प्रवृत्ति न करना। जिसे परमात्मा की नित्यता और व्यापकता पर विश्वास होगा, उससे पापकर्म कदापि न होगा। आपके साथ राजा का सिपाही हो, तब आप क्या चोरी करेगे? आपको भय रहेगा कि सिपाही देखता है, चोरी कैसे करे? इसी प्रकार जिसने परमात्मा को व्यापक जान लिया, वह किसी के साथ कपट कैसे कर सकता है? जब कभी उसके हृदय मे विकार उत्पन्न होगा और कपट करने की इच्छा का उदय होगा, तभी वह सोचेगा—ईश्वर व्यापक है, उसमे भी है, मुझ मे भी है। मैं कैसे कपट करूं? मैं जो ठगाई या बुराई करना चाहता हूँ उसे परमात्मा देख रहा है। ऐसी स्थिति मे मैं कैसे इस पाप मे प्रवृत्त होऊँ?

परमात्मा की सच्ची प्रार्थना करके हमे इस उच्च स्थिति तक पहुचना है। एक कथन के द्वारा यह बात सरलता से समझ मे आयेगी। उससे आप जान सकेगे कि हम क्या कर रहे हैं और वास्तव मे हमे क्या करना चाहिये?

एक गुरु के पास दो व्यक्ति शिष्य बनने के लिए गये। गुरु के पास पहुचकर उन्होने निवेदन किया—'महाराज! हम आपकी विद्या, बुद्धि और शक्ति की प्रशसा सुन कर आकर्षित हुए हैं और आपके शिष्य बन कर सब विद्याए प्राप्त करना चाहते है। कृपा करके आप हमे अपना शिष्य बनाइये।

गुरु को शिष्य का लोभ नही था। अतएव उसने कहा आपको चेला बनना सरल मालूम होता है पर मुझे गुरु बनना कठिन जान पडता है। इसलिए पहले परीक्षा कर लूगा।

आप लोग रुपये बजा—बजा कर लेते हैं और बहिने हडियाँ ठोक—बजा कर लेती है । ऐसा न करने से बाद मे कभी—कभी पछताना पडता है और उपालम्भ सहना पडता है। इसी प्रकार चेले खराब निकले तो गुरु को उपालम्भ मिलता है। यो तो भगवान् का शिष्य जमाली भी खराब निकला, परन्तु पहले जाच पडताल कर लेना आवश्यक है।

ऐसा विचार कर गुरु ने उन दोनो से कहा—'पहले परीक्षा कर लूगा, फिर शिष्य बनाऊगा।

शिष्य—जी ठीक है। परीक्षा कर देखिए।

गुरु ने कोठरी मे जाकर एक मायामय कबूतर बनाया और बाहर आकर चेले से कहा—इसे ले जाओ और ऐसी जगह मार लाओ, जहा कोई देखता न हो।

पहले चेले ने कबूतर हाथ मे लिया और सोचा—'यह कौन कठिन काम है, ऐसी जगह बहुत हैं, जहा एकान्त है, कोई देखता नही और मारना तो कबूतर ही है, कोई शेर तो मारना है नही।' यह सोचकर वह कबूतर को ले गया और किसी गली मे जाकर उसने कबूतर की गर्दन मरोड डाली। मरा हुआ कबूतर लेकर वह गुरु के पास आया। बोला—'लीजिए, गुरुजी, यह मार लाया, किसी ने देखा नही।'

गुरु ने कहा—तुम शिष्य होने योग्य नही। अपने घर का रास्ता पकडो।

चेला—क्यो, मैं अयोग्य कैसे? मैंने ठीक तरह आपकी आज्ञा का पालन किया है।

गुरु—नही, तूने मेरी आज्ञा का पालन नही, उल्लघन किया है।

चेला—मगर आज्ञा तो कबूतर को मारने की ही दी थी आपने! और मैंने उसका पूरी तरह पालन किया है।

गुरु—लेकिन मैने यह भी तो कहा था कि ऐसी जगह मारना, जहा कोई देखता न हो। कोई देखता न हो, यहा 'कोई' मे तो सभी शामिल हो जाते हैं। मारने वाला तू, मरने वाला कबूतर और परमात्मा—जो विभु है—वह भी 'कोई' मे शामिल हे। जब तुमने कबूतर मारा तो तुम स्वय देखते थे, कबूतर देखता था ओर ईश्वर भी देखता था। इन सब के देखते कबूतर को मारने पर भी किस प्रकार तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया हे?

चेला अविनीत था। कहने लगा—ऐसा ही था तो आपको पहले ही साफ—साफ बता देना चाहिए था। पहले मारने की आज्ञा दी ओर जब मार लाया तो कहने लगे कि आज्ञा का उल्लघन किया हे! आप केसे गुरु हे मे अब समझ गया।

गुरु—मने स्पष्टीकरण नही किया था फिर भी तुम्हे तो समझना चाहिए था। यह सुन कर चेला ओर ज्यादा भडका। गुरु ने अन्त म कहा—भेया तुम जाओ। म तुम्हारा गुरु बनने योग्य नही हूँ।

गुरु ने दोनो नवागन्तुक शिष्यो को अलग—अलग जगह बिठला दिया था। एक से निपट कर वह दूसरे शिष्य के पास पहुचे । उसे भी वही कबूतर दिया आर पहले की तरह मार लाने की आज्ञा दी।

शिष्य कबूतर लकर चला। वह बहुत जगह फिरा—खेता म गया पहाडा म घूमा ओर अन्त म एक गुफा म घुसा। गुफा म बठ कर वह सोचने लगा—यह जगह एकान्त तो ह मगर गुरुजी का अभिप्राय क्या ह? उनकी

आज्ञा यह है कि जहा कोई न देखे, वहा मारना। मगर यहा भी मैं देख रहा हू, कबूतर देख रहा है और सर्वदर्शी परमात्मा भी देख रहा है। गुरुजी दयालु हैं। मालूम होता है उन्होने अपने आदेश मे कबूतर की रक्षा करने का आशय–प्रकट किया है, मारने का नही। चाहे उनके शब्द कुछ भी हो, मगर उन शब्दो से अखड दया का ही भाव निकलता है, मारने का नही।

जिसमे इतनी सहज बुद्धि हो, वही शास्त्र का गम्भीर अर्थ समझने मे समर्थ होता है। वासना से मलिन हृदय शास्त्र का पवित्र अर्थ नही समझ सकता।

शिष्य सोचने लगा–गुरुजी ने कबूतर की रक्षा की शिक्षा देने के साथ ही यह भी जता दिया है कि एकान्त मे ही गम्भीर विषय समझ मे आता है। गुरुजी ने जो कुछ कहा था, उस पर मैने एकान्त मे विचार किया तो मालूम हुआ कि ससार मे ऐसा कोई स्थान नही, जहा परमात्मा न देखता हो जब परमात्मा सब जगह है तो हिसा किस जगह की जा सकती है? इस तरह गुरुजी ने मुझे परमात्मा का भी दर्शन कराया है। उन्होने अपने आदेश द्वारा परमात्मा की विभुता का भान कराया है। दयालु गुरुजी ने प्रारम्भ मे ही कितनी सुन्दर शिक्षाए दी हैं?

शिष्य प्रसन्न–चित्त होकर कबूतर को सुरक्षित लिए गुरु के पास लौट आया। गुरुजी भीतर ही भीतर अत्यन्त प्रसन्न हुए। लेकिन ऊपर से बनावटी क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहने लगे–'प्रथमग्रासे मक्षिकापात।' तुमने तो मगलाचरण ही बिगाड दिया। मेरी पहली आज्ञा का पालन नही किया तो आगे चल कर क्या निहाल करोगे? तुम शिष्य होने के अयोग्य हो, अपना रास्ता नापो।

शिष्य–आप जो कहेगे, वही होगा। लेकिन मुझे मेरी अयोग्यता समझा देगे तो कृपा होगी। अयोग्य तो हूँ, इसी कारण आपको गुरु बनाना चाहता हू।

गुरु–मैने यह कबूतर मार लाने के लिए कहा था या नही?

शिष्य–जी हॉ, मगर साथ ही यह भी तो कहा था कि जहॉ कोई न देखे वहा मारना। मै जगह–जगह भटका–खेतो मे गया, पहाडो मे गया और गुफा मे गया। किन्तु ऐसा कोई स्थान नही मिला, जहा कोई देखता न हो। लाचार हो वापस लौट आया।

गुरु–गुफा मे कौन देखता था?

शिष्य—प्रथम तो मैं ही देख रहा था, दूसरा कबूतर स्वय देख रहा था और तीसरा परमात्मा देख रहा था। गुफा मे जाकर मैंने विचार किया तो मालूम हुआ—आपकी आज्ञा मारने के लिए नहीं, रक्षा करने के लिए है। आपने मुझे ईश्वरीय ज्ञान दिया है। अगर आप मुझे शिष्य रूप मे स्वीकार करेगे तो आपकी असीम कृपा होगी। मैं तो आपको गुरु बना ही चुका हूँ। आपने पहली आज्ञा द्वारा जो तत्व समझाया है, वह अकेला ही जीवनशुद्धि के लिए पर्याप्त हो सकता है। लेकिन थोडा—सा ज्ञान मिल जाता तो मेरा आचार चमकने लगता।

गुरु ने उसे छाती से लगाया, सिर पर हाथ फेरा और कहा—तू ज्ञानी, ध्यानी और ईश्वर को समझने वाला सच्चा जिज्ञासु शिष्य है। मैं तुझे ज्ञान दूगा। अगर तूने ईश्वर को सब जगह न माना होता तो गुरु तेरे साथ कहा—कहा फिरता? तूने ईश्वर की साक्षी स्वीकार कर ली है, अब तुझ मे पाप का प्रवेश नही होगा।

यह दृष्टान्त हमे अपने ऊपर घटा कर देखना चाहिए। हम भी किसी के शिष्य बने हैं या नहीं? बने हैं तो पहले शिष्य की तरह या दूसरे शिष्य की तरह? आप कह सकते हैं, हम साधु नही, श्रावक हैं । ठीक है, मगर श्रावक तो हैं न? साधु को साधुता की ओर श्रावक को श्रावकत्व की परीक्षा देनी होगी।

जव किसी कन्या के साथ आपका विवाह हुआ होगा तव कुकुपत्रिका भेजकर सगे—सम्वन्धियो को वुलाया होगा। मगल गान हुआ होगा। वाजे वजे होगे। आर देव गुरु, धर्म की साक्षी से विवाह जग—जाहिर हुआ होगा। अतएव यह प्रसिद्ध हो चुका कि आप पति हुए ओर कन्या पत्नी हुई। अव सासारिक प्रथा के अनुसार आपको कोई दोपी नहीं कह सकता। अलवत्ता, विवाह होने पर भी सावधानी की आवश्यकता हे। विवाह का उद्देश्य चतुष्पद वनना नही, चतुर्भुज वनना हे। विवाह पाशविकता का पोपण नहीं करता वरन् उसे सामर्थ्य का पोषक होना चाहिए। जो काम अकेले से नही हो सकता, उसे दोनों मिलकर करे इसी अभिप्राय से विवाह किया जाता हे। विवाह करने पर भी धर्म का विकास ओर व्रह्मचर्य की रक्षा करना विवाहित नर—नारी का कर्त्तव्य है। ऋतुकाल के समय के अतिरिक्त दूसरे समय वीर्य का नाश करना अनुचित ह। लेकिन मैं यह वताता हूँ कि आप देव गुरु ओर धर्म की सत्ता भूलकर उन्ह धोखा देने की निष्फल चेष्टा करते हैं।

जब कोई दुराचारी परस्त्रीगमन करता है तो क्या कुकुपत्रिका भेजी जाती है? मगल गान होता है? किसी की साक्षी दी जाती है? ऐसे समय किसी स्त्री को गाने के लिए बुलाया जाय तो क्या वह आएगी? और बतासे के बदले रुपया देने पर भी वह गाएगी? कदापि नही, क्योकि वहा कपट और दम्भ को स्थान दिया जाता है और ईश्वर को भूल कर पाप किया जाता है। पापाचार का सेवन लुक छिप कर किया जाता है। उस समय सब की आखो मे धूल डालने का प्रयत्न किया जाता है। मगर किसका सामर्थ्य है जो ईश्वर की दृष्टि से बच कर पाप का सेवन कर सके? ईश्वर सर्वदर्शी है। कौन उसकी निगाह से बाहर हो सकता है? जिसे ईश्वर की व्यापक सत्ता का ध्यान होगा, वह छिप कर भी पापाचार करने की चेष्टा नही करेगा। ईश्वर को विभु मानने वाला परस्त्री को माता व बहिन के रूप मे ही देखेगा–पाप की दृष्टि से नही।

आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सको तो भी परस्त्री के विषय मे जिस नियम से बधे हो, उसका तो पालन करो। परस्त्रीगमन का त्याग तो करना ही चाहिए। यह मर्यादा भी साधारण नही है। शास्त्र इस मर्यादा की भूरि–भूरि प्रशसा करते हैं। गृहस्थाश्रम मे रहने वालो को भी भगवान् ने देशत शीलवान् कहा है, मगर परस्त्रीगमन का त्याग करने पर ही यह पद प्राप्त होता है। शीलवत की महिमा देवता भी गाते हैं। उसके सामने भयकर विषधर साप भी फूल की माला के समान बन जाते हैं।

परस्त्री को माता मानने वाले महापुरुष के चरित इस बात के साक्षी है कि ससार मे रहते हुए भी जो परस्त्री को माता मानते है, उनका कल्याण हो जाता है। इतिहास और शास्त्र मे ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद है।

शिवाजी महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली पुरुष हो गया है। इसके विषय मे कहा जाता है–'शिवाजी न होते तो सुनति होती सब की।' अब देखना चाहिए कि शिवाजी मे कौन–सा गुण था जिसके कारण वह छत्रपति कहलाये? एक सिपाही का लडका होकर भी वह एक बडे राज्य का स्वामी बन गया और हिन्दू धर्म का रक्षक माना गया। और शिवाजी का लडका सभाजी किस दुर्गुण के कारण शिवाजी से अधिक बलशाली होकर भी बुरी मौत से मारा गया?

शिवाजी परस्त्री को माता मानता था पर सभाजी मे यह सद्गुण नही था। एक बार शिवाजी किसी गुफा मे बैठा हुआ ईश्वर का भजन कर रहा था। उसके एक सरदार ने किसी दूसरे सरदार को जीत लिया। पराजित सरदार की स्त्री अतीव सुन्दरी और रूपवती थी। अपनी खैरख्वाही दिखलाने के लिए

सरदार उस स्त्री को शिवाजी की स्त्री बनाने के लिए पकड लाया। उसने सोचा–'ऐसा रमणीरत्न पाकर शिवाजी की प्रसन्नता का पार नही रहेगा और मेरी पद–वृद्धि होगी।' ऐसा सोच कर सरदार उसे सिगार कर उस गुफा पर लाया, जिसमे शिवाजी भजन कर रहा था। भजन–कार्य समाप्त कर शिवाजी बाहर आये। स्त्री पर नजर पडते ही वह सारी बात समझ गये। उसने रुष्ट होकर सरदार से कहा–'मेरी इस माता को यहा किस लिए लाए हो?'

सरदार सिर से पाव तक काप उठा। यद्यपि वह स्त्री से शिवाजी की पत्नी बनने की स्वीकृति ले चुका था, परन्तु शिवाजी का उत्तर सुन कर वह हक्का–बक्का रह गया। आखिर वह स्त्री पालकी मे बिठा कर जहा की तहा पहुचा दी गई।

शिवाजी के पुत्र सभाजी मे यह बात नही थी वह सुरा और सुन्दरी का भक्त था। यद्यपि वह पराक्रम मे शिवाजी से बढकर था, लेकिन सुरा–सुन्दरी की लोलुपता के अवगुण ने उसका नाश कर डाला।

एक बार जोधपुर का वीर राठौड दुर्गादास औरगजेब के लडके को शरण दिलाने के लिए उसे साथ लेकर सभाजी के यहा गया। सभाजी ने उसका सत्कार किया। दुर्गादास सभाजी के दरबार मे बैठा ही था कि सदा के नियमानुसार वहा शराब चलने लगी। यह हाल देख कर और शिवाजी के उत्तराधिकारी के इस पतन का विचार कर उसे बडी ही निराशा हुई। उसने सोचा–जो स्वय ही सुरक्षित नही है, वह दूसरे को क्या शरण देगा? शराब दुर्गादास के सामने भी आई। दुर्गादास ने पीने से इन्कार कर दिया। सभाजी ने शराब की प्रशसा के पुल बाधते हुए बहुत आग्रह किया, मगर दुर्गादास ने शराब की घोर निन्दा करते हुए सभाजी का आग्रह अस्वीकार कर दिया।

दुर्गादास को एक मकान मे ठहराया गया। रात का समय था, वे बैठे–बैठे ईश्वर का भजन कर रहे थे और अपने भविष्य के विषय मे विचार कर रहे थे कि इतने मे ही एक नवयुवती भागती हुई और रक्षा के लिए चिल्लाती हुई उधर से आ निकली। सभाजी हाथ मे तलवार लिये उसके पीछे था। दुर्गादास ने नवयुवती को अपने मकान मे आश्रय दिया। सभाजी ने वहा पहुच कर कहा–'मेरे शत्रु को आश्रय देने वाला कौन है?' दुर्गादास ने दृढता के स्वर मे कहा–'म दुर्गादास हूँ ओर अपने जीते जी इसकी रक्षा करूगा।' सभाजी कुछ ढीले पडे । बोले–तुम उसे मेरे सुपुर्द कर दो।' दुर्गादास बोल– महाराज यह असभव हे। मं शरणागत का त्याग नही कर सकता।' सभाजी कामान्ध था ओर अब आन का भी कुछ खयाल हो आया। वह लडने

पर उतारू हो गया और बोला—'अच्छा, अपनी तलवार हाथ मे लो।' दुर्गादास ने अविचलित स्वर मे कहा—'आपको इतना होश है कि नि शस्त्र पर शस्त्र नही चलाते पर इस अबला के पास कौन—सा शस्त्र था कि आप उससे लडने चले है?'

दुर्गादास ने सभाजी की तलवार छीन ली। इतने मे उसके बहुत से साथी आ गये और सभाजी की आज्ञा से उन्होने दुर्गादास को पकड लिया। यद्यपि दुर्गादास अकेले ही उन सब के लिए काफी थे, मगर उन्होने बखेडा करना उचित नही समझा। कहते हैं—तब तक वह नवयुवती अपने ठिकाने पहुच भी चुकी थी।

सभाजी के पास औरगजेब का एक जासूस किबलेखा रहता था। वह उसे सुरा और सुन्दरी मे अनुरक्त बनाये रखने की प्रवृत्ति किया करता था। उसने सभाजी से दुर्गादास को माग लिया। सभाजी ने दुर्गादास को उसके सुपुर्द कर दिया। उसने बन्दी के रूप मे दुर्गादास को औरगजेब के सामने पेश कर दिया और कहा—'आप जिसे बहुत दिनो से पकड लेना चाहते थे, वह दुर्गादास कैद हो गया है। उसे मैं पकड लाया हूँ।' औरगजेब बहुत प्रसन्न हुआ। औरगजेब ने कहा—अच्छा इसे बन्दीगृह मे रख दो। कल विचार करेगे।

दुर्गादास कारागार मे बन्द कर दिया गया। औरगजेब की बेगम गुलनार ने उदयपुर की लडाई मे दुर्गादास को देखा था। उसकी तेजस्विता और वीरता देख बेगम उस पर मोहित हो गई थी। बेगम को जब दुर्गादास के कैद होने का समाचार मिला, तो उसे अपना बहुत दिनो का मनोरथ पूर्ण होने की आशा हुई । उसने बादशाह के पास जाकर कहा—'जहापनाह! कैदी दुर्गादास को मेरे हवाले कर दीजिए। उसका फैसला मैं करना चाहती हूँ। मैं जो वाजिब समझूगी, वही सजा उसे दे दूगी।'

बादशाह उसकी बात टाल नहीं सका। गुलनार की प्रसन्नता का पार न रहा। बेगम रात्रि के समय अपने लडके को लेकर वहा गई, जहा दुर्गादास कैद था। लडके को बाहर खडा रख कर गुलनार भीतर गई । अपने हाव—भाव दिखलाते हुए दुर्गादास से कहा—'आज बहुत दिनो बाद मन की मुराद पूरी हुई । अब आप मुझे स्वीकार कीजिए। अगर आपने मुझे स्वीकार कर लिया तो आज ही बादशाह को परलोक भेज कर आपको दिल्ली का बादशाह बना दूगी। अगर आपने मेरी बात न मानी तो अभी गर्दन उडवा दूगी। मेरा लडका नगी तलवार लिये बाहर खडा है।'

ऊपर—ऊपर से देखोगे तो मालूम होगा कि धर्म का फल यह हुआ कि दुर्गादास के हाथो—पैरो मे हथकडी—बेडिया पडीं और मौत का वक्त

आया। मगर बात यही समाप्त नही होती। जरा और आगे देखो कि धर्म के प्रताप से किस प्रकार रक्षा होती है।

दुर्गादास ने गुलनार से कहा—मा, तुम मेरी माँ हो। मुझे और कोई आज्ञा दो, उसका मै पालन करूगा। परन्तु यह काम मुझसे न होगा। चाहो तो सिर ले सकती हो।

गुलनार—सावधान! तुम मुझे मा कहते हो! अच्छा मरने के लिए तैयार हो जाओ।

गुलनार ने अपने बेटे को बुला कर दुर्गादास की गर्दन उडा देने की आज्ञा दी। दुर्गादास ने गर्दन आगे की और उसी समय वहा औरगजेब का सिपहसालार आ गया। सिपहसालार ने दुर्गादास के कैद होने का समाचार सुना था। वह दुर्गादास की वीरता की कद्र करता था, अतएव मिलने के लिए चला आया था। उसने बेगम और दुर्गादास की बात सुनी थी। आते ही उसने गुलनार से प्रश्न किया—बेगम साहिबा! आप यहा कैसे?

बेगम—तुम यहा क्यो आये?

सिपहसालार—यह तो मेरा काम है। मैंने तुम्हारी सब बाते सुनी है। अब तक दुर्गादास को वीर ही समझता था, अब मालूम हुआ—वह बली भी है।

सिपहसालार ने दुर्गादास को कारगार से बाहर निकाला। उसकी प्रशसा की ओर उसे जोधपुर रवाना करने की व्यवस्था कर दी।

दुर्गादास बोले—सिपहसालार साहब! आप मुझे मुक्त कर रहे हैं, मगर बादशाह का खयाल कर लीजिए। ऐसा न हो कि मेरे कारण आपको दु ख सहन करना पडे।

सिपहसालार—में किसी हद तक ही बादशाह का नोकर हूँ। आप खुशी से जाइए। यह कह कर सिपहसालार ने कुछ सवार ओर अपना घोडा देकर दुर्गादास को जोधपुर रवाना कर दिया।

दुर्गादास जोधपुर पहुच गये। इधर गुलनार ने सोचा—'अब बेइज्जती से जीना अच्छा नहीं हे।' ओर उसने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिए।

सभाजी को उसी किबलेखा के हाथो केद होना पडा। उसने उसे ओरगजेब के सामने पेश किया ओर ओरगजेब ने सभाजी के हाथ—पेर कटवाकर उसे बडी बुरी तरह मरवा डाला। यह सब परस्त्रीगमन का ही परिणाम था।

परमात्मा को सदा सर्वत्र विद्यमान मानने वाला पुरुष पाप मे कदापि प्रवृत्त न होगा आर जो पाप म प्रवृत्त न होगा, वह कल्याण का भागी होगा।

नमस्कार मन्त्र

नमो अरिहताणं, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूण।।

यह जैनियो का नमस्कार मन्त्र है। प्रत्येक जैनी, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित हो, इस मत्र को कठस्थ करता है और प्रतिदिन इसका पाठ करता है। समान रूप से सभी सम्प्रदाय इसे पवित्र मत्र मानते है। अनेक कथाओ द्वारा इस मत्र की महिमा बतलाई गई है। इस मत्र मे असीम शक्ति है। इसके जाप से समस्त पापो का नाश होता है और चित्त मे अपूर्व समाधि उत्पन्न होती है। इस मत्र का माहात्म्य प्रकट करते हुए कहा गया है–

एसो पच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि, पढमं हवइ मगल।।

यह पच नमस्कार मत्र समस्त पापो का विनाश करने वाला है और सब मगलो मे श्रेष्ठ मगल है।

मत्रो मे कितनी शक्ति होती है, यह बात मत्रवेत्ता ही जानता है। आचार्यो ने कहा है–'अचिन्त्यो हि मणिमत्रौषधीना प्रभाव' अर्थात् रत्नो, मन्त्रो तथा औषधियो का प्रभाव इतना अधिक है कि वह विचार से बाहर है। जब साधारण मत्रो का प्रभाव भी अचिन्तनीय है तो नमस्कार जैसे महामत्र के, सर्वोत्तम मत्र के प्रकृष्ट प्रभाव का मन के द्वारा किस प्रकार चिन्तन किया जा सकता है? इस मत्र से अपूर्व आध्यात्मिक शाति प्राप्त होती है। ससार के अन्यान्य मत्र इसी लोक मे किचित् लाभ पहुचाते हैं, मगर नमस्कार मत्र इस भव और परभव दोनो मे लाभकारक है। यह मत्र आत्मा के काम, क्रोध आदि आत्मिक विष का नाशक है और स्वाभाविक गुण रूप अनन्त सम्पत्ति का दाता है। इसके प्रभाव से आत्मा समस्त विकारो से विहीन बनता है। इस मत्र की महिमा से मनुष्य की तो बात दूसरी, पशु भी देवत्व प्राप्त करता है।

णमोकार मत्र का पहला पद 'नमो अरिहताण' है। महापुरुषो ने जैन धर्म का स्वरूप व्यापक बतलाया है। जेन धर्म किसी एक जाति, समाज या व्यक्ति का धर्म नही है। जो इसे धारणा करता है, उसी का यह धर्म हे। इसके सभी सिद्धान्त बहुत व्यापक, उपकारक और कल्याणकारक हैं। जो इस धर्म का पालन करे, वही जैन या जैनधर्मानुयायी है। प्रकृत नमस्कार मत्र मे किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है। इसमे गुण पूजा का आदर्श वतलाया गया है। महावीर, पार्श्वनाथ आदि नाम बाद मे हैं, पहले तो असल मे अरिहत–मार्ग है। यह नाम उन महापुरुषो के हैं, जिन्होने जैनधर्म का अनुसरण करके अपनी आत्मिक दशा चरम उन्नति पर पहुचाई है। 'अरिहत' कोई नाम विशेष नहीं है, वह तो आध्यात्मिक विकास की उत्कृष्ट अवस्था का परिचायक गुणवाचक शब्द है। आत्मा के राग–द्वेष रूपी मैल को जो दूर कर देता है ओर जो सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता प्राप्त कर लेता है, वही अरिहत हे। ऐसे अरिहत भगवत को ही पहले पद मे नमन किया गया है। जिसने ऐसी उन्नत अवस्था प्राप्त कर ली है, उसका नाम चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, महेश हो, बुद्ध हो चाहे उसे इन्द्र, धनेन्द्र आदि कुछ भी कहा जाय, जैन को नाम से कोई प्रयोजन नहीं, वह गुणो को मानता और पूजता है। अनेक जेनाचार्यो ने इस भाव को अपनी स्तुतियो मे स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया है। प्रसिद्ध तार्किक अकलकदेव कहते हे–

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिन· पारदृश्वा,
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलकं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्त,
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलय केशवं वा शिव वा।।

अर्थात्–जो समस्त ज्ञेय पदार्थों के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ हैं, जिसके वचनो मे पूर्वापर विरोध नहीं हे ओर निर्दोष हैं, जो समस्त आत्मिक गुणो की निधि वन गया ह जिसने राग–द्वेष आदि दोषो का ध्वस कर दिया हे–वीतराग हे उसका नाम चाहे कुछ भी हो–बुद्ध हो वर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो–वही साधु पुरुषो द्वारा वन्दनीय हैं। उसे मैं वन्दन करता हूँ!

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है–

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसी सोऽस्यमिधया यया तया।
वीतदोषकलुष· स चेद्‌मवान्, एक एव मगवन्नमोऽस्तु ते।।

अर्थात्–जिस किसी भी परम्परा मे हो, चाहे सो हो, कुछ भी नाम हो, अगर वह वीतराग है, तो उस भगवान् को नमस्कार हो। भगवान् सब शास्त्रो से, सब नामो से ऊपर सर्वत्र एक ही है।

आशय यह है कि जो मुमुक्षु पुरुष आत्मिक साधना करने के लिए उद्यत हुआ है, आत्मा को निष्कलक, निर्विकार और निर्दोष बनाना चाहता है, वह कभी नाम के झगडे मे नही पडेगा। उसे इन गुणो की पूर्णता जहा नजर आएगी, वही श्रद्धाभाव से नम्र हो जायगा। वह अरिहत की आराधना करेगा क्योकि अरिहत वही है, जिसने पूर्ण निर्दोषता प्राप्त कर ली है, जिसके आवरण हट गये है, जिसमे दिव्य शक्ति का आविर्भाव हो गया है। वह फिर किसी भी जाति का हो, किसी भी कुल का हो। यह व्याख्या इतने मे ही समाप्त नही हो जाती । इसके विचार मे सारे ससार का विचार आ जाता है। किसी का यह अहकार व्यर्थ है कि हम ही जैन हैं या जैनधर्म हमारा ही है। राग–द्वेष दूर करके आत्मिक गुण प्राप्त करने वाले जिन है और उनका बतलाया हुआ मार्ग जिनमार्ग या जैनधर्म है। यह बात दूसरी है कि प्रकृति के दोष से आज धर्म के नाम पर लडाई होती है और जैनो का पारस्परिक राग–द्वेष दूर करना भी कठिन हो रहा है। किन्तु धर्म का इसमे कोई दोष नही है। दोष प्रकृति का और तत्व न समझने का है।

मान लीजिए, एक आदमी ने समुद्र मथ कर एक अमूल्य रत्न निकाला और किसी दूसरे को दे दिया । वह दूसरा मूर्ख मनुष्य उस रत्न से अपना या किसी दूसरे का सिर फोड दे तो उसमे रत्न निकाल कर देने वाले का क्या दोष है? रत्न निकाल कर देने वाले का यह उद्देश्य नही था। यह तो उसकी मूर्खता है कि उसने अमूल्यरत्न का ऐसा दुरुपयोग किया। इसी प्रकार जिन महापुरुष ने घातिक कर्मो को नष्ट करके, ससार मथ कर धर्म का रत्न हाथ मे दिया है उन्होने तो उपकार ही किया है, किन्तु पीछे वाले उसी धर्म से अपना और दूसरे का सिर फोडने लगे तो इसमे धर्म का क्या दोष है? जिस धर्म ने राग–द्वेष को जीतने का उपदेश दिया, मनुष्य मात्र से नहीं, पशु–पक्षियो से ही नही कीट–पतगो और एकेन्द्रिय जीवो से भी प्रेम करना सिखाया, विश्वमैत्री की प्रबल प्रेरणा दी उसी धर्म के नाम पर लडना और सिर फुटौवल करना कितनी लज्जा की बात है? क्या धर्म लडाई करना सिखलाता है? जिस धर्म ने विश्वशाति के अमोघ साधन के रूप मे अहिसा और क्षमा आदि का वरदान दिया है किसी के प्रति मन मे दुर्भाव लाना भी पाप बतलाया है, उसी धर्म के नाम पर माथाफोडी। जो धर्म अपने मे जगत् को धारण किये है, जो [illegible]

मर्त्यलोक को पुण्यभूमि बनाने के लिए है, उसी धर्म के नाम पर जब नारकीय दृश्य दिखाई देते हैं तो परिताप की सीमा नहीं रहती। इसका मूल कारण यही है कि लोग स्वार्थलोलुप होकर अपने लाभ के लिए धर्म के नाम का दुरुपयोग करते हैं और साधारण जनता की धर्मभावना को गलत रास्ते पर ले जाकर उसे भडकाते है। वे इस प्रकार धर्म को बदनाम करते है। जिसके हृदय मे धर्म की सच्ची भावना होगी, वह धर्म से शाति, अलौकिक शाति प्राप्त करेगा। अलौकिक शाति पाने मे ही धर्म पाने की सार्थकता है।

मित्रो! धर्म के असली रहस्य तक पहुचने का प्रयास करो। धर्म को उसके वास्तविक रूप मे समझकर ऐसी ज्योति प्रकट करो कि जहा वैर हो वहॉ भी शान्ति की ही झलक दिखाई देने लगे। जहा गले कटते हो, वहा गले से गले मिलने लगे। प्रत्येक प्राणी प्रेम प्रदर्शित करने लगे और विश्व प्रेम की अखण्ड ज्योति जगने लगे। ऐसा होने पर ही समझना कि हमने धर्म को समझा हे।

णमोकार मत्र जपने का प्रयोजन यह नही है कि किसी को ठगने मे सफलता मिले। उसे इस भावना के साथ जपो 'हे प्रभो! तूने जिन शत्रुओ को जीता था, वे ही शत्रु मुझे सता रहे हैं। मैं तेरी सहायता से उन शत्रुओ को जीतना चाहता हूँ।' जिसके अत करण मे इस प्रकार की उज्ज्वल भावना होगी उसे देव भी नमस्कार करेगे।

णमोकार मत्र का दूसरा पद 'णमो सिद्धाण' है। अनादि काल से बन्धे हुए कर्म–बन्धन को जिन्होंने नप्ट कर दिया हे–जो समस्त आध्यात्मिक बन्धनो से पूर्णतया मुक्त हो गये हें ओर जिन्होंने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया हे, वे महात्मा सिद्ध कहलाते हें । जेसे 'अरिहत' किसी व्यक्ति का नाम नही हे, उसी प्रकार सिद्ध भी कोई खास व्यक्ति नही हे। सिद्ध–शब्द आत्मिक विकास की चरमतम स्थिति का द्योतक हे। जिन्हाने यह स्थिति प्राप्त की हे, वे सभी सिद्ध ह।

तीसरा पद 'णमो आयरियाण हे। अरिहत ओर सिद्ध परमात्मा को बतलाने वाला कोई चाहिए। कहावत हे–

गुरु गोविन्द दोनो खडे, किसके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, जो गोविन्द दिया बताय।।

इस कथन के अनुसार आचार्य अरिहत ओर सिद्ध का बतलाते हैं तथा उनकी पहचान करात हे। अरिहत किसी समय साक्षात होत हैं, किसी समय नहीं होते। इसलिए उन्हे समझन के लिए आचार्य की आवश्यकता होती

है। आचार्य स्वय अरिहत द्वारा उपदिष्ट पथ पर चलते हैं और दूसरो को चलाते हैं। आचार्य धार्मिक पुरुषो के सघ के केन्द है।

आज की भाषा मे आचार्य को 'डॉक्टर' कहते है। जैसे–अमुक सज्जन अमुक विषय के डॉक्टर है। परन्तु णमोकार मत्र का आचार्य रसायन या भूगोल आदि का आचार्य नही है। वह धर्म का आचार्य है, अतएव अरिहत और सिद्ध को हृदय मे रख कर उनके बताए पॉच आचारो का पालन करना और उनका रहस्य प्रकट करना आचार्य का कार्य है। आचार्य पद का महत्व बहुत अधिक है और इसी कारण उसका उत्तरदायित्व भी बहुत है। उसे ध्यान रखना पडता है कि रत्न से सिर फोडने की सी स्थिति उत्पन्न न हो जाए।

चौथा पद 'नमो उवज्झायाण' है। आचार्य महान् तत्व पर विचार करके उसका रहस्य समझाते है, इस कारण उन्हे मूल सूत्र पढने का अवसर नही मिलता। इसके अतिरिक्त महान् तत्व पर विचार करते हुए मूल सूत्रो का भी पठन–पाठन करना और सघ का सचालन भी करना, ये सब कार्य अकेले आचार्य से नही हो सकते । अतएव आचार्य के सहायक रूप मे उपाध्याय बनाये गये कि वे मूल सूत्रो के पठन–पाठन आदि का कार्य करे । उपाध्याय का प्रधान कार्य मूल सूत्रसहिता पर विचार करना है।

पाचवा पद 'नमो लोए सव्वसाहूण' है। जैसे राजा, प्रजा से ही होता है–प्रजा के अभाव मे कोई राजा नहीं कहला सकता, उसी प्रकार आचार्य और उपाध्याय भी साधुओ पर निर्भर हैं। साधुओ का सगठन करके उनकी व्यवस्था करने के लिए आचार्य और उपाध्याय हैं, मगर वे स्वय साधु हैं और उनका पद भी साधुओ के अभाव मे नही । साधु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है–

साधयति स्व–परकार्याणि–इति साधु ।

जो अपना कल्याण करता हुआ पर का कल्याण करे, वही साधु कहलाता है। नदी जल इकट्ठा करके समुद्र की ओर जाती है, किन्तु मार्ग मे पडने वाले खेतो और बगीचो को भी सरसब्ज, हराभरा और सजीव बनाती जाती है। इसी प्रकार साधुओ ने अपने कल्याण के लिए दीक्षा ली है–उन्हे मोक्ष के अनन्त सागर मे जाकर मिलना है, फिर भी जो उनके सम्पर्क मे आता है उसे भी वे हरा–भरा बना देते है, जिससे उसका भी कल्याण हो जाता है।

जो महात्मा नदी की तरह निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहते है नदी की भाति रूखे–सूखे हृदय प्रदेश को दया, क्षमा आदि की भावना रूपी सलिल से हराभरा बना देते है जो ससार को धर्म का नवजीवन प्रदान

करते हैं, जो नदी की तरह सर्वसाधारण की आन्तरिक तृषा मिटा देते हैं, वे ही साधु कहलाते हैं। ऐसे महात्माओ को पाचवे पद मे नमस्कार किया गया है।

साधु दूसरो से जो सहायता अपनी साधना के लिए लेते हैं, उसका वदला उन्हे चुकाना ही चाहिए। जिसका अन्न ग्रहण किया है, अपनी शक्ति से उसकी सहायता न की जाय तो अन्न पचेगा कैसे? इसके अतिरिक्त उसका वदला न चुकाना एक प्रकार की स्वार्थपरता है और उसे चोरी का ही एक रूप समझा जा सकता है। गीता मे कहा है–

तैर्दत्तं न प्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव स ।

अर्थात्–जिससे लिया है, उसे दिये विना भोगना चोरी है।

यह कथन सिर्फ साधु के लिए नहीं हैं। मनुष्य मात्र को इस पर ध्यान देने की आवश्यकता हे। पशु जितना लेते हैं।, उससे कई गुना चुका देते हैं, मगर क्या मनुष्य भी ऐसा करता है? मनुष्य मे इतनी स्वार्थपरता न जाने क्यो हे कि वह लेना तो सभी कुछ चाहता हे, मगर देना कुछ भी नही चाहता। ससार मे जो भी अच्छा ओर मूल्यवान् हे, वह सब मेरे अधीन हो जाय ओर फिर उसमे से किसी के पास कुछ भी न जाय। यह वृत्ति गीता के शब्दो मे स्तेनवृत्ति हे ओर ऐसी वृत्ति रखने वाले को अन्त मे कुछ के बदले सभी कुछ छोडना पडता हे।

साधु अपनी साधना मे सदेव तत्पर रहते हैं, फिर भी वे जगत् को वहुत कुछ देते भी हैं। प्रथम तो उनके आचरण का आदर्श ही जनता के लिए एक वडी देन हे दूसरे ये अपने अनुभव की वाणी से भी जगत का हित–साधन करते हैं।

णमोकार मत्र मे पूर्वोक्त पाच पदो को वन्दन किया गया ह। प्रारम्भ के दो पद देव के हैं ओर अन्तिम तीन पद गुरु क हैं। श्रद्धा के साथ इस महामन्त्र का जाप चितामणि की तरह समस्त मनोरथो का पूरक ह। शास्त्रो मे इस मत्र की महान महिमा का वर्णन किया गया ह। यह महामन्त्र चोदह पूर्वो का सार वतलाया गया ह। अनेक पतित इसके प्रताप से भव–सागर तर गये ह। जो इसका जाप ओर मनन करते हैं व कल्याण के पात्र वनते ह।

अन्तरतर की प्रार्थना

श्रीमुनिसुव्रत सायबा !

भगवान् मुनि सुव्रतनाथ की यह प्रार्थना है। देखना चाहिए कि भक्त अपने भावो को भगवान् के समक्ष प्रार्थना द्वारा किस प्रकार निवेदन करते हैं? इस विषय को लेकर जितना भी विचार किया जायेगा, उतना ही अधिक आनन्द अनुभव होगा। आनददायक वस्तु जितनी अधिक समीप होगी, उससे उतना ही अधिक आनन्द मिलेगा। समुद्र की शीतल तरगे ग्रीष्म के घोर ताप से तपे पुरुष को शातिदायक मालूम होती हैं तो अधिक सन्निकट होने पर वे और भी अधिक शाति पहुचाती हैं। पुष्प का सौरभ अच्छा लगता है, लेकिन फूल जब अधिक नजदीक होता है, तो उसकी खुशबू और ज्यादा आनन्द देने वाली होती है। इन लौकिक उदाहरणो से यह बात भलीभाति समझी जा सकती है कि परमात्मा की प्रार्थना जब समीप से समीपतर हो जाती है, तब उसमे और भी अधिक माधुर्य प्रतीत होने लगता है। इस दशा मे प्रार्थना की सरसता बहुत कुछ बढ जाती है और उसमे अपूर्व आस्वाद आने लगता है। परमात्मा की प्रार्थना का सन्निकट होना अर्थात् जिह्वा से ही नही, वरन् अन्तर से अन्तरतर से, आत्मा से प्रार्थना का उद्भव होना है। परमात्मा की प्रार्थना जब आत्मा से उद्भूत होती है, तब आत्मा परमात्मपद की अनुभूति के अलोकिक आनन्द मे डूब जाता हे। उस समय उसे बाह्य ससार विस्मृत सा हो जाता है। उस समय के आनन्द की कल्पना अनुभवगम्य है, वाणी उसे प्रकट करने मे समर्थ नही है।

प्रार्थना अन्तरतर से हुई है या नही, यह जानने की कसौटी वही आनद हे अगर आपको प्रार्थना मे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ है—अद्भुत शातरस के सरोवर मे आप डूब गये है, तो समझिए कि आपकी प्रार्थना समीप की है। अगर आपको यह स्थिति प्राप्त नही हुई तो मानना

चाहिए कि प्रार्थना आत्मस्पर्शी नही है, ऊपरी है और उससे प्रार्थना का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल नही हो सकता। प्रार्थना के मार्ग मे आपको और आगे वढना है—उच्चतर अवस्था प्राप्त करना है और अपनी अपूर्णता को हटाना है। जिस समय आपकी यह अपूर्णता दूर हो जायेगी, उस समय आपको ससार के विषयभोग तृण के समान तुच्छ और रसहीन प्रतीत होने लगेगे।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या ऊपर से प्रार्थना बोलना उचित नही है? इसका उत्तर यह है कि चाहे आपकी प्रार्थना अन्तरतर से उत्पन्न हुई हो और आप उसके रस का आस्वादन करते हो, तब भी जिह्वा से प्रार्थना वोलना वन्द कर देने से व्यवहार उठ जायेगा। अगर आपने आजीवन मौन साध लिया होता, वार्तालाप करना भी स्थगित कर दिया होता तो प्रार्थना वोलना वन्द कर देना भी कदाचित् ठीक कहा जा सकता था, लेकिन जब तक आपने ऐसा नही किया—सासारिक कार्यो मे बोलना बद नही किया, तब तक प्रार्थना वोलना वन्द कर देना कहा तक उचित है? अगर आप रोटी—पानी का नाम लेना छोड चुके हो तो बात दूसरी है। अन्यथा दुनिया भर की पचायत करो ओर प्रार्थना वोलना छोड दो तो यह वुद्धिमत्ता की बात नही है। उपर्युक्त आन्तरिक प्रार्थना का अर्थ यह कदापि नही कि आप वाचनिक प्रार्थना न करे। उसका आशय यह हे कि जव आप वाचनिक प्रार्थना करे तो मन भी साथ रहे। ऐसा न हो कि मन तो इधर—उधर भटकता फिरे और अकेली जीभ प्रार्थना के शव्दो का उच्चारण करती रहे । इस प्रकार की प्रार्थना का स्वाद आत्मा को ओर मन को नही आएगा। वेचारी जीभ तो खाने—पीने का स्वाद चख सकती हे, वह प्रार्थना के रस को नही चख सकती । प्रार्थना के असली रस का अनुभव करना हे तो मन वचन और काय—तीनो से प्रार्थना करो। वाणी से प्रार्थना का जो पावन आर पीयूषमय प्रवाह वहे उसमे मन निमग्न होकर पवित्र वन जाय तो प्रार्थना से कल्याण होगा। जो मन प्रार्थना के अर्थप्रवाह से दूर भागता फिरेगा उसके पाप किस प्रकार धुलगे?

कल्पना कीजिए, आपने किसी से पानी लाने को कहा। आपके शव्द क आकर्षण स वह पानी ले आया। पानी आपके सामने आ गया मगर पानी सामन आने से ही क्या प्यास वुझ जायेगी? नही। शव्द मे शक्ति हे ओर उस शक्ति स पानी आ गया लकिन पानी के आ जाने स ही प्यास नही वुझेगी। इसी प्रकार भूख लगने पर आपन भाजन मगवाया। भाजन आ गया मगर भाजन आ जान स ही भूख नही मिट सकती। पानी पीन स प्यास आर भाजन करन स ही भूख मिटगी। इस प्रकार प्रयाजन सिद्ध करन क लिए दो व्यवहार

हुए–एक वस्तु का आकर्षण करने के लिए बोलना और दूसरा आकर्षित वस्तु का उपयोग करना। सासारिक कार्यो मे आप दोनो व्यवहार करने से नही चूकते, लेकिन परमात्मा की प्रार्थना करने मे भूल होती है, आप प्रार्थना बोलते हैं और बोलने से प्रार्थना का आनन्द रूपी जल आपके पास आता भी है, मगर जब तक आप उसका पान नही करेगे, तब तक आनन्द मिले कहा से? प्रार्थना के परिणाम स्वरूप फिर शाति मिले कैसे? अतएव वाणी द्वारा ऊपर से भी पार्थना करो और मन के द्वारा आन्तरिक प्रार्थना भी करो। दोनो का समन्वय करने से आप कृतार्थ हो जाएगे। आपको कल्याण की खोज मे भटकना नही पडेगा। कल्याण स्वय ही आपको खोज लेगा।

एक भक्त कहते है –

शिक्ल्या बोल्याचा सगतील वाद। अनुभव भेद नाही कोणा।।
पण्डित है ज्ञानी करतील कथा। न मिलती अर्था निज सुखा।
तुका म्हणे जैसे लाचा साठी ग्वाही। देतिल है वस्तु ठाव नाही।।

भक्त कहते है–आज हमे ससार मे सर्वत्र क्या दिखाई दे रहा है? हम देखते है कि एक बात इसने और एक बात उसने सीख ली और बस, वादविवाद करने लगे। एक ने कहा–"मैं जो कहता हूँ, बस, वही ठीक है। दूसरे ने कहा–नही, यह कैसे हो सकता है? सच तो वह है जो मै कहता हूँ।" दोनो ने अधूरी बात सीखी हैं, पूर्णता किसी को प्राप्त नही हुई लेकिन वादविवाद मे कमी क्यो होने लगी? कहावत है– अधभरा घडा छलकता है। अधूरा ज्ञान वादविवाद के अखाडे निर्माण करता है। जैसे अखाडे मे शारीरिक सघर्ष होता है, उसी प्रकार अधूरे ज्ञान के अखाडे मे वाचनिक सघर्ष होता है। अनुभव के अभाव मे ज्ञान अपूर्ण रहता है और ज्ञान की अपूर्णता सम्पूर्ण सत्य का हनन ही नही करती बल्कि जनता मे कलह और विसवाद भी पैदा करती है।

किसी ने अग्रेजी नाम 'वाटर' (Water) सीख लिया और किसी ने हिन्दी नाम पानी सीख लिया। दोनो मे विवाद खडा हो गया। एक कहता है–जल को 'वाटर' कहते है और दूसरा कहता है तुम क्या समझो, जी? जल को तो पानी कहते है। दोनो का ज्ञान सिर्फ शब्दस्पर्शी है–केवल शब्द तक सीमित है, भावस्पर्शी ज्ञान होने पर शब्दो का झगडा खत्म हो जाता है।

ससार के इतिहास को देखने से मालूम होता है कि धर्म के नाम पर भी अनेक लडाइया हुई है और बडे बडे खून खच्चर हुए है। धर्म के अभिनिवेश मे कितने ही गले काटे गये है। युरोप मे धर्म के ठेकेदारो ने कितने ही अनेक

स्वतन्त्र विचारको को विष दिया, फासी पर लटकाया या और तरह मार डाला। दक्षिण भारत मे शैव राजाओ ने किसी समय जैनो की रोमहर्षण हत्या की। तारीफ तो यह है कि सभी धर्मो के अनुयायी–'दया धर्म का मूल है' इस सिद्धात के पक्के अनुयायी अपने आपको मानते हैं, लेकिन धर्म अर्थात् दया के खातिर घोर से घोर निर्दयता दिखलाने मे सकोच नही करते। इस प्रकार लोगो ने धर्म के लिए अधर्म का आश्रय लिया है। इसका मुख्य कारण धर्म विषयक अज्ञान है। लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं, मगर धर्म के मर्म तक पहुचते नही हैं इसीलिए भक्त कहते हैं–लोग सीख कर वाद–विवाद करते हैं, लेकिन अनुभव नही करते। पण्डित कहलाने वाले और अपने को ज्ञानी प्रसिद्ध करने वाले और श्रोताओ को आकृष्ट करने वाले शब्दो मे कथा बाचने वाले लोग भी उस कथा को–उसके आशयभूत धर्म को–अपने सुख के साथ नही जोडते हैं।

एक कथावाचक भट्टजी कथा बाचते थे । एक दिन उनकी लडकी भी कथा सुनने चली गई। उस दिन कथा मे बैंगन का प्रसग चल पडा। कथावाचक ने कहा–बैंगन खाना बुरा है। उसमे बीज बहुत होते है और वह वायु करता है। कथा वाचक ने बहुत विस्तार से यह बात कही। लडकी बैठी हुई यह सब सुन रही थी। उसने सोचा–पिताजी को यह बात शायद आज ही मालूम हुई है। अब तक उन्हे बैंगन की बुराइया मालूम नही रही होगी, अब तक तो इनका हाल रहा कि बैंगन के शाक के बिना रोटी नही खाते थे। वे कहा करते थे–

नीली टोपी श्याम घटा, सब शाको मे शाक भटा।

मगर आज उसकी इतनी निन्दा कर रहे हैं। इससे जानती हूँ कि आज ही इन्हे बैंगन की बुराई मालूम हुई हैं । कही ऐसा न हो कि आज घर पर बैंगन का ही शाक बन जाय और पिताजी भर पेट भोजन भी न कर पाए।

यह सोचकर लडकी कथा सुनना छोडकर घर आई और माता से बोली–'मॉ, आज किसका शाक बनाया है?' मा ने कहा–बिटिया, बैंगन तो है ही। साथ मे एक और शाक बना लूगी।' माता की बात से लडकी को कुछ तसल्ली हुई। उसने पूछा–'अभी बैंगन बनाये तो नहीं हैं?' माता के नही करने पर लडकी ने कहा–'तो अव वैंगन मत बनाना। मैं अभी कथा सुनकर आई हूं। पिताजी ने आज दगन की खूब निन्दा की हे उन्होंने सब कथा सुनने वाला का दगन नही खाने का उपदेश दिया है। सबने उनकी बात की सराहना की हे। अद पितजी भी दगन नही खायग। कोई दूसरी तरकारी बना तना।'

लडकी की बात सुनकर मा ने बैंगन का शाक नही बनाया। कथाभट्ट कथा समाप्त कर घर आये। भोजन करने बैठे। थाली मे और तरकारिया परोसी गई मगर बैंगन नजर नही आये। बैंगन न देखकर भट्टजी ने पूछा—क्यो! आज बैंगन की तरकारी नही बनी?'

ब्राह्मणी ने कहा—घर मे बैंगन तो थे, मगर जान बूझ कर ही आज नही बनाए हैं।

भट्ट—ऐसा क्यो?

ब्राह्मणी ने लडकी को बुलाकर कहा—अब इन्हे बता, तूने बैंगन का शाक क्यो नही बनाने दिया?

लडकी बोली—पिताजी, आज आपने कथा मे बैगन की बहुत निदा की थी। आपने कहा था कि बैंगन शारीरिक दृष्टि से भी हानिकारक है, आध्यात्मिक दृष्टि से भी बुरा है और ठाकुरजी को बैंगन का भोग भी नही चढता । इसीसे मैने सोचा कि आप इतनी निदा कर रहे है तो आप स्वय कैसे खायेगे?

भट्ट—मूर्ख लडकी! तुझे इतना ज्ञान कहा कि कथा के बैगन अलग होते हैं और रसोई घर के अलग होते हैं। कथा मे जो बात आई थी सो कहनी पडी । ऐसा न कहे तो आजीविका कैसे चले? अगर कथा के अनुसार ही चलने लगे तो जीना कठिन हो जायेगा।

बाप की बात सुनकर लडकी के दिल का ठीक तरह समाधान तो नही हुआ, मगर वह कुछ बोल भी न सकी। उसने मन ही मन सोचा—इससे तो हम जैसी मूर्खा ही भली कि आजीविका के लिए ढोग तो नही करती। हाथी के दात दिखाने के अलग और खाने के अलग होते है।

इस प्रकार कथा मे तो भट्टजी पण्डित रहे और अर्थ मे वह लडकी पण्डित रही। जो केवल कथा मे ही पण्डित हैं—अर्थ मे पण्डित नही हैं, वे क्या तो अपना कल्याण करेगे और क्या दूसरो की भलाई करेगे! स्वय आचरण करने वाला ही अपने वचनो की छाप दूसरो पर डाल सकता है। जो खुद आचरण नही करता, उसका दूसरे पर कोई विशेष प्रभाव नही पड सकता।

भक्त कहते है—इस प्रकार की कथा बाचने वाले मानो रिश्वत लेकर गवाह देने वाले है वे चाहे मान—प्रतिष्ठा के लोभ से या आजीविका के लोभ से गवाही दे पर है वे रिश्वत लेकर गवाही देने के समान ही । ऐसे लोग सत्य अर्थ को परमार्थ को नही जानते। रिश्वत लेकर गवाही देने वालो का अन्त मे किस प्रकार भडा—फोड होता है, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये। दोनो ने धनोपार्जन के लिए यथाशक्य उद्योग किया। पर उनमे से एक को अच्छा लाभ हुआ और दूसरे को लाभ नही हुआ। जिसे लाभ नहीं हुआ था, उसने सोचा–उद्योग करते–करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ नही हुआ। अब देश को लौट जाना ही श्रेयस्कर है। उसने अपना यह विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया। मित्र ने सोचा मुझे यहा काफी आमदनी हुई है और व्यापार मे इतना उलझा हुआ हूँ कि देश नही जा सकता। लेकिन कुछ रकम अपने मित्र ने साथ क्यो न भेज दू, जिससे स्त्री को सन्तोष हो जाय। लेकिन यह रुपया कहा बाधे फिरेगा, यह सोचकर उसने एक लाल खरीदा और अपने मित्र को देकर कहा–भाई, जाते हो तो जाओ ओर यह लाल अपनी भाभी को दे देना। कह देना कि यह लाल कीमती है। इसे सम्भाल कर रखे। कुछ दिनो बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊगा। लाल पहुचने से तुम्हारी भाभी को सन्तोष होगा।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ। रास्ते मे उसके मन मे वेईमानी आ गई। मनुष्य दुर्बलताओ का पुतला है। कव कोनसी दुर्वलता उसे विवश कर देती है, कहा नही जा सकता। उसे विचार आया–लाल कीमती हे ओर मित्र ने अकेले मे ही मुझे दिया है। लेते–देते किसी ने देखा नहीं हे कोई गवाह साख नही है। धन बेईमानी किये बिना आता नही, यह मैंने प्रयत्न करके देख लिया हे। ईमानदारी स्वय इतनी वेईमान हे कि ईमानदार को भूखो मरना पडता हे। ऐसी मुहजली ईमानदारी को क्या लेकर चाटू? वेहतर यही हे कि हाथ मे आये इस लाल को हजम कर लिया जाय। थोडा सा झूठ वोलना पडेगा। कह दूगा–मेने लाल दे दिया हे।

लोग सोचते हें पाप केवल जीव–हिसा करने मे ही हे। झूठ–कपट तो लोगो की निगाहो मे मानो पाप ही नहीं हे। झूठ–कपट मे कोनसा महारम्भ समारम्भ करना पडता हे। लाल के लिए ललचाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा। धनोपार्जन करने मे अधिक आरम्भ समारम्भ करना पडेगा ओर थोडीसी जीभ हिलाने मे आरम्भ समारम्भ के विना ही धन मिल रहा हे। फिर ऐसे सस्ते धर्म का पालन क्यो न किया जाय? कोन पाप मे पडकर आरभ करके धन कमाने का झझट करे?

ऐसा ही कुछ सोचकर वह अपने घर पहुचा । उसने लाल अपने ही पास रख लिया मित्र की स्त्री को नही दिया।

मित्र की पत्नी को उसके लोट आने का समाचार मिला। उसने सोचा वह तो अपन मित्र का कुशल समाचार कहने आये नहीं मगर मुझे जाकर पृछ

आने मे ही क्या हानि है? वह पति के मित्र के घर पहुची। पूछा आप अकेले ही क्यो आ गये? अपने मित्र को साथ क्यो नही लाए?

उसने कहा वह बडा ही लोभी है। उससे कमाई का लोभ छूटता ही नही है। खूब धन कमाया है, फिर भी नही आया।

स्त्री ने पूछा—खूब कमाया है, तो कुछ भेजा नही ?

अजी, वह लोभी क्या भेजेगा! कुछ भी नही भेजा उसने।

मनुष्य जब एक पाप करता है तो उसे छिपाने के लिए कई पाप करने पडते हैं। कहावत है—जिसका एक पैर खिसक जाता है, वह लुढकता ही जाता है।

स्त्री सन्तोष करके बैठ गई। उसने सोचा—कुछ नही दिया तो न सही, कुशल पूर्वक है और कमाई कर रहे हैं तो आखिर ले कहा जायेगे? अन्त मे तो घर यही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्धा समेट कर घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुशल तो रहे? आप मुझे तो एकदम ही भूल गये! अपने मित्र के साथ कुछ भी नही भेजा?

पति ने कहा—भूल कैसे गया? भूल जाता तो तुम्हारे लिए लाल क्यो भेजता?

पत्नी—कौनसा लाल?

पति—क्यो, मित्र के साथ भेजा था, न? तुम्हे मिला नही वह?

पत्नी—नही, लाल तो मुझे नही दिया। वे तो आपके समाचार कहने के लिए भी नही आये। मै खुद उनके घर गई। कुशल समाचार पूछे। उन्होने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नही भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन मे बेईमानी आ गई। लाल उसीने हजम कर लिया है। प्रात काल होते ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रग उड गया। लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूछा—अच्छा, आप आ गये?

'जी हा' कहकर वह बैठ गया। कुशल—वृत्तान्त के पश्चात् उसने पूछा—मैने तुम्हे जो लाल दिया था, वह कहा है? उसने कहा—वह तो आते ही मैने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

दूसरे ने कहा—वह तो कहती है कि मुझे दिया ही नही।

प्रथम मित्र—झूठी है, स्त्रियो का क्या भरोसा! न जाने किसी को दे दिया होगा ओर मुझे चोर बनाती है।

इस प्रकार कहकर वह गरजने लगा—अपनी स्त्री को तो देखते नही और मुझे चोर, बेईमान बनाते हो! ऐसा जानता तो मैं लाता ही क्यो? खबरदार, जो मुझसे अब लाल के विषय मे कभी कुछ पूछा।

झूठा आदमी चिल्लाता बहुत है। उसका रग ढग देखकर लाल वाले मित्र ने सोचा—यह लाल भी हजम कर गया और ऊपर से मेरी पत्नी को दुराचारिणी प्रकट करना चाहता है और मुझे धमकी दे रहा है।

आखिर वह हाकिम के पास गया और सारा किस्सा सुनाया। हाकिम ने पूछा—तुमने किसके सामने लाल दिया था? उसने कहा—मैंने केवल विश्वास पर ही दिया था। किसी को गवाह नही बनाया। उसकी इस स्पष्टोक्ति से हाकिम को उसके कथन पर विश्वास हो गया। हाकिम ने सान्त्वना देते हुए कहा—मैं समझ गया हूँ। तुम सच्चे हो। मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूगा। कदाचित् लाल न मिला तो तुम्हारी इज्जत अवश्य वापिस आयेगी। तुम अपने घर जाओ।

हाकिम ने उस लाल रख लेने वाले को बुलाकर कहा, तुम्हारे विषय मे अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार की फरियाद की है। अपना भला चाहो तो लाल दे दो।

उसने उत्तर दिया—आप मुझे व्यर्थ ही धमका रहे हैं। मैंने आते ही उसकी स्त्री को लाल सौंप दिया है। लाल दे देने के गवाह भी मेरे पास मौजूद हैं।

हाकिम ने उसके गवाह बुलवाये। चार बनावटी गवाह थे। थोडे से पैसो के लालच मे आकर झूठी साक्षी देने को तैयार हो गये थे। हाकिम के पूछने पर चारो ने गवाही दी कि हमारे सामने लाल दिया गया है। हम ईमान, धर्म और परमेश्वर की कसम खाकर कहते हैं कि इसने हमारे सामने लाल दिया है। हाकिम ने चारो गवाहो को अलग—अलग करके कहा—लाल कितना बडा था उसके आकार का एक एक पत्थर उठा लाओ। अब झूठे गवाह चक्कर मे पडे। उन्होने कभी लाल देखा नही था। उसकी बराबरी का पत्थर लाए तो कैसे? फिर सोचा—लाल कीमती चीज है तो कुछ तो बडा होगा ही। चारो यही सोचकर अलग—अलग आकार के बडे बडे पत्थर उठा लाए, जो एक दूसरे से काफी बडे—छोटे थे। हाकिम ने चारो पत्थर अपने पास रख लिए। फिर पूछा—इन चारो मे से लाल किस पत्थर के बराबर था? सब की अक्ल गुम होने लगी। चारो बुरी तरह चकराये।

आखिरकार हाकिम ने चारो गवाहो के कोडे लगाने की आज्ञा दी । थोडे से पैसो के लिए झूठ बोलना आसान था, मगर कोडे खाना मुश्किल हो गया। चारो ने गिडगिडा कर कहा—हजूर, कोडे क्यो लगवाते हैं? हम लोगो ने तो क्या हमारे बाप ने भी कभी लाल नही देखा। हम तो इसके मुलाहिजे और कुछ लोभ—लालच मे फसकर गवाही देने आये हैं।

असत्य कितना बलहीन होता है! सत्य के सामने असत्य के पैर उखडते देर नही लगती। असत्य मे धैर्य नही, साहस नही, शक्ति नही।

झूठे गवाहो की कलई खुल गई। हाकिम ने पूछा—कहो सेठ, इतना बडा लाल तुमने उसकी स्त्री को दिया था? सेठ लज्जित था। लोकनिन्दा और राजदण्ड के भय से तथा शर्म से वह धरती मे गडा जा रहा था। वह बोलता क्या? उसके मुख से एक भी शब्द न निकला। हाकिम ने कहा—तुमने लाल भी चुराया और झूठे गवाह भी तैयार किये। तुम्हारे ऊपर दुहरे अपराध हैं। अब सच बताओ, लाल कहा है? नहीं तो गवाहो के बदले कोडो से तुम्हारी पूजा की जायेगी।

मार के आगे भूत भागता है, यह लोकोक्ति है। सेठ ने फौरन लाल दे दिया।

लाल के गवाह झूठे थे और वे प्रकट हो गये। मगर धर्म के विषय मे झूठी गवाही देने वालो पर कौन प्रतिबन्ध लगाए? लोग बढ बढकर बाते करते हैं। सत्य, शील, सन्तोष आदि का उपदेश देते हैं, लेकिन उनसे पूछो कि खुद कितने अश मे इनका पालन करते हो? दूसरो को उपदेश देना, मगर आप खुद उसके विरुद्ध आचरण करना झूठी गवाही देने के समान नहीं तो क्या है?

जैसे लाल का आकार भिन्नभिन्न बताया गया था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ल भी भिन्नभिन्न प्रकार की बतलाई जाती है। एक कहता है—ईश्वर ऐसा है तो दूसरा कहता है—ऐसा नही, वैसा है। इस प्रकार कहलाने वालो से पूछो—तुम दोनो ईश्वर की जो दो शक्ले बतला रहे हो, उनमे से ईश्वर वास्तव मे किस शक्ल का है? तो वे क्या उत्तर देगे? जैसे उन गवाहो ने लाल नही देखा था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ले बतलाने वालो ने कभी ईश्वर का अनुभव नही किया है। झूठे गवाहो ने जो बात बिना समझे बूझे सीख ली थी और सीखी बात तोते की तरह कह दी थी, इसी प्रकार ये लोग भी बिना अनुभव किये ही सीखी सिखाई बाते तोते की तरह उच्चारण कर देते हैं। इन्हे वास्तविक अनुभव नही है।

प्रश्न होता है—ऐसी अवस्था मे करना क्या चाहिए? इसका उत्तर यह है कि घबराने की आवश्यकता नहीं। अन्त मे तो सत्य ओर शील ही विजयी होते हैं।

ईश्वर के विषय मे अगर सुदृढ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा, विश्वास न हुआ तो कही नहीं मिलेगा। ईश्वर के शरीर नहीं है, उसका कोई वर्ण नहीं है, वह केवल उज्ज्वल हृदय से किये गये अनुभव से ही जाना जा सकता है। ऊपर जो प्रार्थना की गई है उसमे यही बतलाया गया है—

दीनदयाल देवा तणा देव के तरण तारण प्रभु तो मणी।
उज्ज्वल चित सुमरूं नितमेव के श्रीमुनिसुव्रत साहबा।।

उज्ज्वल चित्त से परमात्मा का स्मरण करोगे तो उसका चिदानन्दमय स्वरूप देख पाओगे। यही बात अन्य कवि भी कहते हैं।

साराश यह है कि हृदय शुद्ध हुए बिना परमात्मा का दर्शन नही हो सकता। अतएव साधक के लिए पहली साधना यही हे कि वह अपने हृदय को शुद्ध करने का प्रयत्न करे। हृदयशुद्धि की बलवती इच्छा तभी उत्पन्न हाती ह जब हृदय की अशुद्धि पहचान ली जाय। चिकित्सा से पहले रोग के ज्ञान की आवश्यकता रहती हे। अशुद्धता का भान शुद्धि की ओर प्रेरित कर सकता ह। इसी कारण भक्तजन दूसरे के अवगुणो का ख्याल न करके अपने ही अवगुण देखते हैं और कहते हैं—

हूं अपराधी अनादि नो, जनम जनम गुना किया भरपूर के।
लूटिया प्राण छह कायना, सेविया पाप अठारह क्रूर के।।

दूसरे के अवगुण देखने से काम नही चलेगा। अपने अवगुण देखन से ही कल्याण का मार्ग मिल सकता है। दूसरो के अवगुण देखना स्वय एक अवगुण ह। दुनिया के अवगुणो को अपने चित्त म धारण करोगे तो चित्त अवगुणो का खजाना बन जायगा। इसके अतिरिक्त अवगुण आपके लिए ऐसे साधारण हो जाएगे कि आप उन्हे शायद हेय भी समझना छोड द। दुनिया के प्रत्येक मनुष्य मे अगर कुछ अवगुण हागे तो कुछ गुण भी होगे। आप अपनी दृष्टि ऐसी उज्ज्वल बनाइए कि आपको दूसर क गुण तो दिखाई द मगर अवगुणों की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिए। हा अवगुण देखने हैं तो अपने ही अवगुण देखा। अपने अवगुण देखन से उन्हे त्यागने की इच्छा होगी और आप सद्गुणी बन सकगे।

अगर परमात्मा के दर्शन करने हैं, तो सीधे मार्ग पर आकर यह विचार करो–मैं अपराधी हूँ। मेरे अवगुणो का पार नही है पभो! मुझसे ये अवगुण कब छूटेगे?

इस प्रकार अपने दोष देखते रहने से हृदय निर्दोष बनेगा और परमात्मा का दर्शन होगा। कोई आदमी चित्र बनाना न जानता हो, तब भी यदि वह साफ काच पास मे रखकर किसी वस्तु के सामने करेगा तो उस वस्तु का प्रतिबिम्ब उस काच मे आ जायेगा। अगर काच ही मैला होगा तो फोटो नही आएगा । अतएव अगर और कुछ न बन पडे तो भी हृदय को काच की तरह स्वच्छ रखो। इससे परमात्मदर्शन हो सकेगा।

ईश्वर मे रूप नही है। वह उसी तरह का है, जैसी आपकी आत्मा है। अगर कोई पूछे कि–आत्मा कैसी है? तो उससे कहना चाहिए कि तुम्हारे भीतर बुद्धि है या नहीं? अगर है तो निकालकर बताओ–बुद्धि कैसी है? बुद्धि नही दीखती, तथापि उसके अस्तित्व से इन्कार नही किया जा सकता। इसी प्रकार चाहे परमात्मा चमडे की आखो से दिखाई न दे तथापि उसका अस्तित्व अनुभवसिद्ध है, उसे कोई अस्वीकार नही कर सकता। जो परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार नही करता, वह आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करता है और आत्मा को अस्वीकार करने वाला अपना ही निषेध करता है और फिर अपना निषेध करने वाला वह कौन है?

मित्रो! प्रत्येक कल्याणमयी पुरुष परमात्मा का अनन्त ज्योतिर्मय स्वरूप देखने के लिए उत्सुक है। मगर हृदय की मलीनता के कारण उसकी उत्सुकता पूरी नही होती। हृदय को निर्मल बनाना ही परमात्मा के साक्षात्कार का प्रधान साधन है। जो हृदय को शुद्ध करने मे सदा सावधान रहते है, वे अनन्त कल्याण के भाजन बनते हैं।

वैर का परिहार

श्री अभिनन्दन दु.खनिकन्दन वन्दन पूजन जोग जी।

यह श्रीअभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना है। इस प्रार्थना पर विचार करते हुए यह देखना है कि आत्मा परमात्मा से किस बात की प्रार्थना करता है ओर आत्मा का परमात्मा के साथ क्या सबध है? सम्बन्ध के अभाव मे किसी से कुछ मागने पर आशा पूरी नही होती। आप कह सकते है कि दाता और याचक का कुछ भी सम्बन्ध न होने पर भी दाता याचक की अभिलाषा पूरी कर देता है। दाता नही देखता कि याचक कौन है? और कहा का है? उसकी उदारता को यह सब जानने की अपेक्षा ही नही रहती। दाता बिना ही किसी सम्बन्ध के याचक को दे देता है। ऐसी हालत मे परमात्मा क्या बिना किसी सम्बन्ध के हमारी आशा पूरी नही करेगा?

इसका उत्तर यह हे कि दाता ओर याचक मे सम्बन्ध नही है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है। याचक ने ही दाता को 'दाता' पद दिया है। याचक दाता से याचना न करते ओर दाता पद न देते तो उसे दाता कौन कहता? वास्तव मे याचक ने ही दाता को दाता पद दिया है और इस प्रकार दाता–याचक का सम्बन्ध है।

अब हमे यह भी देखना हे कि आत्मा ओर परमात्मा का क्या सम्बन्ध है? परमात्मा के अन्यान्य गुणो के साथ अपना जो सम्बन्ध हे, उसकी बात छोड दीजिए, तो भी आत्मा दुखी हे ओर परमात्मा दु खनिकन्दन हे–यही आत्मा ओर परमात्मा का सम्बन्ध हे। दुखी ओर दु खनिकन्दन का सम्बन्ध होना स्वाभाविक है आत्मा का मुख्य ध्येय दु खो का नाश करना हे ओर परमात्मा दु ख का नाशक हे। परमात्मा हमारा दु ख न मिटावे, तो उसका दु ख–निकन्दन स्वरूप ही कैसे कायम रहे? अतएव दु खनिकन्दन प्रभु से हमारी यह प्रार्थना है कि–

श्रीअभिनन्दन दुखनिकन्दन, वन्दन पूजन जोग जी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।।

यह प्रार्थना किसी एक व्यक्ति की नही है। इसमे जो भाव व्यक्त किया गया है वह जगत् के प्रत्येक प्राणी का भाव है। ससार का कोई भी प्राणी आशा से अतीत नही है–सभी को आशा लगी हुई है सभी को भाति भाति की चिन्ताये सता रही हैं। सभी सुख के अभिलाषी हैं और सभी आरोग्य चाहते है । यह सब आकाक्षाये प्राणी मात्र मे समान हैं । यह बात दूसरी है कि अज्ञान के वश होकर प्राणी अपने दुख और दुख के मूल को ठीक तरह न समझता हो या विपरीत समझता हो, लेकिन दुख से छुटकारा सभी चाहते है।

दुख से मुक्ति चाहने पर भी जब तक दुख का वास्तविक स्वरूप और दुख के असली कारणो को न समझ लिया जाय तब तक जीव की चाह पूरी नही हो सकती। दुख सबधी अज्ञान के कारण प्राणी सुख की अभिलाषा से ऐसा उपाय करता है कि सुख पाने के बदले उलटा दुख का ही भागी बनता है। ससारी जीवो को जो दुख है उसका प्रधान कारण पर सयोग है। जहा पर–पदार्थ का सयोग हुआ और उसने अहभाव या ममभाव धारण किया कि दुख की उत्पत्ति होती है। उस दुख को मिटाने के लिये जीव फिर नवीन–पदार्थो का सयोग चाहता है और परिणाम यह होता है कि वह दुख बढता ही चला जाता हैं। इस प्रकार ज्यो ज्यो दवा की जाती है, त्यो–त्यो बीमारी बढती ही जाती है। जब उपाय ही उलटा है तो नतीजा उलटा क्यो नही होगा? कठिनाई तो यह है कि हम परमात्मा से जो प्रार्थना करते है, उसका आशय तो है दुख दूर करने का, मगर हमारा भ्रम ऐसा है कि हम दुखोत्पादक कारणो को ही दुख दूर करने का कारण समझ बैठते हैं। इसी भाव से हम प्रार्थना करते है । किसी को निर्धनता का दुख है, तो किसी को सतान के अभाव का दुख है, किसी को अपने अपयश की चिन्ता है। इस दुख को मिटाने के लिए धन चाहिए, सतान चाहिये और यश चाहिये। अज्ञानी पुरुष की धारणा है कि इन वस्तुओ का सयोग होने से ही हमारे दुख के अकुर सूख जायेगे और हम सुखी हो जायेगे मगर वास्तविक बात ऐसी नही है । ससार के ये सब पर–पदार्थ हमारे दुख का नाश नही कर सकते। इनमे दुखदलिनी शक्ति नही है। यही नही, बल्कि वास्तव मे ये ही दुख के कारण है। ज्ञानी पुरुष अपनी सम्यग्दृष्टि से इनका सत्य स्वरूप समझते हैं। उन्होने

जाना है कि बाह्य पदार्थों के साथ जितने अशो मे आत्मीयता का सबन्ध स्थापित किया जायेगा, उतनी ही दुख की वृद्धि होगी।

जब तुम्हारी दृष्टि निर्मल हो जायेगी और तुम्हे सत्य वस्तुतत्व का प्रतिभास होने लगेगा, तब तुम अपने ऊपर हसे बिना न रहोगे कि वाह! मुझे परमात्मा की प्रार्थना द्वारा दुख का नाश करना था, मगर मै चाहता था दुख के कारण! मैं रोग मिटाने के लिये रोग बढाने वाली औषध का सेवन कर रहा था! और जब रोग बढता जाता था तो अपने अज्ञान के बदले औषध को कोसता था! मेरी समझ कैसी सुन्दर थी!

हे मनुष्य! तेरे अन्तकरण मे सचमुच ही दुख दूर करने की अभिलाषा जागृत हुई है और तू सुख पाने के लिए उत्सुक है, तो पहले यह समझ ले—अच्छी तरह निश्चय कर ले कि तेरा दुख क्या है? और किस दुख को मिटाने की तुझे इच्छा हुई है? तू परमात्मा की प्रार्थना करके कौनसी आशा पूरी करना चाहता है?

उपर्युक्त प्रार्थना सभी की है। मैं भी उसमे शामिल हूँ। जब तक शरीर के साथ मेरा सम्बन्ध बना हे। तब तक मेरी आधि—व्याधियो का अन्त नही है। अनेक आध्यात्मिक और मानसिक दुख लगे हुए हैं। उन्हे मैं जानता हूँ। मगर तुम्हे भी रोग हे या नही? मैंने अपने दुखो को दूर करने के लिए साधुपन स्वीकार किया हे ओर तुम अपने दुख मिटाने के लिए मेरे पास आये हो ओर धर्म क्रिया करते हो। इस प्रकार मेरा ओर तुम्हारा एक ही उद्देश्य दुख मिटाना हे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथाशक्य चेष्टा की जा रही हे।

यह सदेव स्मरण रखना होगा कि अपने दुख दूर करने के लिए अभी तक हमने जो कुछ किया है, वह अत्यन्त अल्प हे ओर बहुत कुछ करना अभी शेष ही पडा है। अतएव अपने क्षुद्र प्रयत्न पर अहकार न करना। अहकार किया तो फिर दुख नही मिटेगे। जो कुछ करते हो उसे परमात्मा के पवित्रतम चरणो मे समर्पण कर दो ओर उसीसे दुख दूर करने की विनम्र भाव से, उज्ज्वल अन्तकरण से अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा एकत्र करके प्रार्थना करो। प्रार्थना करो कि—हे प्रभो! तू ही मेरा दुख मिटा। मैंने सारा ससार छान डाला, मगर दुख मिटाने वाला कोई नजर नहीं आया। अब सद्भाग्य से तेरी शरण मिली हे इसलिये प्रार्थना करता हूँ कि तू ही मेरा दुख मिटा। भगवान् तू ही दुखनिकदन ह। तेर साथ मेरा सबध हे। मैंने तुझे दुखनिकदन भवभयभजन दीनदयालु आदि विरुद दिये हैं। इसलिए मेरी आशा पूरी करो। मेरी चिन्ता का नाश करो।

परमात्मा के प्रति हमारी यह माग है। मगर यह देख लो कि यह माग सच्ची है या नहीं? माग पेश करने के बाद ऐसा न हो कि वह आपको सुख देने लगे और तुम सुख न लेकर दु ख ही लेने लगो। इसलिए कहता हूँ– पहले अपने दु ख को समझ लो। निश्चय कर लो कि वास्तविक दु ख क्या है? यह समझे बिना सुख के बदले कही दु ख न लेने लगना।

पहले कहा जा चुका है कि ससार मे प्रत्येक प्राणी के दु ख अलग अलग है। किसी को तन का दु ख है, किसी को धन सबधी दु ख है, किसी को स्वजन सबधी दु ख है और किसी को मानापमान सबधी दु ख है। इस प्रकार सबका दु ख अलग–अलग है। स्त्रियो के दु ख पुरुषो के दु ख से भिन्न हैं। बल्कि कई चीजे ऐसी भी मिलेगी जो पुरुषो को सुखरूप हैं और स्त्रियो को दु खरूप प्रतीत होती है। किसी से स्त्रियो को सुख मिलता है और पुरुषो को दु ख होता है। नवीन चूडी और साडी पहनकर स्त्रिया खुशी मे फूली नही समाती लेकिन पुरुष को पहना दिया जाय तो उसे दु ख प्रतीत होगा। इस प्रकार सबके दु ख भिन्न भिन्न है। मगर यह सब कल्पना की करामात है। कल्पना ने ही पदार्थो मे दु ख का रग भर दिया है। ये वास्तविक दु ख नही है। लोगो ने इन दु खो के आगे वास्तविक दु ख को भुला दिया है और ऊपरी बातो मे ही जबर्दस्ती दु ख मान लिया है। चूडी और चूनडी के अभाव मे स्त्री क्यो दुखी होती है? इसका कारण यही है कि उसे वह प्यारी लगती है। पुरुष को वह प्रिय नही है। अतएव उनके अभाव मे उसे दु ख नही होता। इस प्रकार सभी ने अपनी–अपनी कल्पना के अनुसार दु ख की सृष्टि कर ली है। ये सब दु ख कल्पना के ही पुत्र हैं।

दु ख दूर करने की प्रार्थना मे मैं भी शामिल हुआ हूँ। मगर यह ऊपरी और कल्पना–प्रसूत दु ख मिटाने के लिए नही। अतएव हमे उस दु ख का विचार करना चाहिए जो सबके लिए मान्य हो, जिससे सभी प्राणी छूटना चाहते हो, जिससे छूटने पर सब दु खो का आत्यन्तिक नाश हो जाय और जिसके मिटे बिना ऊपरी दु खो के मिट जाने से भी कोई विशेष लाभ नही है।

चूडियो के लिए या नयी और सुन्दर चूनडी के लिए परमात्मा से प्रार्थना करना अज्ञान है। ऐसी प्रार्थना करने वाले या करने वाली ने परमात्मा की महत्ता नही समझी और न अपने दु ख को ही समझा है। परमात्मा से उस मूलभूत दु ख के विनाश की प्रार्थना करनी चाहिए, जो और किसी के मिटाये नही मिट सकता और जिसके मिटने पर ससार की असीम सम्पदा भी किसी

काम की नहीं रहती। जब तुम परमात्मा से ससार की कोई वस्तु मागते हो तो समझो कि दु ख मागते हो और दु ख मागने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करना क्या तुम्हे उचित मालूम होता है?

राजा की पहचान केवल छत्र और चवर से नहीं होती। छत्र चवर तो नाटक का एक पात्र भी लगा लेता है। क्या उसके प्रति राजोचित व्यवहार किया जाता है? उसे आप राजा मान लेते हैं? नही। अतएव राजा की सच्ची पहचान छत्र–चवर नहीं है। प्रजा का वह बडा दु ख जो उसकी सहायता के बिना नही मिट सकता, उसे मिटाने के लिए जो अपने प्राणो की बाजी लगा देता है, वही सच्चा राजा है। यही राजा की सच्ची कसौटी है। ऐसे प्रजाप्रिय राजा के समक्ष किसी दु ख को दूर करने की प्रार्थना करोगे? क्या तुच्छ और निस्सार चीज मागने के लिए उसके दरबार मे जाओगे? अगर ऐसा किया तो समझा जायेगा कि तुमने उसका महत्व ही नहीं समझा।

राजा के विषय मे तुम्हे मालूम है कि छोटी–छोटी बातो की माग उससे नहीं करनी चाहिए। तब परमात्मा जैसे तीन लोक के राजा के सबध मे यह बात क्यो भूल जाते हो? क्या परमात्मा को तुमने इसी योग्य समझा है कि उससे दालभात मागा जाय? ऐसा समझने वालो ने परमात्मा की महत्ता घटाई है, बढाई नहीं।

जो असली दु ख मन मे व्याप्त होता है, उसे मिटाना तो दूर रहा, सर्वसाधारण उस दु ख को जान भी नहीं सकते । मन के उस दु ख को मिटाने के लिये ही भक्तजन परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। अब देखना चाहिए कि मन में क्या दु ख है? किसी ने तुमसे कहा–में तेरा सिर काट लूगा । तेरी आख फोड दूगा या तेरी जवानी नष्ट कर दूगा या तेरे शरीर की सारी शक्ति खीच लूगा। तो यह सुनकर तुम को केसा दु ख होगा? अव इसका आशय यह हे कि जरा और मरण का दु ख अत्यन्त प्रवल हे। इसी दु ख को मिटाने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि–प्रभो! में अनादि काल से जरा और मरण के चक्कर मे पडा हूँ। अव में इनसे त्रस्त हो गया हूँ। ये दु ख मुझे सता रहे हें। तेरे सिवाय और किसी से ये दु ख नही मिट सकते। इन्ही दु खो का विनाश करने क लिए अनेक महापुरुषो ने ससार का सर्वश्रेष्ठ वैभव त्यागकर, राजपाट को छोडकर उस सयम की शरण ग्रही हे जिसके विना ये दु ख नहीं मिट सकते।

चल जाय। यही बात पर्युपण पर्व के सबध मे है। पर्युषण पर्व के अतिम दिन सवत्सरी को जो कार्य करना है, उसकी तैयारी के लिए एक सप्ताह का समय नियत किया गया है। सवत्सरी के दिन आत्मा को शान्त, कषायहीन, निर्विकार और स्वच्छ बनाया जाता है। इसके लिए विशेष अभ्यास की आवश्यकता है और इसी आवश्यकता की पूर्ति के हेतु एक सप्ताह का समय दिया गया है। इस एक सप्ताह मे समभाव का अभ्यास करके अथवा समभाव को विशेप रूप से जागृत करके आत्मा को शान्त, दान्त बनाया जाता है। अन्तकरण का कूडाकचरा, काम, क्रोध, माया, मोह आदि अन्तहृदय से निकाल फेकने के लिए यह सप्ताह है। जो मनुष्य सात दिन तक अभ्यास करने मे कमजोर रहेगा, वह उसके वाद अपनी कार्यसिद्धि मे भी कमजोर रहेगा। जो सात दिन मे पूरी तरह शिक्षा पा लेगा, वह अपने कार्य को साध लेगा।

भाद्रपद मास मे पृथ्वी सतापहीन हो जाती है। पृथ्वी की कठोरता गल जाती हे ओर उसमे मृदुता एव शीतलता आ जाती है। ऐसे शान्तिमय वातरण मे पर्युपण पर्व आता हे ओर मनुप्यो को प्रकृति की ओर इशारा करके मानो कहता– तुम भी अपने हृदय का सताप छोडो कठोरता तजो, मृदुता और शीतलता धारण करो। भाद्रपद मास मे नदिया वडे वेग के साथ एक भी क्षण रुके विना अपने पति सरित्पति समुद्र की ओर भागती दिखाई देती हे। उरी समय पर्युपण पर्व हमारे कानो मे कहता हे, एक समय का भी प्रमाद मत करो। (समय गोयम! मा पमायए) देखो नदी किस अनवरत गति से, तेजी के साथ सागर की ओर भाग रही हे। उसी प्रकार तुम भी अपने स्वामी–परमात्मा की ओर अनवरत गति से चलो। क्षण भर भी मत रुको । नदी बीच मे आने वाली चट्टान का जसे लाघकर आगे वढ जाती हे उसी प्रकार तुम भी समस्त विघ्नवाधाओ का लाघकर परमात्मा के पथ पर चढते चलो।

भाद्रपद मास म जव समस्त पृथ्वीतल हराभरा ओर प्रसादपूर्ण बन जाता है तो मयूर अपनी भापा मे और मेढक अपनी भाषा मे मानो परमात्मा की स्तुति करने लगते ह। उस समय पर्युपण पर्व हमे चेतावनी देता हे–ए मनुष्य! क्या तू इन तिर्यचो स भी गया वीता हे कि सार्थक और व्यक्त भाषा [illegible] प्रभु की विरुदावली का वखान नहीं करता ओर उच्च स्वर से [illegible] का उच्चारण नहीं करता? सारांश यह है कि पर्युपण [illegible] प्रकृति एक नवीन रूप लेती है।

पर्युषण पर्व शत्रु को मित्र बनाने का आदर्श उपस्थित करता है। चाहे आपका शत्रु अपनी ओर से शत्रुता का त्याग करे या नही, मगर आपको अपनी ओर से शत्रुता का त्याग कर देना चाहिए और हृदय को स्वच्छ करके उसे गले लगाना चाहिए। उस दिन प्राणी मात्र की मित्रता का अनुसधान करना चाहिए।

आप कह सकते है—जिन लोगो के साथ हमारा वैर वश—परपरागत है, उनके साथ मित्रता किस प्रकार की जाय? मगर पीढियो से वैर होता है, तो पीढियो से पेम भी होता है और क्या पीढियो का वैर मिटता नही है? मिटता न होता तो ज्ञानी पुरुष मिटाने का उपदेश क्यो देते? अगर आप धर्म की सचमुच आराधना करेगे और आपका अन्त करण शत्रु और तीव्र कषाय की वासना से रहित हो जायेगा तो प्राणो के ग्राहक पुरुष के प्रति भी आपको वैर भाव नही रहेगा। । उस समय सारी रचना बदल जायेगी । शत्रुता की परिभाषा दूसरी हो जायेगी । हृदय प्रेम से पूरित हो जायेगा। प्रेम से जो आनन्द होता है, वैर से नही हो सकता। सबको मित्र बनाना अपना धर्म है। किसी को वैरी बनाना या किसी के वैरी बनना धर्म नही है।

बहुत से लोग कहा करते है कि हम तो वैर छोडते है पर वह वैर नही छोडता। यह कथन भ्रमपूर्ण है। अगर आपके हृदय मे प्रेम की प्रबल भावना लहराने लगेगी तो उसके वैर की आग बुझे बिना रहेगी ही नही। वैर से ही वैर बढता है। आपके हृदय का वैर आपके शत्रु की वैराग्नि का ईंधन है जब उसे ईधन नही मिलेगा, तो वह आग कब तक जलती रहेगी? आज नही तो कल अवश्य बुझ जायेगी । इसके अतिरिक्त आप दूसरे की चिन्ता क्यो करते है? अगर आपको निश्चय हो गया है कि वैर भाव त्याज्य है और उससे सताप उत्पन्न होता है तथा आत्मा कलुषित होती है तो आपको त्याग कर ही देना चाहिए चाहे दूसरा त्याग करे या न करे। आप त्याग करेगे तो आपका कल्याण होगा। वह त्याग करेगा तो उसका कल्याण होगा। यह कोई सौदा नही है कि वह दे तो मै दू। अगर किसी की आत्मा अत्यन्त कलुषित है तो सम्भव है वह शीघ्र वैर न छोडे, तब तक आप भी अपना अकल्याण क्यो करते है? आपको निर्वैर बनकर अपनी आत्मा को शान्त और पवित्र बनाना ही चाहिए।

वैर भूलकर किस प्रकार अपने अपराध की आलोचना करनी चाहिए, [illegible] के लिए एक उदाहरण लीजिए।

भारत के प्राचीन राजाओ मे राजा भोज वहुत प्रसिद्ध हैं। बहुत कम भारतवासी ऐसे मिलेगे जो भोज के नाम से अपरिचित हो। राजा भोज के समय मे अनेक अच्छी बाते होती थी। भोज स्वय अच्छे कामो मे भाग लेता था और किसी को दु ख नहीं देता था। भोजराज की मृत्यु होने पर एक विद्वान् ने कहा है–

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिता. खण्डिता. सर्वे भोजराजे दिवं गते।।

अर्थात् आज भोजराज का स्वर्गवास होने पर धारा नगरी निराधार हो गई, सरस्वती का सहारा न रहा और सब पडित खडित हो गये।

इस कथन से स्पष्ट है कि राजा भोज अपनी प्रजा का प्रेम से पालन करता था और विद्या का वडा ही अनुरागी था। वह विद्वानो का खूब आदर सत्कार करता था। भोज स्वय विद्वान् था, अत विद्या और विद्वानो की कद्र करना उसके लिए स्वाभाविक वात थी। राजा भोज दयालु और गुणवान् था।

भोज के राज्य मे एक गरीव ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण निर्धन होने पर भी स्वाभिमान का धनी था। जो कुछ मिलता उसी पर वह अपना निर्वाह कर लेता था। सचय के उद्देश्य से वह कभी किसी से कुछ न मागता और न अपना अपमान कराता। वह भिक्षा पर अपना निर्वाह करता था। 'ब्राह्मण को धन केवल भिक्षा।' उसके घर मे तीन प्राणी थे–वह, उसकी माता और पत्नी। पर्याप्त भिक्षा न मिलने पर कभी कभी उन्हे भूखा भी रहना पडता था।

एक दिन की वात हे कि ब्राह्मण बहुत घूमा परन्तु उसे भिक्षा न मिली। घूमते–घूमते वह थक गया और भूख उसे सता रही थी। अन्त म उसने विचार किया–सभव हे स्त्री ने कुछ वचा रक्खा हो तो इस समय तो वह खिलाएगी ही। फिर देखा जायेगा। इस प्रकार विचारकर वह घर लोट आया। उसकी माता ओर पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी ओर सोच रही र्थी कि वह कुछ लावे तो वनाए खाए और खिलाए । मगर ब्राह्मण को खाली हाथ आया देखा, तो उन्हे वडी निराशा हुई । वह ब्राह्मण से कुछ भी न वोलीं। ब्राह्मण घर मे आया। उसने अपनी पत्नी से कहा लाओ कुछ हा तो खाने को दो।

पत्नी–कुछ लाए हा तो वना दू। घर म तो कुछ भी नहीं है।

ब्राह्मण–गज लाता हूं। आज नहीं मिला तो स्त्री होकर एक दिन का भजन भी नहीं द सकती?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसे क्रोध आ गया। उधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। ब्राह्मणी ने कहा कभी एक दिन से ज्यादा का भोजन लाए होओ, तो मुझसे कहो कि सँभाल कर क्यो न रक्खा? लाकर देना नही और फिर ऊपर से मागना तथा तकरार करना, यह भी भला, कोई बात है? अगर खिलाने की हिम्मत नही थी तो विवाह किये बिना ही कौन काम अटकता था?

ब्राह्मण तपा हुआ आया था। उसने क्रोध से तमतमाते हुए कहा—शखिनी! मेरे घर तेरे जैसी स्त्री आई तो अब खाने को कैसे मिल सकता है? कोई सुलक्षणा स्त्री आती तो मैं कमा लाता। मगर तू ऐसी अभागिनी मिली है कि मैं भटकते—भटकते हैरान हो गया पर चार दाने अन्न भी न मिल सका। तू अर्धांगिनी है। तुझे भी कुछ तो करना चाहिए था। मेहनत मजदूरी करके भी कुछ रखना चाहिए था। स्त्री को यह तो सोचना चाहिए था कि कदाचित् कोई अतिथि आ जाय तो कैसी बीतेगी!

ब्राह्मणी और गरम हो गई। वह कहने लगी—बस, बहुत हो गया। अब जीभ बद कर लो । धिक्कार है उन सासूजी को, जिन्होने तुम्हे जन्म दिया है! मैं अभागिनी हूँ तो अभागिनी ही सही, तुम्हारी माता तो भाग्यशालिनी हैं। उनके भाग्य से ही कुछ मिला होता। दरअसल अभागिनी मैं नही, तुम्हारी माता है, जिन्होने तुम सरीखा सपूत पैदा किया जिसके पीछे मैं भी कष्ट पा रही हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—तेरे मा—बाप ने तुझे तो खूब पैदा किया है, जो अपनी सासू के लिए ऐसे शब्द बोलती है! निर्लज्जा को लज्जा छू भी नही गई।

यह कहकर ब्राह्मण अपनी पत्नी को पीटने लगा। ब्राह्मणी चिल्लाई—हाय, बचाओ, दौडो, कोई! उसके सिर से खून बहने लगा। स्त्री की पुकार सुनकर वहा पुलिस आ गई । पुलिस ने पूछताछ की । ब्राह्मणी कहने लगी—देखो—मुझे इतना मारा है कि सिर से खून बहने लगा है। लडाई का कारण यही है कि घर मे कुछ है नही और खाने को मागते हैं! इस राज्य मे ऐसे भी आदमी रहते है! घर मे दाना नही और विवाह करके स्त्री को पकड लाते है और फिर उसकी मिट्टी पलीत करते हैं। उन्ही से पूछ लो, लडाई का और कोई कारण हो तो।

ब्राह्मण सोचने लगा—बुरा हुआ। मैंने वृथा ही क्रोध मे आकर इसे मारा। इज्जत जाने का मौका आ गया।

पुलिस ने कहा इसमे स्त्री का कोई अपराध नही। यह पुरुष का ही दोष है। ब्राह्मण! तुमने स्त्री पर अत्याचार किया है। तुम गिरफ्तार किये जाते हो।

ब्राह्मण गिरफ्तार होकर कोतवाल के पास पहुचाया गया। ब्राह्मण सोचने लगा क्रोध मे आकर ब्राह्मणी को मार तो दिया, मगर अब कहूगा क्या? पुलिस के सामने अपनी कष्टकथा कहने से लाभ ही क्या है। सिवाय लज्जित होने के और क्या होगा? चाहे जो हो, राजा के सिवाय और किसी को कुछ भी उत्तर न दूगा।

कोतवाल ने कहा—तुम अपना बयान लिखाओ। तुमने क्या किया है और किस अपराध मे गिरफ्तार किये गये हो?

ब्राह्मण बोला—मै महाराज भोज को छोडकर और किसी के सामने बयान न दूगा। कोतवाल ने बहुत डाट बतलाई, मगर ब्राह्मण टस से मस नही हुआ। उसने बयान नही दिया। कोतवाल ने सोचा—ब्राह्मण बडे जिद्दी होते है। इससे जिद्द न करके महाराज के सामने पेशकर देना ही ठीक होगा। उसने ब्राह्मण के कथनानुसार राजा के सामने ही ब्राह्मण को पेश करने का निश्चय किया।

पहले जमाने मे आजकल की तरह मुकदमे की तारीखो पर तारीखे नही पडती थी। मामला मौखिक सुनकर चटपट फैसला दे दिया जाता था। आजकल का न्याय बडा महगा ओर विचित्र हे। उस समय का न्याय सस्ता ओर सीधा था।

दूसरे दिन राजा भोज अपनी राज—सभा मे आये। सिहारान पर आसीन हुए। क्रम से सव अपराधी उनके सामने पेश किये गये। सयोगवश उस दिन पहला नवर उस ब्राह्मण का ही था। राजा भोज ने ब्राह्मण के विपय मे पूछा—यह कोन हे? इसने क्या अपराध किया हे? सरकारी शख्स न कहा—यह ब्राह्मण हे । इसने अपनी स्त्री को इतनी निर्दयता से पीटा है कि उसके सिर मे खून आ गया। अगर स्त्री को दरवार मे पेश किया जाता तो न जाने क्या क्या कहती। परन्तु स्त्री को दरवार मे लाने की आज्ञा नही हे। इसलिए उसे पेश नही किया गया। वह कहती थी—यह ब्राह्मण कुछ लाकर तो दता नहीं हे आर खाने को मागता हे! खाना न मिलने पर इसने स्त्री को वुरी तरह पीटा ह।

राजा—ब्राह्मण! क्या यह बात ठीक हे?

ब्राह्मण–महाराज! और सब ठीक है, एक बात गलत है। ये तुझे ब्राह्मण बता रहे है। पर मैं ब्राह्मण नही, चाण्डाल हूँ।

कोतवाल–हुजूर! यह आपके सामने भी झूठ बोलता है। यह ब्राह्मण है और अपने को चाण्डाल प्रकट करता है।

ब्राह्मण–महाराज! ये लोग ऊपर की बाते देखकर मुझे ब्राह्मण कहते है। भीतर की बात का इन्हे पता नही। मै असली भीतरी बात कह रहा हूँ।

सत्य नास्ति तपो नास्ति नास्तीन्द्रियविनिग्रह ।
सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल लक्षणम् ।।
सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म, ब्रह्म इन्द्रियविनिग्रह ।
सर्वभूतदया ब्रह्म, ह्येतद् ब्राह्मणलक्षणम् ।।

महाराज! सत्य का अभाव, तप का अभाव, इन्द्रियनिग्रह का अभाव और भूतदया का अभाव चाडाल का लक्षण है। जिसमे सत्य हो, तप हो, इन्द्रियनिग्रह हो, पाणियो की दया हो, वही ब्राह्मण कहलाता है।

जो ब्राह्मण होगा, वह आपके समक्ष अभियुक्त बनकर नही आएगा। मुझ मे चाडाल के लक्षण मौजूद है, अतएव मैने अपने आपको चाडाल प्रकट किया है।

मित्रो! आप दूसरो पर ही यह लक्षण घटाने का प्रयत्न मत करो। शास्त्र मे श्रावक को भी ब्राह्मण कहा है। आप श्रावक होने का दावा करते है, तो यह लक्षण अपने ही ऊपर घटाने का प्रयत्न करना।

ब्राह्मण ने कहा–जिसमे ब्राह्मण के ये लक्षण मौजूद है, वह ऊपर से चाडाल होने पर भी वास्तव मे ब्राह्मण है। जिसमे चाडाल के लक्षण पाये जाते है वह ऊपर से ब्राह्मण होने पर भी भीतर से चाडाल ही है।

किसी समय ब्राह्मणो की बहुत प्रतिष्ठा थी और उसका कारण उनका सदाचार था। आज यह स्थिति नही रही। आजकल के कई ब्राह्मण तो एक ही कन्या की दो जगह सगाई कर देते है और दोनो जगहो से रुपये ऐठ लेते हैं। एक जगह कन्या देना ठहराकर उसे दूसरी जगह देना ठहरा लेना अन्याय की हद है। यह घोर अनीति है। सच्चा ब्राह्मण ऐसा घोर दुष्कर्म कदापि नही कर सकता। कन्या बेचना महापाप है और जब ब्राह्मण ही यह महापाप करने लगेगे तो दूसरे क्या नही करेगे?

मेरे पास एक दायमा (?) ब्राह्मण सज्जन एक प्रार्थना पत्र लेकर आये थे। उसमे यह था कि हमारी जाति मे लडकी के बदले रुपया न लेने का रिवाज था लेकिन अब बहुत से लोग इस रिवाज को भग करके रुपये

लेने लगे है। इत्यादि! किन्तु ऐसे मामले मे मै क्या कर सकता था? मेरा अधिकार सिर्फ कहने का है, इसलिए कहता हूँ कि कन्या के बदले रुपया लेना महापाप है और इस तरह का रुपया लेने वाले का कभी भला होते नही देखा जाता।

एक आदमी के पाच लडकिया और एक लडका था। उसने पाचो लडकियो के भरपूर रुपये लिये, फिर भी लडका कुवारा रह गया, और उसके वश का नाश हो गया। लडकियो के रुपये लेने पर भी यह परिणाम निकला! ऐसे ऐसे परिणाम देखते हुए भी लोग लालसा नही छोडते और यहा तक जघन्य कार्य करने लगते हैं कि एक कन्या की दो जगह सगाई कर देते हैं। आर्यजाति, जो ससार मे अद्वितीय, उन्नत आदर्श वाली और धर्मपरायण समझी जाती हे, यह नैतिक पतन देखकर किसे मानसिक सताप न होगा।

मेरा उद्देश्य ब्राह्मणो पर आक्षेप करना नही है। हमे भी ब्राह्मण ज्यादा प्रिय हें। हमारे गणधर इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण ही थे, लेकिन सत्य, दया आदि ब्राह्मणोचित गुण न होने पर भी केवल ब्राह्मणी की कूख से जन्म लेने के कारण ही ब्राह्मण कहलाने वालो और अनार्योचित आचरण करने वालो को क्या कहा जाय? जिस देश मे छह करोड ब्राह्मण रहते हैं और एक बहुत बडी सख्या मे साधु रहते हैं उस देश का पलडा आज इतना हल्का क्यो बना हुआ है? इस प्रश्न का समाधान करने चलोगे तो ऐसे ही कारण प्रतीत होगे । ऐसे ही कारणो से भारत की नोका डूब रही है। लोगो ने अपने उज्ज्वल चरित्र को भुला दिया है ओर धर्म एव नीति से च्युत होते जा रहे हैं। मित्रो! अपने प्राचीन पूर्वजो के निष्कलक यश की रक्षा करो। उत्तराधिकार मे मिले हुए गोरव को बढाकर सपूत कहलाओ, जिस से भविष्य की सतान भी तुम्हारे ऊपर गर्व कर सके। तुम्हारे पूर्वजो ने तुम्हे जो प्रतिष्ठा इस विश्व मे दिलाई हे, क्या वह तुम अपनी सन्तति को नही दिला सकोगे? अगर न दिला सके तो सपूत नही कहला सकोगे। सपूत बनने के लिए पाप से डरो नीति को मत छोडो, धर्म को जीवन मे एकरस कर लो। ऐसा न किया तो कुदरत सजा देगी ही।

श्रीकृष्ण ने यादवो से जुआ, परस्त्री लोलुपता और मदिरापान छोड देने को कहा था। जेनकथा के अनुसार कृष्णजी ने भगवान् अरिष्टनेमि की वाणी सुनकर ऐसा कहा था ओर भागवत आदि के अनुसार भावी देखकर कहा था। कुछ भी हो यह तो निश्चित हे कि उन्होने यादवो को चेतावनी दी थी। उन्होने कहा था--मैं स्वय यदुवश मे जन्मा हूँ। मैंने तुम लोगो की रक्षा की हे लेकिन मेरे द्वारा ही सदा तुम्हारी रक्षा और पालन पोषण होगा यह

मत समझो। इस भ्रम मे रहोगे तो बुरे दिन देखने पडेगे। अगर तुम तीन बाते छोड दोगे तो मै तुम लोगो का रक्षक और कल्याणकर्त्ता हूँ। अगर तीन बाते न छोडोगे तो आपस मे ही मूसलो से सिर फोडकर मर जाओगे। वे तीन बाते ये हैं—मदिरापान, द्यूत और परस्त्री सेवन।

यो ये तीन बाते साधारण ही थी, फिर भी यादवो ने कृष्ण की बात नही मानी। उन्होने मदिरापान किया, जिससे वश का नाश हो गया।

आप लोगो मे कोई दारू तो नही पीता? आजकल कई ओसवाल कहलाने वाले भी दारू पीने लगे हैं। मगर स्मरण रक्खो, दारू पीने वालो की कृष्ण भी रक्षा न कर सके, तो औरो की क्या चलाई है। अगर कुसगति मे पडकर कोई पीने लगा हो तो उसे अब त्याग देना चाहिए।

कृष्णजी ने दूसरी बात जुआ छोड देने की कही है। जुए का व्यसन मनुष्य को कितनी बडीबडी मुसीबतो मे डाल देता है, यह कौन नही जानता? युधिष्ठिर जैसे शूरवीर और प्रतापी महापुरुष की जो दुर्दशा जुए ने की, उसे सभी जानते है । फिर तुम किस खेत की मूली हो? जुआ खेलकर अपनी प्रतिष्ठा गँवाना, अपनी सम्पदा से हाथ धो बैठना और फिर अनेक पापो मे प्रवृत्त होना, किसी भी दशा मे वाछनीय नही हो सकता। आजकल जुए के अनेक सभ्य रूप प्रचलित हो गये हैं। उन सबसे बचना विचारशील पुरुषो का कर्त्तव्य है।

कृष्ण ने तीसरी बात परस्त्रीत्याग की कही थी। इस विषय मे अधिक क्या कहा जाय? कुलीन पुरुषो के लिए परस्त्रीगमन एक महान् कलक रूप है। कुलीनता के नाते भी इस पाप से बचना आवश्यक है। इससे बचने से लोक और परलोक दोनो सुधरते हैं।

कृष्णजी क्या जैन और क्या वैष्णव—सभी के महापुरुष है। वे पुरुषोत्तम और भावी तीर्थंकर हैं। सच्ची और हितकर बात तो एक अदने आदमी की भी मानी जाती है, फिर वे तो महापुरुष थे। उनकी बात मानने मे हित ही है।

जिसमे ये तीन बाते सिद्ध हो उसका भव भ्रमण मिट गया समझो। इनके त्याग से सभी दृष्टियो से जीवन पवित्र बनता है। आप लोगो को भी इन तीन बातो का त्याग कर देना चाहिए। मगर यादवो की तरह मत करना। यादवो ने कृष्ण के सामने तो स्वीकार कर लिया था कि हम इन तीनो का त्याग कर देगे मगर दर असल त्यागा नही। इसी प्रकार आप भी कदाचित् सामने कह दे और फिर त्याग न करे। मुझे आपने अपना गुरु माना है, परन्तु

इन तीन बातो के न त्यागने पर कृष्ण भी यादवो की रक्षा न कर सके, तो मैं क्या कर सकता हू? साराश यह है कि अपने धर्म पर निश्चल हुए बिना कल्याण नही हो सकता।

जिसके हृदय म गुणो के प्रति राग होगा, जो अपनी आत्मा को निर्दोष बनाना चाहेगा और जिसने पवित्र जीवन बिताने का सकल्प किया होगा, वह भूल से, उत्तेजना से या लालच से किये हुए अपराध को स्वीकार करने मे आगा–पीछा नही करेगा। सरल हृदय व्यक्ति को अपना दोष उसी प्रकार चुभता रहता है जैसे शरीर मे काटा। और जैसे काटा निकले बिना मनुष्य को चैन नही पडता, उसी प्रकार अपना दोष त्यागे बिना पवित्र हृदयी पुरुप को शान्ति नही मिलती। विवेकशील पुरुप भली–भाति जानता है कि आन्तरिक विकार का शल्य अधिक और दीर्घकाल तक कष्टदायी होता है।

वास्तव मे अपराध स्वीकार कर लेना बडी बात है। उस ब्राह्मण ने अपना अपराध स्वीकार करके कहा 'मै ब्राह्मण नही, चाडाल हू।' आप भी अपने अपराध छिपाने की चेष्ट मत करो, वरन् परमात्मा के आगे प्रकट कर दो।

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा दग रह गया। उसने सोचा–यह ब्राह्मण कितना स्पष्ट वक्ता और आत्मबली है! मगर राजा को इस मामले की जड देखनी थी। अत राजा ने कहा–'तुम चाहे ब्राह्मण होओ चाहे चाडाल होओ। जो अपराध करेगा, उसे दण्ड मिलेगा ही। अब यह बतलाओ कि तुमने अपनी स्त्री को क्यो मारा?'

ब्राह्मण पढा लिखा था। उसने राजा से कहा–'राजन्! मेरी बात सुन लीजिए ओर फिर जिसका अपराध हो उसे दड दीजिए।'

राजा–हा सुनाओ क्या कहना चाहते हो? ब्राह्मण–

अम्बा तुष्यति न मया न तया, साऽपि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद् राजन्! कस्य दोषोऽयम्।।

महाराज! आप दोष का निर्णय करे–कि वास्तव म किसका दोष है? और जिसका अपराध सिद्ध हो उसे दण्ड द। हम घर म तीन प्राणी है–म मेरी माता और मेरी पत्नी । पुत्र कैसा भी हो मगर माता का धर्म उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना है। कहावत है–'पूत कपूत हो जाता है मगर माता कुमाता नही होती। मगर मेरी माता मेरी रक्षा तो दूर रही मीठ शब्द भी नहीं बोलती। कभी मुझ बेटा कहकर सबोधन भी नही करती वरन स्नेह के बदले गालिया देती है। किसी किसी घर मे मा बेटे म स्नेह नही होता तो

सास–बहू मे ही प्रेम होता है, मगर मेरे घर यह भी नही है। मा, मेरी पत्नी को गालिया तो देती है, पर कभी मधुर वचन नही कहती। यह सुनकर आप सोचोगे कि यह माता का अपराध है, मगर बात यही खत्म नही होती। अनेक स्त्रिया ऐसी होती है कि सास की जली कटी बाते सह लेती है–शान्ति के साथ सुन लेती है लेकिन मेरी स्त्री, माता की आधी बात भी नही सुन सकती। वह एक के बदले चार सुनाती है। अपनी बातो से उसे शान्त तो करती नही, उल्टी जला देती है। कई जगह सास बहू मे प्रेम नही होता। मगर पति पत्नी मे प्रेम होता है। लेकिन मेरे घर यह भी नही है । मुझ मे और मेरी पत्नी मे कितना प्रेम है, यह बात तो इसी मामले से जानी जा सकती है। अनेक माताए कैकेयी के समान होती है, मगर उनके पुत्र रामचन्द्र सरीखे होते है । मगर मै ऐसा अभागा हू कि अपनी माता को जननी तक नही कहता, सदा अवज्ञा ही करता रहता हूॅ। अपशब्दो की भी कभी कभी बौछार कर देता हूॅ। राजन् ! आप ही निर्णय कीजिए, यह सब किसका अपराध है? जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।

राजा भोज बडा बुद्धिमान् था। उसने कहा–'मै सब समझ गया।' फिर राजा ने भडारी को आज्ञा दी–'इस ब्राह्मण को एक हजार मुहरे दे दो।' राजा की आज्ञा सुनकर भडारी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । सोचने लगा कि बात क्या हुई? ब्राह्मण ने अपराध किया है–अपनी स्त्री का खून बहाया है और महाराज उसे यह इनाम दे रहे हैं। अपराध की सजा एक हजार मुहरे इनाम ।

भडारी की मुखमुद्रा पर विस्मय का जो भाव उदित हुआ, उसे पहचान कर राजा ने कहा–तुम्हे क्या शका है? क्यो आश्चर्य हो रहा है? स्पष्ट कहो न।

भडारी बोला–स्त्री को पीटने के बदले इस ब्राह्मण को एक हजार मुहर मिलने की बात नगर मे फैल जायेगी तो बेचारी स्त्रियो पर घोर सकट आ पडेगा और राज्य का खजाना खाली होने का अवसर उपस्थित हो जायेगा। सभी लोग अपनी अपनी स्त्री को पीटकर इनाम लेने के लिए आ खडे होगे।

राजा ने कहा–'भडारी, तुम्हारी बात समझ मे नही आई। जो आदमी खाता–पीता सुखी है वह अपनी स्त्री को मारेगा, तो उसे दड देने मे जरा भी रियायत नही की जायेगी चाहे वह मेरा पुत्र ही क्यो न हो। ऐसे अत्याचारी का पक्ष मै कदापि नही लूगा। मै स्त्री को मारने के बदले इसे मुहरे नही दिला

रहा हूँ, किन्तु इसे दूसरा दु ख है। उस दु ख को दूर करने के लिए ही मुहरे दिलाता हूँ। दड और कानून, अन्याय और अत्याचार रोकने के लिए है, बढाने के लिए नही। अगर इस ब्राह्मण को कैद कर दिया जाय तो इसकी इज्जत जायेगी, यह निर्लज्ज बन जायेगा और अपराध का जो मूल कारण है वह दूर नही होगा। अभी मा, बेटा और स्त्री लडते झगडते भी एक साथ रहते हैं। इसे कारागार मे डाल देने से सब तितर बितर हो जाएगे। अभी तक किसी ने किसी को त्यागा नही है, मगर कैद की हालत मे एक दूसरे को छोडकर भाग जायेगे। इसके अतिरिक्त, इसे सजा देने का अर्थ इसकी वृद्धा माता और गरीब पत्नी को सजा देना होगा। ऐसा करने से अनेक प्रकार की बुराइया फैल जायेगी।'

'भडारी! तुम इस ब्राह्मण की बुद्धि पर विचार करो। इसने कही बयान नही दिया और यहा आया है। यह जानता है कि कानून के शब्दो को ही सब कुछ समझकर उन्ही से चिपटे रहने वाले लोग मेरा दु ख नही मिटा सकते। वे न्याय की आत्मा को नही देख सकते। फिर उनके सामने दुखडा रोकर क्यो अपनी इज्जत गवाऊ? असल मे इसके अपराध का कारण दरिद्रता है। मैंने मुहरे देकर उस दरिद्रता को ही दण्डित किया है। मेरी समझ मे राजा का यही धर्म है। राजा को अपराध के मूल कारणो का विचार करना चाहिए और जिन कारणो से लोग अपराध मे प्रवृत्त होते है, उनका निवारण करना चाहिए। रोग की ऊपरी औषध करना ही पर्याप्त नही है, मगर रोग के कारणो को दूर करना ही महत्वपूर्ण बात है।'

आजकल दरिद्रता का दु ख बेहद बढ गया है। बी ए और एम ए पास करने वालो को इस दु ख के मारे फासी खाकर मरना पडता है। उन्हे नौकरी नहीं मिलती और दूषित शिक्षापद्धति के कारण वे मेहनत मजदूरी करना मरने से भी अधिक कष्टकर समझते हैं। भारत का राज्य अगरेजो के अधीन है। वे सात समुद्र पार बैठकर शासन करते हैं। प्रजा के प्रति उन्हे अनुराग नहीं आत्मीयता नही, सहानुभूति नही। प्रजा को कगाल बनाने वाली नयी-नयी योजनाये और कानून गढे जाते हैं और बुरी तरह देश को चूसा जा रहा है। किसी समय जो देश सब भाति से समृद्ध था धन-धान्य से परिपूर्ण था आज उसकी इतनी गई गुजरी हालत हो गई है कि थोडे से पैसो के लिए माता अपने पुत्र को बेच देने के लिए उद्यत है। दरिद्रता के इस घोर अभिशाप ने भारतवासियो का जीवन कितना दीन, हीन जघन्य और कलुषित बना दिया है। यह देखकर किसे मनस्ताप न होगा। कहा हैं आज राजा भोज

सरीखे प्रजावत्सल नृपति, जिन्हे पजा के कष्टो का सदा ध्यान रहता था और जो पजा की भलाई मे ही अपने राज–पद की सार्थकता मानते थे। प्राचीन काल के भारतीय राजा, प्रजा के सरक्षक थे। सम्पूर्ण राज्य एक बडा परिवार था और राजा उसका मुखिया था। इसी कारण भारती प्रजा राजा को अपने पिता के तुल्य मानती थी। राजा और प्रजा मे कितना मधुर सम्बन्ध था उस समय। आज यह सब भूतकाल का सपना बन गया है। प्रथम तो आजकल ससार से राजतत्र ही उठता जा रहा है और प्रजा अपने अधिकार मे शासन सूत्र ग्रहण करती जा रही है। जहा कही राजतत्र शेष है, वहा राजा और प्रजा मे भयकर सघर्ष ही दिखाई देता है। इसका प्रधान कारण यही है कि राजा अपने उत्तरदायित्व से गिर गये। उन्होने अपने को प्रजा का सेवक न समझकर ईश्वर द्वारा नियुक्त स्वच्छद भोग का पुतला समझा, प्रजा को चूसना और विलास करना ही अपना ध्येय बना लिया। फल यह हुआ कि राजा और प्रजा के हित परस्पर विरोधी बन गये। जहा हित मे पारस्परिक विरोध होता है और दूसरे के हित का घातकर अपना हित साधन करने की प्रवृत्ति होती है वहा सघर्ष अवश्यम्भावी है। यही राजा प्रजा के सघर्ष का कारण है। अर्वाचीन इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि विजय प्रजा पक्ष के भाग्य मे है। आखिर प्रजा की ही विजय होगी। इस सत्य को समझकर राजा लोग समय रहते सावचेत हो जाए, तो इसमे उन्ही की भलाई है।

राजा भोज प्रजारजन करने के कारण सच्चा राजा था। प्रजा के दुख–दर्द को समझना और उसे दूर करना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य था। यही उसका राजधर्म था। प्रजा उसे पुत्र के समान प्रिय थी, इसलिए वह पिता के समान प्रजा का आदरणीय था। उसने ब्राह्मण के कष्टो पर सहृदयता से विचार किया और उन्हे मिटा दिया।

भडारी का भ्रम भग हो गया । वह मन ही मन भोज की प्रशसा करने लगा। उसने एक हजार मुहरे लाकर ब्राह्मण के सामने रख दी।

राजा ने ब्राह्मण से कहा–जिसका अपराध था, उसे दड दिया गया है। लेकिन इस काड की पुनरावृत्ति हुई तो भारी दण्ड दिया जायेगा।

ब्राह्मण ने कहा–महाराज! आपके उचित निर्णय की प्रशसा करने के लिए मेरे पास शब्द नही हैं। अब अपराध हो तो मेरे तन के टुकडे–टुकडे करवा दीजिएगा।

मुहरो की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर चला। घर मे सास बहू के बीच कलह मचा हुआ था। सास कहती थी–'तूने उससे ऐसा क्यो कहा?

उसकी बात सुन क्यो नही ली?' बहू कहती थी—उन्होने मुझसे ऐसा क्यो कहा? बस, इन्ही मूल सूत्रो पर भाष्य और टीकाये रची जा रही थी।

उसी समय थैली लिए ब्राह्मण आता दिखाई दिया। उसे देख दोनो शान्त हो गई। थैली देखकर उन्हे कुछ तसल्ली हुई। आज तक इतना अनाज भी कभी घर मे नही आया था। अतएव भीतर की मुहरे न दिखाई देने पर भी उनकी प्रसन्नता का पार नही था। ब्राह्मण जब निकट आ गया और थैली मे गोल-गोल चीजे मालूम हुई तो कहना ही क्या था! उन्होने सोचा—अगर इतने पैसे हो, तब भी बहुत है।

दोनो की लडाई बन्द हो गई। उनकी विचारधारा बदल गई। सासू बोली—'बेटे को वजन लग रहा होगा, मै थैली ले लू।' बहू ने कहा—'तुम बूढी हो, तुमसे क्या बनेगा! लाओ, मै ही लिये लेती हू।' सास ने उत्तर दिया—'तुझे चोट लगी है न! तुझसे कैसे बनेगा!' बहू मुस्करा कर बोली—'इस मार मे क्या रक्खा है! पति की मार और घी नाल बराबर होती है।'

आखिर दोनो थैली लेने दोडी। सास कहती थी—बहू को चोट लगी है, इसे बोझ मत देना। बहू कहती थी—सासजी बूढी है इन्हे तकलीफ मत देना। ब्राह्मण ने कहा—तुम दोनो ही कष्ट मत करो। यह बोझ मेरे ही सिर रहने दो। अपने अपराध का भार मुझे ही उठाने दो।

थैली लिये ब्राह्मण घर पहुचा। थैली खोली तो उसम पीली-पीली मुहरे देखकर सास-बहू दोनो चकित रह गई। प्रसन्नता का पारावार न रहा। भूखे घर मे अनाज के इतने दाने आते तो क्या कम थे! फिर ये तो मुहरे ठहरी।

मा कहने लगी—बेटा! मेरे जेसी कठोर-हृदया माता नही और तुझसा सपूत बेटा नहीं। म सदा सापिनी ही रही। कभी तुझ शान्ति न पहुचाई। माता का कर्त्तव्य बटे पर करुणा रखना हे मगर मेने कभी सीधी बात न की। तू धन्य ह बेटा जो मुझ छोडकर कही चला न गया नहीं ता ऐसी कर्कशा माता का पालन करने क लिए कोन रहता हे! अब तू मुझ क्षमा कर देना।

बहू ने कहा—यह सब मरा ही कसूर था! मैं घर म आई तभी स सब को कष्ट म पडना पडा। मन पति आर सास की सदेव अवज्ञा ही की है! मर जसी स्त्री जिस घर म हो वहा पाप न बढ तो क्या हो! सीता इतन इतन कष्ट सहन करक भी पति के साथ रही। पर मुझ दुष्टा न आप दोना का कभी प्रिय वचन भी न कहा! इतने पर भी आप दोना न मुझ त्यागा नहीं यह बड़ी [illegible] [illegible]। अब आप मेरे अपराध भूल जाय।

ब्राह्मण बोला—मा और प्रिये! तुम मुझे क्षमा करना। मेरा कर्त्तव्य तुम्हारा पालन करना था। सपूत बेटा वृद्धावस्था मे माता की सेवा करता है और सच्चा पति अपनी पत्नी की सदैव रक्षा करता है। मैने दोनो मे से एक भी कर्त्तव्य नही पाला। मैं तुम्हे भरपेट भोजन भी तो न दे सका! जो पुरुष अपनी जननी और पत्नी का पेट भी नही भर सकता, वह धिक्कार का पात्र है। मैंने भोजन नही दिया, इतना ही नही, वरन् भोजन मागा और उसके लिए झगडा भी किया। माता की सेवा करना दर किनार, उससे कभी मीठे शब्द तक न कहे। मेरे इस व्यवहार के लिए तुम दोनो ही मुझे क्षमा करना।

इस प्रकार तीनो ने अपनी—अपनी आलोचना की। ब्राह्मण ने कहा—अब भूतकाल की बात भूल जाओ। हम लोग दरिद्रता से पीडित थे, इसीलिये घडी भर पहले क्या थे और अब दरिद्रता दूर होते ही क्या हो गये! गुण गाओ राजा भोज का, जिसने अपना दु ख जान लिया और उसे मिटा दिया।

इस प्रकार ब्राह्मण का यह छोटासा कुटुम्ब शीघ्र सुधर गया। तीनो बडे प्रेम से रहने लगे। दरिद्रता के साथ ही कलह भी दूर हो गया।

ब्राह्मण अपना दु ख राजा के पास ले गया था। इसी प्रकार हम लोग क्या अपना दु ख भगवान् के पास ले गये है? मैने प्रार्थना मे कहा था—

श्री अभिनन्दन दु खनिकन्दन, वन्दन पूजन जोग जी।
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी।।

परमेश्वर के दरबार मे हम भी यह फरियाद लेकर उपस्थित होते हैं। लेकिन जिस प्रकार ब्राह्मण ने निखालिस हृदय से अपना अपराध स्वीकार किया था, उसी प्रकार हम लोगो को भी अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए। अपने अपराध को दबाने की चेष्टा करने से ईश्वर भी कुछ नही कर सकेगा। अतएव कृत पापो के लिए पश्चात्ताप करो। परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी बनो। आगे अपराध न करने का दृढ सकल्प करो। ऐसा करने से कल्याण होगा।

तपः—महाशक्ति

जय जय जिन ! त्रिभुवन धनी।

यह भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् के चरणो मे क्या भेट अर्पित कर सकता है? उसके पास और क्या है? उसे वाणी की जो शक्ति मिली है, उसी का उपयोग करके वह तल्लीनता के स्वर मे बोलता है—

जय जय जिन ! त्रिभुवन धनी।

हे तीन लोक के स्वामी! तेरा जय जयकार हो। हे प्रभो! समस्त जगत आधि—व्याधि की वेदना से पीडित है। मनुष्य लोक मे भी पीडा है, देवलोक मे भी पीडा है, और नरक मे तो निरन्तर हाहाकार मचा ही रहता है। तीनो लोको के जीवो का कल्याण चाहने के लिए मै त्रिभुवन धनी की जय चाहता हूँ। हे प्रभो! तेरी प्रार्थना करके नरक का जीव भी एकावतारी होकर मोक्ष जा सकता है, यहा तक कि तीर्थकर भी हो सकता है। जब नरक का नारकी जीव भी इतनी उन्नति कर सकता है तो हम मनुष्यो को हिम्मत हारने का कोई कारण नही है। मगर हम मनुष्य एक बडी भूल करते है। वह यह कि दुःख के समय हम चिल्लाहट मचाते हैं और सुख के समय तुझे भूल जाते हैं। यह भूल हमारी उन्नति मे बाधक है। जब तक यह भूल मिट न जाय तब तक उन्नति किस प्रकार हो सकती है?

एक तरह से मनुष्य व्यर्थ ही दुख दुःख चिल्लाया करता है व्यर्थ ही दुःख की चिन्ता करता है। वास्तव मे अभी तो मनुष्य को कुछ भी दुःख नही है। नरक के जीवो की तरफ देखने पर उनके दुःख से अपने दुःख की तुलना करने पर मालूम होगा कि हम मनुष्य कितने सुखी हैं? अतएव मनुष्य को दुःख से घबराना नही चाहिये वरन् यह सोचना चाहिए कि परमात्मा की प्रार्थना करके नारकी जीव भी सुखी हो सकते है तो हम सुखी बनने का प्रयास क्यो न करे? हम नारकी जीवो से गये बीते क्यो रहे?

अगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करोगे तो मालूम होगा कि जगत् की प्रचलित व्यवस्था मे दु ख का ही प्रधान स्थान है। दु ख ससार का व्यवस्थापक है। भूख का दु ख न होता तो खेती कौन करता? लज्जा जाने का दु ख न होता तो वस्त्र कौन पहनता और कौन बनाता? शीत, ताप और वर्षा का दु ख न होता, तो मकान बनाने की क्या आवश्यकता पडती? गर्मी से पैर न जलते या काटा लगने से कष्ट न होता, तो जूता कौन पहनता? इस प्रकार देखेगे तो प्रतीत होगा कि दु ख रूपी विशाल मशीन मे ही ससार की सारी व्यवस्था ढली है। कहावत है–आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। राजा का आविष्कार भी आवश्यकता ने ही किया है। दु खो से बचने के लिए राजा बनाया गया है।

दु ख न होता तो ससार की मशीन ही अस्तव्यस्त हो जाती। इतना ही नही, दु ख मनुष्य को महान् बलवान और तेजस्वी बनाता है। ससार के इतिहास मे जिन विशिष्ट शक्तिसम्पन्न पुरुषो के नामो का उल्लेख आता है, उनके जीवन–चरित्र पर एक सरसरी निगाह डालिये। आपको स्पष्ट प्रतीत होगा कि उनकी जो महत्ता है, उसका सारा रहस्य उनकी दु ख सहन करने की क्षमता मे है। उन्होने दु खो से जूझकर ही महत्ता प्राप्त की है। सुख के ससार मे विलास के कीडे उत्पन्न होते हैं और दु ख की दुनिया मे दिव्यशक्ति–सम्पन्न पुरुषो का जन्म होता है। वनवास के घोर दु ख सहकर ही रामचन्द्र ने मर्यादा– पुरुषोत्तम का पद प्राप्त किया। विविध प्रकार की दुस्सह वेदनाये झेलकर ही त्रिशलानन्दन भगवान् महावीर कहलाये। हसते–हसते प्राण देकर ईसा ईसाइयो के आराध्य बने। ससार क्षेत्र मे भी यही बात देखी जाती है। जगल–जगल मे भटककर ही राणा प्रताप इतिहास मे अमर हो सके और अग्रेजो की लाते, घूसे तथा कारागार के कष्ट सहने के पश्चात् मोहन दास गाधी 'महात्मा' पद के अधिकारी हुए है। इन्हे तथा अन्य असाधारण पुरुषो को दु ख ने जो महत्ता प्रदान की, वह कोई नही दे सका। दु ख के साथ सघर्ष करते करते आत्मा मे एक प्रकार की तेजस्विता का प्रादुर्भाव होता हे, अन्त करण मे दृढता आती है, हृदय मे बल आता है और तबीयत मे मस्ती आती है। दु खो को सहन करने मे विजय का मधुर स्वाद आता है, जिसका अनुभव सबको नही होता। अतएव दु ख हमारे शत्रु नही, मित्र है। शत्रु वह मानसिक वृत्ति है जो आत्मा को दु खो के सामने कायर बनाती है और दु खो से दूर भागने के लिए प्रेरित करती है। सत्वशाली पुरुष दु खो से बचने की प्रार्थना नही करता वरन् दु खो पर विजय प्राप्त करने योग्य बल की प्रार्थना करता है।

मित्रो! दु ख को आगे करके रोओ मत। हाय दु ख, हाय दु ख, मत चिल्लाओ। ससार मे अगर दु ख है तो उस पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। उसको मिटाने के उपाय भी हैं। अतएव रोना किसलिए? रोना तो स्वय ही एक प्रकार का दु ख है। इस दु ख की सहायता से ही क्या दु खो को जीतना चाहते हो? दु खो को जीतने का सच्चा उपाय परमात्मा की प्रार्थना करना है।

शास्त्र मे एक महाशक्ति का नाम आया है। जान पडता है, लोग उस महाशक्ति से अपरिचित हैं। मैं सक्षेप मे उस शक्ति का परिचय कराना चाहता हूँ। खेद का विषय है कि लोग अपने सच्चे शिक्षक को भूल गये हैं। सच्ची विद्या को भूल गये हैं और कृत्रिम विद्या के चक्कर मे पडे हैं, सच्ची विद्या को भूल जाने के कारण ससार ने उस महाशक्ति और उसको धारण करने वाले महापुरुषो का भी विस्मरण कर दिया हे। मैं यह बतलाने का प्रयत्न करूगा कि वे महापुरुष केसे हो गये हैं ओर उनमे कैसी महाशक्ति थी।

पोलासपुर नामक नगर मे विजयसेन राजा और श्रीदेवी नामक उसकी रानी थी। श्रीदेवी के उदर से एक महापुरुष का जन्म हुआ, जिनका नाम अतिमुक्त था ओर जो एवन्ता नाम से भी प्रसिद्ध हे।

पोलासपुरी नगरी को राजा, विजयसेन है नाम।
श्रीदेवी अंग ऊपन्यासरे, एवन्ता कुमार रे।।
एवन्ता मुनिवर, नाव तिराई बहता नीर मे।।
बेले-वेले करे पारणा गणधर पदवी पाया।
महावीर की आज्ञा लेने, गौतम गोसरी आया रे।।एवन्ता।।
खेल रह्या था खेल कुवरजी, देख्या गोतम आता।
घर घर माहे फिरे हींडता, पूछे इसडी बाता हो।।एवन्ता।।

इस कविता मे वतलाया गया हे कि एवता मुनि ने पानी मे नाव तिराई। मगर विचार कीजिए कि उन्होने किसकी नाव तिराई? अपनी खुद की या आपकी? अगर उन्होने अपनी खुद की ही नाव तिराई होती तो हम उन्हे क्या गाते हे? दूसरे की नाव तिरी तो हमे उसे गाने की क्या आवश्यकता हे? हमारे गाने का कारण तो यह हे कि उन्होने हम लोगो की नोका भी तिराई हे। अस्तु।

श्रीदेवी महारानी की कूख से एवन्ता का जन्म हुआ। पाच धायो की निरन्तर सार-सुश्रूषा से पलकर वे कुछ बडे हुए। टीकाकारो का कथन हे कि उस समय उनकी उम्र छह वर्ष की थी। लेकिन शास्त्र मे आठ वर्ष से कम

उम्र के बालक को मुनिदीक्षा देने का निषेध है । शास्त्र मे उनकी उम्र के विषय मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही है, अतएव इस सम्बन्ध मे कुछ निश्चित नही कहा जा सकता। हा, इतना तो स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय वे खेलते थे। विद्याध्ययन करने के लिए गुरुकुल आदि मे नही गये थे।

एवन्ताकुमार नहा धोकर और स्वच्छ वस्त्र पहन कर खेलने के निमित्त उस स्थान पर गये, जो बालको के खेलने के लिए ही बना था और जहॉ सस्कारी बालक खेला करते थे।

यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन काल मे बालक को कैसी शिक्षा दी जाती थी और आज कैसी शिक्षा दी जा रही है? पहले बालक आठ वर्ष की उम्र तक गुरुकुल आदि मे पढने नही भेजा जाता था। इस उम्र तक बालक खेल कूद मे ही पारिवारिक और कुलधर्म सबधी शिक्षा पाते थे। उनके कोमल मस्तिष्क पर किसी प्रकार का बोझ नही लादा जाता था। बालको की इन्दियो की शक्ति का स्वय विकास हो, ऐसा प्रयत्न किया जाता था। स्वय स्फुरण के द्वारा जब बालक की इन्द्रिया ग्रहणशील हो जाती थी और मस्तिष्क क्रियाशील बन जाता था, तब उसे विशेष शिक्षा दी जाती थी। आज की प्रचलित पद्धति ऐसी नही है । आज आठ वर्ष के बालक भी पोथियो के बोझ से दबा दिये जाते है। उनके दिमाग मे ऊपर से इतना ज्ञान भरने की चेष्टा की जाती है कि न पूछिये बात! इस समय का साधारण दर्जे का शिक्षक मानो यही मानता है कि बालक मे अपना निजी कुछ नही है और शिक्षक को अपना ही ज्ञान बालक के दिमाग मे घुसेडना है । यह एक भयकर भ्रम है। बाहर से ज्ञान ठूसना शिक्षा नही है। सच्ची शिक्षा है बालक की दबी हुई शक्तियो को प्रकाश मे ले आना, सोई हुई शक्तियो को जगा देना, बालक के मस्तिष्क को विकसित कर देना, जिससे वह स्वय विचार करने की क्षमता प्राप्त कर सके। मगर इस तथ्य को कम शिक्षक ही समझते है। इस पर भी एक बडी कठिनाई यह है कि सस्कार–सशोधन की ओर आजकल बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। आज की शिक्षा का लक्ष्य विद्वान् बना देना भर है, चारित्रशीलता से उसे कोई सरोकार नही। ज्ञान मे ही जीवन की कृतार्थता समझी जाती है। मगर जीवन के वास्तविक उत्कर्ष के लिए उच्च्य और उज्ज्वल चरित्र की आवश्यकता है। चारित्र के अभाव मे जीवन की सस्कृति अधूरी ही नही शून्य रूप है। यही कारण हे कि इस शिक्षा के फल–स्वरूप शिक्षित लोग धर्म से दूर जा पडते हे।

सन्तान के प्रति माता–पिता का क्या कर्त्तव्य है और उन पर कितना महान् उत्तरदायित्व है– यह बात माता पिता को भली–भाति समझ लेनी चाहिए। सन्तान का सुख ससार मे बडा सुख माना जाता है, तथापि सन्तान को अपने मनोरजन और सुख का साधन मात्र बनाकर उसकी स्थिति खिलौने जैसी बना देना उचित नही है। जो माता–पिता बालक के प्रति अपने उचित कर्त्तव्य का पालन नही करते, वे अपने उत्तरदायित्व से च्युत होते हैं। माता–पिता बालक को गुडियो की तरह शृगारकर और अच्छा भोजन देकर छुट्टी नही पा सकते। जिसे उन्होने जीवन दिया है, उसके जीवन का निर्माण भी उन्हे करना है और जीवन निर्माण का अर्थ है सस्कारसम्पन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियो का विकास करना। शक्तियो का विकास हो जाने पर सन्मार्ग मे लगे, सत्कार्य मे उनका प्रयोग हो और दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना भी माता–पिता का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए धार्मिक शिक्षा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

आजकल के माता–पिता, बालक को सरकारी स्कूल मे दाखिल करके ही छुट्टी पा लेते हैं और समझने लगते हैं कि हमारा बालक शिक्षित हो गया। वे यह नही देखते कि कुलधर्म, पितृधर्म और आत्मधर्म की ओर उसका कितना झुकाव हुआ हे?

बालको को खेल कितना प्रिय होता हे, यह सभी जानते है। खेल मे मस्त होकर वह खाना–पीना भी भूल जाता हे। एवन्ताकुमार भी बालको के साथ खेल रहे थे।

भारतीय खेलो द्वारा तत्त्व की बहुत कुछ शिक्षा दी जा सकती है। आजकल तो क्रिकेट आदि अग्रेजी खेल इस देश मे चल पडे हे, मगर पहले गेद का खेल यहा मुख्य रूप से खेला जाता था। अनेक महापुरुषो के जीवन–वृत्तान्त से ज्ञात होता हे कि उन्होने गेद का खेल खेला था। गेद के खेल को किसी समय इतना महत्व प्राप्त था कि उस पर कन्दुकशास्त्र बनाया गया था। अब भी बहुत कम लोग ऐसे होगे जिन्होने अपने बाल्यकाल मे गेद का खेल न खेला हो। मगर उससे जो शिक्षाये मिलती ह उनकी ओर शायद ही किसी न ध्यान दिया हो।

गद खलने वाल एक दूसरे के पास गद फकते रहते हैं तभी तक खेल चलता है। अगर एक आदमी गद पर कब्जा करके बैठ जाए और दूसरे के पास न फेंके तो खेल बन्द हो जायगा और उसे धक्के खाने पड़ेंगे।

गेद की भांति यह माया भी आपके पास किसी खिलाडी से ही आई है, अतएव इसे पकड कर बैठे रहना उचित नही है। इसे दूसरो को देना चाहिये। हा, इसका दुरुपयोग न हो–यह ख्याल भले ही रखो, मगर पकड कर मत बैठे रहो। पकड कर बैठने से लोगो के धक्के खाने पडते हैं और ऐसे ही कारणो से 'बोल्शेविज्म' फैलता है।

इस पकार इस खेल से यह सीखा जा सकता है कि ससार की माया (धन–दौलत) गेद के समान है। अगर खिलाडी की भाति इसे देते रहे तब तो ठीक है–खेल चलता रहेगा, अगर इसे पकडकर बैठ गये तो खेल भी बन्द हो जायेगा और धक्के भी खाने पडेगे। यही कारण है कि ज्ञानियो ने दान को प्रधान स्थान दिया है। दोगे तो आप पाओगे, न दोगे तो देना पडेगा। ऐसी स्थिति मे अपने आप ही विचार कर देखो कि किस रीति से देना उचित है? धक्के खाकर देना ठीक है या प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा से देना ठीक है?

इधर एवन्ताकुमार खेल रहे थे, उधर पोलासपुर के बाग मे भगवान् महावीर पधारे। भगवान् के साथ अनेक सन्त–महात्मा थे, परन्तु उन सबमे गौतम–इन्द्रभूमि बडे थे। गौतम स्वामी बेले–बेले पारणा करते थे। भगवान् की आज्ञा लेकर वे भिक्षा हेतु नगर मे पधारे।

गौतम स्वामी बेले के पारणे पर भी स्वय भिक्षा के लिए गये, तो क्या दूसरे साधु उनके लिए भिक्षा नही ला सकते थे? उन्हे स्वय क्यो जाना पडा? इस शका का समाधान यह है कि शास्त्र स्वावलम्बन की शिक्षा देता है और परावलम्बन का निषेध करता है। शास्त्र मे कहा है–

'सयं लाभेन'

जो अपने लाये हुए पर सन्तोष करता है, दूसरे को देने की आशा करता है किन्तु दूसरे से लेने की आशा नही करता, वह सुखशय्या पर सोने वाला है इससे विपरीत, जो दूसरे के लाये हुए की आशा करता है–दूसरे को देने की आशा नही करता, वह दु खशय्या पर सोने वाला है।

आज सारा भारतवर्ष परावलम्बी हो रहा है, अतएव दुखशय्या पर सोने वाला है। दूसरे देश वस्त्र दे, तो भारतीय अपना तन ढक सकते हैं, अन्यथा उन्हे नग्न रहना पडे। दूसरे देशवासी उनकी रक्षा करे तो उनकी रक्षा हो अन्यथा उनकी खैर नही। क्या यह बकरी बनना नही है? कितने परिताप का विषय है कि सदेव स्वतत्रता के स्वर्गीय साम्राज्य मे विचरण करने वाले लोग आज परमुखापेक्षी परावलम्बी और दीन बन गये हैं। कितनी दयनीय स्थिति है! इस गुलामी की भी कोई सीमा है?

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि उन गुलामो मे किसान की स्थिति फिर भी ठीक है, लेकिन अन्य लोग तो एकदम ही अकर्मण्य हो रहे है। आप स्वय विचारकर देखिए कि आप अपना पैदा किया हुआ अन्न खाते हैं या दूसरे का पैदा किया हुआ? 'अन्न वै प्राणा' इस कथन के अनुसार अन्न को प्राणधारण का हेतु मानकर आप खाते तो हैं, मगर पैदा भी करते है या नही? शायद कहोगे, हम पुण्य लेकर आये है, इसलिए हमे परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है? लेकिन गौतम स्वामी क्या लेकर नही आये थे, जो स्वय भिक्षा के लिए गये? पुण्यवान् का अर्थ आलसी नही है और न आलस्य मे पडे रहना पुण्य कहलाता है। आलस्य मे डूबे रहना तो पुण्य का नाश करना है।

गौतम स्वामी नीची नजर किये हुए गज गति से भिक्षा के लिए पधारे। जिनके सामने स्वार्थसिद्ध विमान के अहमिन्द्र देव भी तुच्छ है, ऐसे सुन्दर गौतम स्वामी भिक्षा के लिये उसी ओर से निकले, जहा एवन्ताकुमार बालको के साथ खेल रहे थे। वे खेल के स्थल के समीप होकर निकले। गौतम स्वामी पर एवन्ताकुमार की दृष्टि पडी। एवन्ताकुमार उन्हे देखकर सोचने लगा—इनका रूप कितना सुन्दर है! इनमे कैसी ज्योति दैदीप्यमान हो रही है? मुख पर कितनी उज्ज्वलता है? मुख इतना सोम्य है कि मानो अमृत टपकता है। ऐसे तेजस्वी पुरुष को किस चीज की कमी है? गौतम स्वामी के नाम मे तीन अक्षर है—'गो—त—म' इनके विषय मे कहा है—

"कामधेनु गौ"

जिन गौतम स्वामी के नाम मे ये तीनो बसते हैं उन्हे क्या कमी हो सकती है?

इस प्रकार सोच विचार के पश्चात् एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी से ही उनके घर घर फिरने का कारण पूछना उचित समझा।

खेल छोडना बालको को बडा अप्रिय मालूम होता है फिर भी एवन्ताकुमार गौतम स्वामी की ओर अधिक आकृष्ट हुआ कि उसने खेलना छोड दिया। इस खेल छोडने मे गौतम स्वामी की महिमा कारण है या एवन्ताकुमार की महिमा कारण है यह कौन जाने? लेकिन एवन्ताकुमार ने खेलना छोड दिया।

गौतम स्वामी की अद्भुत तेजस्विता देखकर साधारण आदमी को कुछ पूछने मे भी झिझक होती मगर एवन्ताकुमार क्षत्रिय पुत्र था। वह अपने

मन मे उठी हुई जिज्ञासा का निवारण करने के लिए किसी से भयभीत होने वाला नही था।

आज कई भाई मेरे परोक्ष मे तो शका करते हैं, पर उस शका को मेरे सामने लाने मे भय खाते है। आपका और मेरा इतना परिचय है, फिर भी पूछने मे आपको डर लगता है। उधर एवन्ताकुमार बालक ही था और गौतम स्वामी से उसका परिचय भी नही था, फिर भी वह गौतम स्वामी से प्रश्न करते डरा नही। आपको क्यो डर लगता है? इस प्रकार निष्कारण डरने का नाम ही तो बनियापन है। जिसके मन मे जो सन्देह हो, नि सकोच होकर मुझसे पूछे। मै अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दूगा। उसकी शका का समाधान करूगा। मगर सामने शका–समाधान न करके पीछे–पीछे शकाये करना कायरता है।

गौतम स्वामी मे कैसा आकर्षण था कि उन्होने एवन्ताकुमार को अपनी ओर उसी तरह खीच लिया, जिस तरह चुम्बक लोहे को खीच लेता है। बच्चे के लिए खेल उतना ही आकर्षक है, जितना कृपण के लिए मूल्यवान् खजाना भी शायद न हो। मगर गौतम स्वामी के आकर्षण से एवन्ताकुमार खिच आये। वे अपने साथियो को खेलता छोडकर गौतम स्वामी के पास आये और उनसे कहने लगे–भगवान्! आप कौन हैं? और किस प्रयोजन से इधर उधर फिर रहे है?

एवन्ताकुमार का यह भावपूर्ण आर्द्र प्रश्न सुनकर गौतम स्वामी ने न मालूम किस दृष्टि से उसे देखा होगा?

एवन्ताकुमार के प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी कहने लगे– हम श्रमण निर्ग्रन्थ है। हम सचित, क्रीत, औद्देशिक और सदोष आहार नही लेते, और हमे भिक्षा की आवश्यकता है, इसलिए हम भिक्षा की तलाश मे घर घर जाते है।

एवन्ताकुमार बोले–जिनका तेज इतना उग्र है, जिनके तेज के आगे देवो का भी तेज फीका पड जाता है उन्हे भिक्षा मागनी पडती है और वह भी घर घर से! चलो भगवान्! मेरे घर चलो। मैं तुम्हे भिक्षा दूगा।

इतना कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा न करके एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी की उगली पकड ली।

गौतम स्वामी को एवन्ताकुमार से अपनी उगली छुडा लेनी चाहिए थी या नही? उगली न छुडाने पर कदाचित् श्रावक निन्दा करने लगते कि यह भी साधु की कोई रीति है? मगर वहा कौन किसके लिये एतराज करता?

एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी की उगली क्या पकडी, मानो कल्पवृक्ष मे फल लग गया था। एवन्ताकुमार की वीरता, धीरता और होनहार देखकर गौतम स्वामी भी उनसे उगली न छुडा सके। कहावत है–

होनहार विरवान के, होत चीकने पात।

उस होनहार बालक से गौतम स्वामी अपना हाथ न छुडा सके । गौतम स्वामी की उगली पकडे एवन्ताकुमार उन्हे भिक्षा देने के लिए कहकर अपने घर ले गये। गौतम स्वामी बालक की भावुकता पर मुग्ध हो गये और उसकी अवज्ञा न कर सके। वे बालक के साथ ही साथ खिचे चले गये ।

उधर श्रीदेवी एवन्ताकुमार की प्रतीक्षा मे थी। सोच रही थी–वह कहा चला गया और अब तक भोजन करने भी नही आया। इसी समय गौतम स्वामी की उगली पकडे एवन्ताकुमार आता दिखाई दिया। श्रीदेवी को अतिशय प्रसन्नता हुई। वह कहने लगी–

अहो! बालूडा महा पुण्यवत, भली जहाज घर आनी।
हर्ष भाव हाथां से कर ने, बेरायो अन्न पानी।।रेएवन्ता।।

एवन्ताकुमार की मा कहने लगी–लाल! मैं तेरी राह देख रही थी कि तू आवे और भोजन करे। लेकिन तू पुण्य की निधि है, जो खेल छोडकर इस जहाज को ले आया, नही तो यह जहाज कहा नसीब होता है!

गौतम स्वामी को देखकर श्रीदेवी को कितना हर्ष हुआ होगा, यह बताना बृहस्पति के लिए भी शायद सम्भव नही है। जब बृहस्पति की जिह्वा भी यह नही बता सकती, तो मैं क्या कह सकता हूँ?

श्रीदेवी ने एवन्ताकुमार से कहा–बेटा! यह जहाज यहा कब आता? कौन जानता था कि यह भवसागर का जहाज आज इधर आ जायेगा? तेरी ही बदौलत आज इस लोकोत्तर जहाज का आगमन हुआ है।

माता की ये बाते सुनकर एवन्ताकुमार को इतनी अधिक प्रसन्नता हो रही थी मानो किसी सेनापति ने किसी दुर्भेद्य दुर्ग को जीत लिया हो। माता की प्रसन्नता देखकर उसे अपने कार्य का गौरव मालूम हुआ। बालक को उस समय अत्यन्त प्रसन्नता होती है, जब मा उसके किसी कार्य से प्रसन्न होती है।

एवन्ताकुमार ने गौतम स्वामी के तीन बार प्रदक्षिणा देकर उनसे प्रार्थना की–भगवन्! यह आहार–पानी निर्दोष है, इसे ग्रहण कीजिए। वैसे तो वह राजा का घर था परन्तु गौतम स्वामी को जितने आहार पानी की आवश्यकता थी उतना उन्होने ले लिया। आहार पानी ग्रहण करने के पश्चात्

जब गौतम स्वामी लौटने लगे तो एवन्ताकुमार ने उनसे पूछा–'प्रभो! आप कहा रहते हैं?'

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया–'हे बालक, मै भगवान् महावीर स्वामी का शिष्य हू और उन्ही के पास रहता हू। भगवान् इस समय नगर के बाहर बगीचे मे ठहरे है।'

गौतम स्वामी ने यह नहीं कहा कि मैं बाग मे ठहरा हू। उन्होने अपने को भगवान् के पास रहने वाला प्रकट किया। इस प्रकार वे प्रत्येक कार्य मे अपने गुरु को ही प्रधानता देते थे, गुरु को कभी भूलते नही थे। वास्तव मे अपने गुरु को भूल जाने वाला शिष्य अभागा है।

गौतम स्वामी का उत्तर सुनकर एवन्ताकुमार उनसे कहने लगे–'मै जिन्हे देखकर आश्चर्य करता हू, वे भी शिष्य हैं! उनके भी गुरु हैं! शिष्य ऐसे हैं तो गुरु न जाने कैसे होगे? भगवान्! मैं आपके साथ चलकर भगवान् महावीर के दर्शन करना चाहता हू ।'

एवन्ताकुमार की भावना मे और उसके उत्साह मे इतना बल था कि न तो गौतम स्वामी ही उसे मना कर सके और न उनकी माता श्रीदेवी को ही ऐसा करने का साहस हुआ। बल्कि श्रीदेवी को यह विचारकर बडी प्रसन्नता हुई कि बालक को गौतम स्वामी इतने प्रिय लगे।

लारे लारे चाल्यो बालक मेट्यो भाग सुभाग।
भगवतां री वाणी सुन ने मन आयो वैराग।।रे एवन्ता।।

एवन्ताकुमार गौतम स्वामी के साथ–साथ भगवान् महावीर के पास आये। भगवान् को देखकर एवन्ताकुमार के हर्ष का पार न रहा। जैसे बहुत दिनो के प्यासे चातक को वर्षा की बूद मिलने से आनन्द होता है, बहुत दिनो से बिछडी माता को पाकर बालक के हर्ष की सीमा नहीं रहती, चिरकाल तक परदेश मे रहकर घर आने वाला घर पर नजर पडते ही प्रसन्न होता है, उसी प्रकार भगवान् को देखकर एवन्ताकुमार को असीम आनन्द हुआ।

भगवान् ने उपदेश की अमृत–धारा बरसाई, जिसे सुनकर एवन्ताकुमार की आत्मज्योति जगी। उसने भगवान् से प्रार्थना की–'प्रभो! मैं माता–पिता से आज्ञा लेकर आपके निकट दीक्षा लूगा'।

भगवान् ने सक्षिप्त उत्तर दिया–'तुम्हे जिस तरह सुख हो, वैसा करो।

एवन्ताकुमार लौटकर अपनी माता के पास आया। माता को प्रणाम किया। माता ने कहा—'बहुत देर लगाई बेटा! आज तुम्हे भोजन करने की भी सुध न रही। कब से मैं तुम्हारी राह देख रही हू!'

एवन्ताकुमार—मा! आज मैंने वह अमृत पिया कि बस, कह नही सकता। उसका वर्णन करना असम्भव है। मैं गौतम स्वामी के साथ भगवान् महावीर के पास गया था। वहा जाकर भगवान् की वाणी सुनी। अत्यन्त आनद हुआ। अब तुम मुझे आज्ञा दे दो तो मैं भगवान् के निकट दीक्षा ले लू।

तू कांई जाणे साधपणा ने, बाल अवस्था थारी।
उत्तर दीधो ऐसो कुंवरजी, माता कहे बलिहारी।।रे एवन्ता ।।

दीक्षा की बात सुनकर औरो की माता तो मोह ममता के आवेग मे रोई होगी, पर एवन्ता की माता को हसी आ गई। वह कहने लगी—'लाल! दीक्षा कोई खेल थोडे ही है! तू क्या जाने सयम क्या है? और सयम का मार्ग कितना कठोर है? अभी तेरा खेलकूद नही छूटा है, दूध के दात भी नही गिरे हैं। फिर भी तू सयम लेने की बात कह कर मुझे आश्चर्य मे डालता है।'

माता की इस बात के उत्तर मे एवन्ताकुमार ने जो कुछ कहा उसके विषय मे सिद्धान्त मे कहा है—

"जाणामो अम्मा"

हे माता! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नही जानता और जिसे नही जानता उसे जानता हू।

यो एवन्ताकुमार का यह उत्तर आश्चर्य मे डालने वाला है, लेकिन यही तो स्याद्वाद हे। विसगत प्रतीत होने वाले कथन को सगत बनाना स्याद्वाद का प्रयोजन हे। एवन्ताकुमार के इस उत्तर मे सारा तत्त्व आ गया है।

एवन्ताकुमार की माता ने यह टेढा मेढा—सा उत्तर सुनकर पूछा—'ऐसी क्या बात है। जिसे तू जानता हुआ भी नही जानता और नही जानता हुआ भी जानता हे?'

कुमार ने कहा—'माता! लोगो की आखो पर पर्दा पडा हुआ हे। मेरी आखो पर भी पडा हुआ था, मगर आज भगवान् की कृपा से वह उठ गया। अद मुझे प्रकाश दिखाई दे रहा है। मा! यह कोन नही जानता कि ससार मे जितने भी जीव जन्मे हैं वे सब मरेगे? यह बात सभी जानते हैं और मैं भी जानता हू कि जो जन्मा है वह मरेगा। जिसका उदय हुआ है वह अस्त भी होगा। जो फूला है वह कुम्हलाएगा ही। मैं यह जानता हू, मगर यह नही

जानता कि यह सब किस घडी और किस पल मे होगा? इसी को कहते हैं–जानते हुए भी न जानना।'

इस कथन मे बडा रहस्य भरा हुआ है। उपनिषद् मे कहा है–

हिरण्यमयेन पात्रेण, सत्यस्य पिहितं मुखम्।

सोने के ढक्कन से जिस सत्य का मुह ढका हुआ है, एवन्ताकुमार उस सत्य का मुह खोल रहा है। आप यह तो जानते है कि मरना है, मगर यही नही जानते कि कब मरना है? फिर मरण को क्यो भूले हुए हैं? अगर भूले नही हो तो ढील क्यो कर रहे हो? फिर याद रखकर आत्मा का कल्याण क्यो नही करते? ससार के लोग यह झूठ ही कहते है कि हमे मरने का ज्ञान है। जिसे मृत्यु का स्मरण हो, वह बुरे काम क्यो करेगा? वह अन्याय, अत्याचार और पाप कैसे कर सकता है? लोग यह सब करते है, इससे जान पडता है कि वे मरना नही जानते। महाराज चतुरसिहजी ने एक पद कहा है–

या मनखां मोटी बात, मरणो जाणणो।

मरणो मरणो सारा केवे, मरे सभी नरनारी रे।
मरवा पेली जो मर जावे, तो बलिहारी रे।।मरणो.।।
जीवा सूं सगलो जग राजी, मरणो कोइय न चावे रे।
राजा रंक सभी ने सरखो, तो पण आवे रे।।मरणो.।।
दूजा भूप डरप ने म्लेच्छां, कीदी ताबेदारी रे।
वीर प्रताप जाण ने मरणो, टेक न हारी रे।।मरणो.।।
मरवा ने वनवीर विसरियो, धाय याद कर लीनो रे।
चूखाया रे साटे जायो जातो कीनो रे।।मरणो.।।
गुरु गोविन्द रो ब्राह्मण भूल्यो बालक दोय चिणायारे।
भामासाह धण्या ने धन दे, पाछा लाया रे।।मरणो ।।
मरवा ने जो जाणै वीसू, पाप कर्म नही होवे रे।
सुख दुःख री परवा नही राखे, प्रभु ने सेवे रे।।मरणो।।
मर ने जबाब राम ने देणो, या जीरे मन लागी रे।
चतुर चरण वणी रा सेवे, वो बडभागी रे।।मरणो.।।

सच है, जो मरना जानते होगे, वे बुरे काम कदापि नही करेगे। इस जगह बुरे काम का मतलब दारू पीना, मास खाना, परस्त्रीगमन करना, जुआ खेलना चोरी करना शिकार खेलना वेश्यागामी होना और विश्वासघात करना समझना चाहिए। मृत्यु को जानने वाला कम से कम इन पापो से अवश्य बचेगा।

कई लोगो मे कुलपरम्परा से दारू मास का अटकाव होता है। उनके यहा इन घृणित चीजो का व्यवहार करने वाला जाति से बाहर कर दिया जाता है। अगर जाति के बडे बडे समझे जाने वाले लोग ही इनका सेवन करने लगे, तो बेचारे छोटे क्या कर सकते हैं? उन छोटो की जबान बन्द कर दी जाती हे। क्या ऐसे बडे बडे लोग मरना जानते हैं? मरना जानते होते तो यह पाप क्यो करते? शराब पीना तो मुसलमानो मे भी हराम माना जाता है। कुरान की आज्ञा का पालन करने वाले मुसलमान उस जमीन को भी खोद फैंकते हैं, जहा शराब का छीटा गिर पडा हो। लेकिन उनमे भी जो लोग मरना भूले हैं, वे शराब पीते हैं।

शराब को बहुतरे लोग 'लाल शर्बत' कहकर पी जाते हैं। मगर नाम बदल देने से वस्तु नही बदल जाती। कहा है–

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्य मदकारि तदुच्यते।

अर्थात्–जिससे बुद्धि का नाश हो, जिसका सेवन करने से नशा हो, वे सब मादक वस्तुये हैं। वे सब मद्य के ही रूपान्तर हैं। अतएव अगर मरना जानते हो तो शराब पीना छोड दो।

आजकल मास भक्षण का और उसमे भी अडा खाने का प्रचार बढता चला जाता हे। यहा तक कि हिन्दू समाज के नेता समझे जाने वाले कतिपय लोग हिन्दुओ को मासभक्षण करने का खुला उपदेश देने मे सकोच नही करते। बहुत से लोग अडे को मास के अन्तर्गत ही नही समझते। मैंने कही पढा था कि गाधीजी ने जब विलायत जाने का निश्चय किया तब उनकी माता ने उन्हे बहुत रोका। गाधी जी की माता के सस्कार उत्तम थे। वह साधुमार्गी जेन मुनियो के सम्पर्क मे थी। उन्होने गाधीजी से कहा–'विलायत जानेवाले वहा भ्रष्ट हो जाते हैं, इसलिए मैं तुझे नही जाने दूगी।' जब गाधीजी ने बहुत कुछ कहा–सुना तो उनकी माता एक शर्त पर उन्हे जाने देने के लिए सहमत हुई। माता ने कहा–अगर तुम मेरे गुरु के पास चलकर मदिरा, मास और परस्त्री का त्याग कर दे तो मैं जाने दे सकती हू, अन्यथा नही।

विलायत मे परस्त्रीसेवन ऐसी साधारण बात हे कि माना पाप मे उसकी गिनती ही नहीं है। सुनते हैं अमरिका मे 95 प्रतिशत तलाक होते हैं और विवाहो की अपेक्षा तलाको की सख्या बढने की तेयारी हे। फ्रास मे इतना व्यभिचार है कि घर वाला पुरुष अपने घर मे किसी दूसरे पुरुष का आया जानता है तो वह बाहर से ही लौट जाता है। वह घर मे प्रवेश नही कर सकता। मित्रो! भारतवर्ष इस दिशा मे अब भी अत्यन्त सौभाग्यशाली है।

भारतीयो मे इस दृष्टि से काफी मनुष्यता मौजूद है। यहा पशुता का यह नग्न ताण्डव नही है। भारतीय लोग इस प्रकार के दुराचार को घृणा की दृष्टि से देखते है।

आखिरकार गाधीजी अपनी माता के गुरु के निकट प्रतिज्ञाबद्ध होकर विलायत गये। वहा जब वे बीमार हो गये तो डॉक्टरो ने दारू पीने की सलाह दी । गाधीजी ने कहा–मै दारू पीने का त्याग कर चुका हू।

डॉक्टरो ने कहा–अच्छा, अडा खाने मे तो कुछ हर्ज नही है? उन्होने युक्तियो से साबित करने की चेष्टा की कि अडा मास मे सम्मिलित नही है। मगर गाधीजी कोई सामान्य पुरुष नही थे। उन्होने कहा–अडा मास मे शामिल हो अथवा न हो, मगर मेरी माता उसे मास मे ही गिनती है और मैंने अपनी माता की समझ के अनुसार ही प्रतिज्ञा ग्रहण की है। ऐसी हालत मे मै आपकी बात न मानकर अपनी माता की बात मानना उचित समझता हू । मै किसी भी दशा मे अडा नही खा सकता।

गाधीजी अपनी बात पर डटे रहे। बीमारी की हालत मे डॉक्टरो का आगह अस्वीकार करके भी उन्होने अडा नही खाया। गाधीजी ने बीमारी मे कष्ट पाना मजूर किया, पर धर्म से डिगना स्वीकार नही किया। कष्ट पाये बिना धर्म का पालन होता भी तो नही है। गाधीजी ने प्रतिज्ञा न की होती और प्रतिज्ञा पर अचल न रहे होते तो कौन कह सकता है कि आज वे 'महात्मा गाधी' कहलाने के अधिकारी होते या नहीं? जिस मनुष्य मे उच्च चारित्र का अभाव है। वह भी कोई मनुष्य है?

अडा और मछली का तेल (कॉड–लीवर ऑयल) जैसे घृणित पदार्थो ने धर्म के सस्कार नष्ट कर दिये है।

इन सब पापमय वस्तुओ का सेवन लोग किसलिए करते हैं? दीर्घ जीवन के लिए। बहुत समय तक मृत्यु से बचे रहने के लिए इन वस्तुओ का व्यवहार किया जाता है, मगर दुनिया कितनी अधी है कि आखो दिखाई देने वाले फल को भी वह नही देखती। ज्यो ज्यो इनका प्रचार बढता जाता है, त्यो त्यो रोग बढते जा रहे हैं, नयी–नयी आश्चर्यजनक बीमारिया डाकिनो की तरह पैदा हो रही है, उम्र का औसत घटता जा रहा है, शरीर की निर्बलता बढती जाती है, इन्द्रियो की शक्ति दिनोदिन क्षीण से क्षीणतर होती जा रही है। देखते–देखते चटपट मौत आ घेरती है फिर भी अधी दुनिया को होश नहीं आता! क्या प्राचीन काल मे ऐसा था? नही, तो फिर पूर्व की ओर उदय की दिशा मे–प्रकाश के सम्मुख न जाकर लोग 'पश्चिम' की तरफ अस्त की ओर

मृत्यु के मुह की सीध मे क्यो जा रहे हैं? जीवन की लालसा से प्रेरित होकर मौत का आलिगन करने को क्यो उद्यत हो रहे हैं? मित्रो! आखे खोलो, फिर आप ही सब कुछ समझ जाओगे।

परस्त्री तो सब के लिए माता के समान होनी चाहिए। भूधर कवि कहते हैं–

पर–ती लखि जे धरती निरखे,
धनि हैं, धनि है, धनि है, नर ते।

जहा पाल बधी नही होती, वहा पानी नही रुकता और जहा पानी नहीं रुकता, वहा अच्छी खेती नही हो सकती। मैंने ज्ञानियो के वचन आपको सुनाकर उपदेश की वर्षा की है, पर पाल के अभाव मे यह उपदेश भी कल्याणकारी नही हो सकेगा। अतएव पाल बध जानी चाहिए, जिससे उपदेश का पानी ठहर सके और आपका कल्याण हो। आजकल जैसी वैसी कमा खाने के योग्य व्यावहारिक शिक्षा तो दी जाती है मगर धर्म की वर्षा तभी ठहर सकती हे, जब धार्मिक शिक्षा दी जाय। हमारे उपदेश का पानी रोकने की पाल धर्म की शिक्षा हे। अतएव बालको को उस धर्म की शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए, जिसमे अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का समावेश हो। विनीत पुत्र तो सभी मा–बाप चाहते हे, परन्तु शिक्षा ऐसी देते दिलाते हैं, जिसमे धर्म को स्थान नही होता। ऐसी अवस्था मे वालक विनीत हो केसे? मा बाप नहीं समझते कि मा बाप किस प्रकार बनना चाहिए? वे अपने कर्त्तव्य ओर उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ हें। इस स्थिति मे सन्तान खराब होती हे तो इसमे आश्चर्य ही क्या हे?

नागिन ओर विलाव के विषय मे प्रसिद्ध हे कि वे अपने वच्चो को खा जाते हे। जिनके मा–वाप नागिन ओर विलाव के समान हैं, वे वालक सुख कसे पा सकते हें? इसी प्रकार जो माता–पिता अपने वालक को धर्म की शिक्षा ही न देगे तो उनका वालक विनीत किस प्रकार वन सकगा?

एवन्ताकुमार को अल्प–आयु म भी धर्म की शिक्षा मिली थी। इसीलिए वह कह रहा ह कि–'माता! में यह तो जानता हू कि मरना आएगा लेकिन यह नही जानता कि कब आएगा। इसी प्रकार में यह तो जानता हू कि स्वर्ग–नरक आदि कर्म स ही मिलत हैं किन्तु यह नही जानता कि किस क्षण के कर्म से स्वर्ग ओर किस क्षण क कर्म स नरक मिलता ह? ह मा! तू मुझ छोटा कहती ह लेकिन क्या छोटे नहीं मरते? अगर छोटी आयु म भी मृत्यु आ जाती है तो ससार म रहना किस प्रकार उचित कहा जा सकता ह?'

है, जो जगत् के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, उसे ससार असार प्रतीत होने लगता है। ससार की समस्त सम्पदा और विनोद एव विलास की विविध सामग्री, उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित नही कर सकती। ससारी लोगो द्वारा कल्पित वस्तुओ का मूल्य और महत्व उसके लिए उपहास का पात्र है। वह बहुमूल्य हीरे को पाषाण के रूप मे देखता है, भोग को रोग मानता है। उसके लिए पदार्थ अपने असली रूप मे दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसे विरक्त पुरुषो को वासनाओ के बन्धन मे बधे हुए साधारण मनुष्यो की बुद्धि पर तरस आता है। उनका हृदय बोल उठता है–

दारा परिभवकारा बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः।
कोऽयं जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा।।

अर्थात्–पत्नी पराभव का कारण है, बाधवजन बधन हैं, विषयभोग विष है। फिर इस ससारी जीव का मोह न जाने कैसा है कि यह शत्रुओ को मित्र समझ रहा है।

तत्वज्ञानी पुरुष विषयभोग से इसी प्रकार दूर भागते हैं, जैसे साधारण मनुष्य काले नाग को देखकर। काले नाग को अपने निकट आते देखकर कौन स्थिर रह सकता है? इस प्रकार विवेकपूर्ण वैराग्य की स्थिति मे किसी को समझा बुझाकर ससार मे नही फसाया जा सकता। एवन्ताकुमार की माता इस तथ्य को समझती थी। उसे विश्वास हो गया कि बालक अब गृह–ससार मे नही रह सकता। एवन्ताकुमार की माता ने कहा–'तुम्हारी यही इच्छा है तो कोई हर्ज नही, मगर एक बात कहती हू । तुम चाहे एक दिन ही राज्य करना, मगर एक बार राज्य ग्रहण कर लो। फिर जैसी इच्छा हो, करना।

माता के इस अनुरोध को अस्वीकार करना एवताकुमार ने उचित नही समझा। वे मौन रहे और "मौन स्वीकृति लक्षणम्" मानकर उनके माता–पिता ने राज्याभिषेक की तैयारी आरम्भ कर दी।

दूसरे दिन एवन्ताकुमार राज्यसिहासन पर विराजमान हुए और राजा बन गये। राजा बन जाने के बाद उनके माता–पिता ने कहा–'पुत्र देखो, राजपाट मे यह आनन्द है। इस आनन्द को छोडकर घर घर भीख मागना क्या अच्छा है?

एवन्ताकुमार की आत्मा मे अद्भुत प्रकाश जगमगा उठा था। उसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल और विचारशक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण हो गई थी। उसने माता–पिता से कहा–'आपने मुझे यह पद प्रदान किया है, मगर क्या मुनिपद इससे छोटा है? नही, तो उसे छुडाने के लिए इस पद का प्रलोभन किसलिए दे रहे हैं? हाथ जोडेगा तो राजा ही मुनि के समक्ष हाथ जोडेगा। मुनि किसी राजाधिराजको हाथ नही जोडता। चक्रवर्ती भी मुनियो के चरणो मे मस्तक रगडता है।'

एवन्ताकुमार की असाधारण प्रतिभा और अपूर्व भावना देख माता–पिता दग रह गये। उन्होने दीक्षा देने के लिए उसे भगवान् महावीर को सौंप दिया।

इस प्रकार की असाधारण विभूतिया ससार मे कदाचित् ही जन्म लेती है। इन्हे अपवाद–पुरुष कहा जा सकता है। जन्मान्तर के अतिशय उग्र सस्कारो के बिना कोमल वय मे इस प्रकार के व्यक्तित्व का परिपाक नही होता।

भागवत मे भी इसी प्रकार का एक आख्यान है। राजा उत्तानपाद के दो रानिया थी। बडी रानी धर्म परायणा और तत्व को जाननेवाली थी। छोटी रानी ससार के सुखो मे मस्त रहती थी। बडी रानी सरल स्वभाव की भोली स्त्री थी, इसलिए राजा ने उसे अनमानती कर दी। इसके एक पुत्र था जिसका नाम ध्रुव था। राजा ने बडी रानी को एक अलग मकान दे दिया था और नियत परिमाण मे उसे भोजन आदि आवश्यक वस्तुए देने की आज्ञा दे दी थी। छोटी रानी उसके प्रति द्वेष रखती और अपने दास दासियो द्वारा इस बात की निगरानी रखती कि बडी रानी को कोई चीज नियत मात्रा से अधिक तो नही दे दी जाती।

बडी रानी इस व्यवहार को बडी ही शाति के साथ सहन करती थी। वह अपनी मौजूदा परिस्थिति मे सन्तुष्ट थी। अगर कोई कभी उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए राजा के अन्याय–व्यवहार की चर्चा करता तो रानी कहती– मेरे पति का मुझ पर बडा अनुग्रह है जो उन्होने धर्ममय जीवन बिताने और मोह मिटाने के लिए यह समय दिया।' वह अपने अपमान का विचार करके दु ख का अनुभव नही करती थी। वह मस्त रहती।

मनाने वाला हो तो मन क्या नही मान लेता? वह सभी कुछ समझ लेता है समझाने वाला चाहिए। विवेक से कार्य करने वाले के लिए मन अबोध शिशु के समान है।

एक दिन राजा उत्तानपाद छोटी रानी के महल मे बैठा था और उसके लडके को गोद मे लिये था। खेलते–खेलते ध्रुव अचानक वहा जा पहुचा। उसने पिता की एक तरफ की गोद खाली देखी और वह उसमे बैठ गया। सौत के लडके को अपने लडके की बराबरी बैठा देख रानी की ईर्ष्या की अग्नि भडक उठी। उसने ध्रुव को राजा की गोद से हटा दिया और कहा–'इस गोद मे बैठना था तो मेरे पेट से जन्म लेना था।'

रानी के इस निर्दय व्यवहार से बालक ध्रुव को बहुत दु ख हुआ। वह रोता–रोता अपनी मा के पास पहुचा। उसने सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा–'मा, तुम्हारे पेट से जन्म लेने के कारण क्या मै पिता की गोद मे बैठने योग्य न रहा?' पुत्र की यह बात सुनकर सहनशीला और धैर्यधारिणी रानी को भी कितना दु ख हुआ होगा? मगर उसने अपना दु ख प्रकट नही किया। उसने बालक से कहा–'बेटा! मुझसे पूछे बिना तू पिताजी की गोद मे बैठने गया ही क्यो ? अपन ईश्वर की गोद मे बैठे है, फिर किसी अन्य की गोद मे बैठने की आवश्यकता ही क्या है? तप करके स्वय को ईश्वर के प्रति अर्पित कर देने से वह पद मिलता है–वह सर्वश्रेष्ठ गोदी प्राप्त होती है कि उसके आगे राज्य आदि सभी कुछ तुच्छ हैं।'

आज यह उदात्त शिक्षा कहा? जिस माता की भावना इतनी उन्नत होगी, उसका बालक भी ध्रुव सरीखा हो सकता है। मगर कहा है ऐसी देविया, जो अपने बालक को मनुष्य के रूप मे देव, दिव्य विचारवाला, दिव्य शक्ति–शाली–बना सके? महिलावर्ग की स्थिति अत्यन्त विचारणीय है। जब तक महिलाओ का सुधार नही होगा, तब तक किसी भी प्रकार का सुधार ठीक तरह नही हो सकता। आखिर तो मनुष्य के जीवन का निर्माण बहुत कुछ माता के हाथ मे ही है। माता ही बालक की आद्य और प्रधान शिक्षिका है। माता बालक के शरीर की ही जननी नही, वरन् बालक के सस्कारो की और व्यक्तित्व की भी जननी है, अतएव बालको के सुधार के लिए पहले माताओ के सुधार की आवश्यकता है।

आजकल न तो माताए ही बालको को योग्य धार्मिक शिक्षा दे सकती है और न सरकारी स्कूलो मे ही ऐसी शिक्षा मिलती है। सच्ची शिक्षा वह है जिसे प्राप्त कर व्यक्ति धर्मनिष्ठ बने और राजा से लेकर रक तक, मनुष्य से लेकर क्षुद्र कीट पतग तक प्राणी मात्र की सेवा करने की लगन उत्पन्न हो जाय।

राजा उत्तानपाद की रानी धर्म न जानती होती तो पति और सौत के निष्ठुर व्यवहार से दुखित होकर रोने लगती अथवा ईर्ष्या की आग से तपकर उनसे बदला लेने पर उतारू हो जाती। मगर उसने ऐसा नही किया। उसने सोचा—'रोने से क्या लाभ है? बदला लेने की कोशिश करने से मैं भी उन्ही की कोटि मे चली जाऊगी। मगर मैं अपना तेज क्यो घटाऊ?'

माता की बात सुनकर ध्रुव ने कहा—'तू मेरी माता क्या है, मुझे शक्ति देने वाली देवी है। अब मै तप करके परमात्मा की गोद मे ही बैठूगा। अतएव मुझे आज्ञा दो, मै तप करने जाऊ।' यह कहकर बालक ध्रुव तप करने चला गया। उसकी माता इससे घबराई नही।

ध्रुव जा रहा था कि मार्ग मे नारद मिले। नारद कहने लगे—'अभी तू छोटा बालक है। तुझे क्या पता—वैराग्य किस चिडिया का नाम है? फिर तप करने के लिए वन मे क्यो जा रहा है? बच्चे! तेरी कोमल उम्र है। तुझसे तप न होगा। घर लोट जा।'

ध्रुव ने उत्तर दिया—आपसे मुझे बडी आशा थी। मगर आप मुझे निराश कर रहे हैं। आप उलटी गगा बहा रहे हैं। आप आज से पहले मेरे पास नही आये थे आज क्यो आये हे? यह तप की ही शक्ति हे कि नारदजी जेसे ऋषि भी आकर्षित हो सके हे।

निदित कर्म जे आदरै, तब बरजत ससार ।
तुम बरजत सुकृत करत यह न नीति व्यवहार।।

हे ऋषि! कोई अच्छे काम न करता हो तो उसे अच्छे की ओर प्रेरित करना आपका काम हे। मगर आप तो अच्छे काम से रोक रहे है!

नारदजी बोल—नही मरी ऐसी इच्छा नही हे। मैं किसी को सत्कार्य स रोकना नही चाहता।

ध्रुव—म तप करन जा रहा हू तब ता आप राक रह हैं। अगर म राज्य करना हाता ता न राकत। आपक लिए क्या यही उचित ह? म क्षत्रियपुत्र हू, वीर हू। मरी माता न मुझ तप करन की शिक्षा दी ह। मैं तप करने की प्रतिज्ञा करक घर स निकला हू। आप मुझ सिह—बालक का सियार—बालक न बनाइए।

जब देख्यौ बालक सुदृढ अरु अखण्ड विश्वास।
नारद परम प्रसन्न ह्वै साधु साधु कहि तास।।

नारद कहने लगे–तेरी परीक्षा हुई और मेरा अभिमान गया। आज मुझे मालूम हुआ कि जितनी सच्ची परमात्म–प्रीति एक बालक मे हो सकती है मुझमे उतनी भी नही है।

भागवत की यह कथा है। एक कथा मदालसा की भी है, जिसने आठ–आठ वर्ष की उम्र मे ही अपने बालको को सन्यास लेने भेज दिया था।

एवन्ता मुनि ने भी बाल्यकाल मे दीक्षा ले ली। उन्होने पानी मे नाव भी तिराई, जिससे मुनियो के मन मे सन्देह हुआ कि यह क्या साधुपन पाल सकेगा? ज्यो ही मुनियो ने उनसे कहा कि साधु को पानी मे नाव तैराना नही कल्पता त्यो ही उन्होने धीरे से अपना पात्र पानी से निकाल लिया।

मुनियो ने भगवान् से पूछा–प्रभो! एवन्ता मुनि कितने भव और धारण करेगा?

भगवन्त भासे सब साधा से भक्ति करो सदीव।
निन्दा हिलना मत करौ इनकी, ये चरम शरीरी वीर रे।।एवंता।।

भगवान् ने मुनियो से कहा–'इनकी निन्दा–अवहेलना मत करो। ये चरमशरीरी जीव है। ये इसी भव से मुक्ति प्राप्त करेगे।'

अन्त मे एवन्ता मुनि ने सकल कर्मो का क्षय किया। वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये।

मित्रो! तप मे अपूर्व, अद्‌भुत और आश्चर्यजनक शक्ति है। तपस्या की अग्नि मे आत्मा के समस्त विकार भस्म हो जाते हैं और आत्मा सुवर्ण की तरह प्रकाशमान हो उठता है। एवन्ताकुमार जैसे महापुरुष भले ही अपवाद रूप ही हो और वर्तमान काल मे उनके अनुकरण की शक्यता न हो, तो भी उनका आदर्श अपने समक्ष रखोगे और तप की महिमा समझोगे तो कल्याण होगा।

संवत्सरी पर्व

श्रेयास जिनन्द सुमर रे।

यह भगवान् श्रेयासनाथ की प्रार्थना है। आज सवत्सरी का महान् पर्व दिवस है। यह पर्युषण पर्व का अन्तिम दिन है। आज चतुर्विध श्रीसघ मे असाधारण उत्साह है। इस पवित्र अवसर पर अपने जीवन को और अपने उत्साह को परमात्मा की प्रार्थना से ओतप्रोत बना लेना चाहिए। जीवन मे ऐसे अन्य क्षण वहुत ही कम, कभी–कभी मिलते है। सौभाग्य से जब ऐसे क्षण मिले, तो उन्हे खाली न जाने देने मे ही चतुराई है। सुअवसर से लाभ उठा लेना, प्रत्येक बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है।

उत्साह के बिना कोई भी काम नही होगा । कार्य साधारण हो और उसके दूसरे साधन प्रचुर मात्रा मे मोजूद हो, तब भी उत्साह के अभाव मे वह यथावत् सम्पन्न नही होता। इसके विपरीत उत्साही पुरुष पर्याप्त साधनो के अभाव मे भी, अपने तीव्र उत्साह से प्रेरित होकर कठिन से कठिन कार्य भी साध लेता हे। अतएव उत्साह का होना आवश्यक हे और जव उत्साह हे तो उसे सफल भी कर लेना चाहिए। ऐसा सुअवसर वार वार नही मिलता। इस प्रार्थना मे कहा गया हे–

सुमर रे सुमर रे सुमर रे, श्रेयास जिनन्द सुमर रे।

हे आत्मा! तू परमात्मा को सुमर । तू और परमात्मा दो नही हे एक ह । फिर भी तू अनादि काल से अनेक योनियो म भटकता हुआ, जन्म–मरण क कप्ट भोग रहा ह आर ससार की तुच्छ–अतितुच्छ वासनाआ म आनन्द मान रहा ह। इस प्रकार तूने अनन्त काल विता दिया है। अव तू चेत जा। अव एसा जीवन मत गवा। परमात्मा का स्मरण कर और तू तथा परमात्मा एक रूप हो जा।

इस महान् और कल्याणमय साध्य की सिद्धि के लिए आज का दिन महत्वपूर्ण अवसर है। मै आपको यह बतलाना चाहता हू कि पर्युषण पर्व क्या है? सिद्धान्त मे इस महापर्व को पर्युषण कल्प कहा है। इस पर्व की महिमा बतलाने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है। फिर भी इस सम्बन्ध मे कुछ कहूगा।

जैन सघ मे इस महापर्व का सस्कार इतना व्यापक है कि एक बच्चे पर भी इसका प्रभाव है। अन्य पर्वो पर तो बच्चो को खाने पीने की भावना रहती है और वे ऐसी ही वस्तुए मागते हैं, लेकिन इस धार्मिक पर्व पर उनकी माग खाने की नही होती और वे भी उपवास करने की ही इच्छा करते हैं। मनुष्य के प्राण अन्नमय है। अतएव अन्न का त्याग करना सरल नही है। तीस--चालीस वर्ष के जवान और समझदार आदमी भी उपवास के नाम से डर जाते है और बहुत से लोग कभी एकादशी आदि का उपवास करते भी हैं तो एकादशी, द्वादशी की दादी बन जाती है। लेकिन जैनो के इस उपवास मे खाना--पीना कुछ भी नही है। अगर कोई चाहे तो अधिक से अधिक अचित्त जल पी लेता है। अन्न का या किसी अन्य खाद्य पदार्थ का एक भी कण मुह मे डालने से उपवास भग हो जाता है । जैनो का उपवास इतना कठिन होने पर भी आज के दिन छोटी--छोटी लडकिया भी उत्साह के साथ उपवास करने को तैयार हो जाती है। इस पर्व की यह स्वाभाविक विशेषता है।

पर्युषण से मतलब उस काल से है, जब साधु किसी विशेष मर्यादा के साथ एक ही स्थान पर रहते हैं। साधु चार मास के सिवाय शेष आठ मास मे विचरने तथा वस्त्र पात्र लेने मे स्वतत्र है, लेकिन पर्युषण अर्थात् चातुर्मास के बन्धन मे रहते है। साधु मर्यादा के साथ एक ही स्थान पर चार मास पर्यन्त रहते है। पर्युषण काल जघन्य (छोटा) चार मास का और उत्कृष्ट छह मास का होता है। आषाढी पूर्णिमा को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करने के पश्चात् भगवान् महावीर ने जिस प्रकार पर्युषण पर्व की आराधना की, उसी तरह गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी आदि ने भी की है। उनकी परम्परा मे होने वाले अन्यान्य आचार्य भी उसी प्रकार आराधना करते आये हैं।

आचार्यो की इस परम्परा मे पूर्वजो के कठिन सयम रूप तलवार की धार पर चलने वाले पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज हुए हैं। उन्होने अन्यान्य तप तो किये ही लेकिन इक्कीस वर्ष पर्यन्त बेले--बेले पारणा भी किया। इतने लम्बे समय तक वे एकान्तर उपवास करते रहे। वे महापुरुष बारहो मास केवल एक पिछेवडी रखते थे। उस एक पिछौडी को भी बारह महीने तक

चलाने का उनका नियम था। इस प्रकार सघ के नायक बनकर उन्होने मौज नही की, किन्तु अधिक से अधिक त्याग किया, सयम का आदर्श अन्य मुनियो के समक्ष उपस्थित किया और अपनी आत्मा पवित्र बनाई । वे तली हुई वस्तु नही खाते थे और तेरह द्रव्यो के सिवाय अन्य सब द्रव्यो का भी उन्होने त्याग कर दिया था। इससे पता लगता है कि उनका जीवन कितना सयममय बन गया था, उनकी वृत्ति कितनी रूक्ष हो गई थी और त्याग तथा तप किस सीमा तक उनके जीवन मे एकरस हो गये थे।

जो पुरुष पूर्ण रूप से आत्माभिमुख हो जाता है, उसकी आत्मा ही उसका विश्व बन जाती है। उसे अपनी आत्मा मे जो रमणीयता प्रतीत होती है, वह अन्यत्र कही नही। आत्मा मे अध्यवसायो के उत्थान और पतन की जो परम्परा निरन्तर जारी रहती है, उसे तटस्थ भाव से निरीक्षण करने वाले आत्मदृष्टा को बाहरी दुनिया की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नही मिलता। । इसका अर्थ यह नही कि ऐसा अन्तर्दृष्टा पुरुष चौबीसो घन्टे आखे मूदकर स्थिर हो बैठा रहता है। वह शारीरिक धर्म का निर्वाह करता है, अपने उपदेश आदि सार्वजनिक कार्यो मे भी प्रवृत्त होता है, फिर भी उसकी सूक्ष्म दृष्टि भीतर की ओर होती है। बाहरी कार्यो को करते हुए भी इसकी आत्मिक तन्मयता अखडित रहती हे। ऐसी उच्च स्थिति को चाहे वीतराग दशा कहो, चाहे अनासक्ति योग की उच्च भूमिका कहो अथवा स्थितप्रज्ञ अवस्था कहो, यह योगी जनो को प्राप्त होती है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज इसी स्थिति की ओर झुके रहते थे। वे सम्प्रदाय के आचार्य थे, सघ के नियामक थे तथापि निस्पृह भाव उनमे सदव विद्यमान रहता था। उन्हे सघ या चेला वढाने की कतई हवस नही थी। आत्म–कल्याण की भावना ही उनमे मुख्य थी। फिर भी चतुर्विध सघ उसी महात्मा के साथ होता हे जो तप सयम की अधिक आराधना करता हे। पूज्य हुक्मीचन्दजी महाराज उत्कृष्ट सयम पालने और उत्कृष्ट विहार करने के लिए निकल थे इसलिए सघ उस महापुरुष को केसे भूल सकता हे? यही कारण ह कि आज उनका वशवृक्ष इतना विशाल हा गया हे।

पृज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पश्चात् पूज्य श्री शिवलालजी म्हाराज हुए। इन्हाने ततीस वर्ष तक एकान्तर तप किया। उनक बाद पृज्य श्री उदयसागरजी महाराज का उदय हुआ। उनकी आकृति मे इतना माधुर्य था कि उन्हे जो दखना वही आकर्षित हा जाता था। उन जेसा तेजस्वी ओर [illegible] शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो। उन्हाने अपने उत्कृष्ट

आचार और उपदेश द्वारा राजा–महाराजाओ पर तथा गोशमुहम्मद नवाब आदि पर भी अपना प्रभाव डाला था। तदनन्तर पूज्य श्री चौथमलजी महाराज आचार्य पद पर आसीन हुए। उन्होने सम्प्रदाय मे ज्ञान, ध्यान और आचार–विचार मे बहुत उन्नति की। पूज्य श्री चौथमलजी महाराज के बाद पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज आचार्य हुए। शब्दो द्वारा उनका क्या परिचय दिया जाय? उनके तेज, पताप तथा उनकी गम्भीरता और मधुर वाणी का जिसने अनुभव किया है, वह आयु भर उन्हे नही भूल सकता। आज वे हमारे समक्ष नही है, तथापि उनके प्रति अगर हमारी श्रद्धा है, तो वे समीप ही है। इन सब महापुरुषो का स्मरण करने से आत्मा मे शक्ति और धर्म मे रुचि उत्पन्न होती है।

जिस प्रकार सुधर्मा स्वामी से लेकर पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज के समय तक आषाढी पक्खी से 50 दिन पर सवत्सरी होती आई, उसी प्रकार आजकल भी होती है। आज का दिन यही पवित्र दिन है।

सवत्सरी पर्व आत्मा को निर्मल बनाने का अपूर्व अवसर है। छोटी–छोटी बातो मे इस सुअवसर को भूल नही जाना चाहिए। इस दिन समस्त प्राणियो के प्रति निर्वैर होकर–वैर भाव को अन्त करण से अलग करके आत्मा को शुद्ध करना चाहिए। ऊपर से 'खमत–खामणा' करके भी भीतर से वैर को न भूलना, सच्ची 'खमत–खामणा' नही है। सच्ची 'खमत–खामणा' किस प्रकार होती है, इसके लिए ग्रथ मे एक आदर्श बतलाया गया है। वह इस प्रकार है–

चन्द्रप्रद्योतन उज्जैन का राजा था। उसकी विषय–वासना बहुत बढी हुई थी। चन्द्रप्रद्योतन समर्थ पुरुष था, मगर उसमे यह एक बडा दुर्गुण था। यह दुर्गुण भी इतना बढा हुआ था कि उसने राजा उदायन की दासी को लाने का विचार किया। अन्त मे भान भूलकर वह दासी को चुरा लाया। दासी सुन्दरी थी और उसके सौन्दर्य से चन्द्रप्रद्योतन की आखे चौधिया गई। उसे सन्मार्ग दिखाई न दिया। उसने अपने कुलधर्म का भी विचार न किया। मोह मे फसकर मनुष्य कितना मूढ और पतित हो जाता है।

उदायन को जब यह वृत्तान्त विदित हुआ, तो उसने सोचा–अगर चन्द्रप्रद्योतन को दासी की आवश्यकता थी ही, तो वह मुझसे मागता। मगर इस प्रकार चुराकर ले जाना घोर अनीति है और दासी के प्रति अत्याचार भी है। उसने मुझे कमजोर समझकर ऐसा किया होगा। मगर इस अनीति को मुझे

रोकना चाहिए और यह भी बता देना चाहिए कि अनीति सबल होती है या नीति प्रबल होती है?

यह विचारकर उदायन ने चन्द्रप्रद्योतन के पास अपना दूत भेज कर कहलाया—'मेरी चुराई हुई दासी को वापस भेजो और इस दुराचार के लिए क्षमायाचना करो।'

दूत गया। चन्द्रप्रद्योतन ने दर्प के साथ उत्तर दिया—'अच्छे रत्न बलवान् के पास हुआ करते है और होने ही चाहिए। दासी भी जगत् का एक रत्न है। वह मेरे पास ही शोभा देगा। यही विचारकर मै उसे ले लाया हूँ। जिसमे शक्ति होगी, वही इस रत्न का अधिकारी है। अगर उदायन मे शक्ति हो तो ले जाये।'

उदायन श्रावक थे और सोलह देशो के राजा भी थे। उन्हे युद्ध करना अभीष्ट नही था, मगर उन्होने सोचा—अनीति का प्रतिकार न करना राजा के लिए कलक का टीका है। युद्ध के भय से जो राजा अन्याय, अत्याचार होने देगा, वह पृथ्वी को नरक बना डालेगा और अपने धर्म को कलकित करेगा। अपराधी को दण्ड न देना कायरता है। राजधर्म की रक्षा के लिए, न्यायनीति की प्रतिष्ठा कायम रखने के हेतु युद्ध करना ही चाहिए।

इस प्रकार विचारकर उदायन राजा ने अपार सेना लेकर उज्जैन पर चढाई कर दी। उदायन सिंध का राजा था। वहा से उसे उज्जेन पहुचना था। रास्ता काफी लम्बा था। कथानक मे कहा हे कि सेनिको को पानी पीने के लिए प्रभावती रानी ने तीन पुष्कर बनवाये, जिनसे सेना को बडी सहूलियत हुई।

उदायन ओर चन्द्रप्रद्योतन मे लडाई हुई। अनीति अन्तत निर्बल ही साबित होती हे। चन्द्रप्रद्योतन हार गया। उदायन ने उसे पकड लिया। उसने अपने बाण स चन्द्रप्रद्योतन के मस्तक पर अकित कर दिया—'मम दासीपति' अर्थात यह मेरा दास हे।

इतना करके ओर उज्जेन पर अपना झडा फहरा कर उदायन राजा कदी चन्द्रप्रद्योतन को साथ लिय वापिस लोटा। वह उज्जेन से चला कि चातुर्मास के दिन आ गय। उसन दशार्णपुर—वर्त्तमान मन्दसोर म अपना पडाव डाल दिया। उसी जगह सवत्सरी पर्व आ गया। उदायन न आदेश जारी किया— सब प्रकार की हलचल बन्द करक वैर भूलकर इस पर्व की आराधना करो। राजा का आदेश पाकर सेना क सब लोगो न अपनी अपनी भावना ओर रुचि के अनुसार पर्व की आराधना की। यद्यपि चन्द्रप्रद्योतन इस समय केदी

की हालत मे था, फिर भी आखिर वह भी राजा था। अतएव उदायन उसे अपने ही साथ भोजन कराता था।

उदायन सवत्सरी के दिन पौषध करता था। चन्द्रप्रद्योतन पौषध नही करता था और जबरदस्ती पौषध कराना उचित भी नही था। अतएव उदायन ने उससे कहा—'मै कल पौषध व्रत धारण करके धर्मध्यान मे ही अपना समय व्यतीत करूगा । भोजन मै करूगा नही। आपके लिए मै व्यवस्था किये देता हूँ। आप जो चाहे खाए—पीये । रसोइया आपका ही है। आप किसी प्रकार का सकोच न कीजिएगा।'

चन्दप्रद्योतन के प्रति उदायन ने जो स्नेहपूर्ण सद्व्यवहार किया था, वह ऐसा ही था, जैसा एक वीर को दूसरे वीर के साथ करना चाहिए। इस व्यवहार से चन्द्रप्रद्योतन पानी—पानी हो गया। विजेता के प्रति पराजित मे जो विद्वेष पाया जाता है, वह उसमे नही रहा। उदायन के शीतल व्यवहार ने उसके अन्त करण की द्वेषाग्नि शान्त कर दी। चन्द्रप्रद्योतन को यह भी मालूम हो गया था कि उदायन सवत्सरी के दिन परिपूर्ण उदार भावना मे आते है। अगर इस अवसर पर मेरी बेडी कट गई तो कट गई, अन्यथा नही कटने की। कल मेरे लिए अद्वितीय अवसर है। सवत्सरी का दिन ही मेरी मुक्ति का द्वार है।

यद्यपि चन्द्रप्रद्योतन को सवत्सरी की आराधना नही करनी थी, फिर भी अपना मतलब गाठने के लिए उसने उदायन से कहा—'मैं भी आपकी भाति क्षत्रिय हू। आप जो धर्म मानते हैं, वही मैं भी मानता हू। ऐसी स्थिति मे जब आप पौषध करेगे, तो मैं भी क्यो नही करूगा?'

उदायन ने कहा—'आप पौषध करे। यह अच्छी बात, परन्तु देखा—देखी करने पर अगर भूख लग आई तो कठिनाई होगी। आप विचार देखिये।'

चन्द्रप्रद्योतन को अपना प्रयोजन सिद्ध करना था। उसने कहा—'मै क्षत्रिय हूँ। एक दिन भूखा रहना कौनसी बडी बात है? एक दिन के उपवास से मरा थोडे ही जाता हूँ। मै महीना भर भूखा रहने पर भी नही मर सकता। आप चिन्ता न करे। मै पौषध ही करना चाहता हूँ।'

उदायन ने कहा—जैसी आपकी इच्छा।

पोषधशाला मे घास के दो 'सथारे' बिछाये गये।

घास के सथारे मे बडा गुण है। गीता मे भी इसकी प्रशसा की गई है। आजकल भी लोग पौषध करते हैं मगर घास का सथारा कौन रखता है? ऐसी दशा मे हम साधुओ को भी घास का सथारा कैसे मिल सकता है?

महाव्रतो की क्रिया ठीक–ठीक तभी पलती है, जब अणुव्रती हो। अणुव्रती न हो तो महाव्रतो का पालन करना कठिन होता है। घास के सथारे का उपयोग करने मे अनेक लाभ वतलाये गये हैं। शास्त्र मे कहा है–

"दब्भसंथारं सथरेई।"

अर्थात्–दर्भ–डाभ का सथारा विछाता है।

गीता मे भी कहा है–

"चेलाजिन कुशोत्तर।"

प्राचीन समय मे कुश का ही आसन बिछाया जाता था। वास्तव मे घास छोटी चीज भी नही है। आम, केला और अनार आदि बडी समझी जाने वाली चीजो पर दुनिया नहीं जीती, दुनिया जीवित है तृण पर । उदाहरणार्थ–एक देव ने किसी पुरुष से कहा–मै तुझ पर सतुष्ट हूॅ। तू चाहे तो जौ, गेहूॅ आदि के पौधे माग ले और चाहे आम, अनार आदि वृक्ष माग ले। वह पुरुष दयालु था। उसने देव से कहा–'आम, अनार आदि से किसी अमीर का थाल भले ही सज जाय, लेकिन सर्वसाधारण का काम तो जौ, गेहूॅ आदि से ही चल सकता है। आम, अनार आदि के अभाव मे कोई मर नही जाता, लेकिन गेहूॅ, जौ आदि न मिलने पर तो मर जाना होगा। अतएव मुझे आम, अनार आदि के बडे–बडे वृक्षो की आवश्यकता नही, मेरे लिए तो गेहूॅआदि के छोटे–छोटे पौघे ही भले है।' ये छोटे पौधे वैसे तो तृण ही है, लेकिन सबका जीवन इन्ही पर अवलम्बित है। इस कारण उस पुरुष ने तृण ही मागना उचित समझा।

घास पर पौषध करने से निरभिमानता आती है, विलासवृत्ति मे न्यूनता होती है और मनुष्य अपने आपको एक भिन्न प्रकार की पवित्र स्थिति मे अनुभव करने लगता है।

दोनो राजाओ ने पौषध किया। चन्द्रप्रद्योतन पोषध की विधि नही जानता था, किन्तु वह उदायन का अनुकरण करता रहा। उदायन ने प्रतिक्रमण किया और समस्त जीवो से क्षमायाचना करके और अपनी ओर से क्षमादान करके चन्द्रप्रद्योतन से कहा–'बन्धु! मोहनीय कर्म अतिशय विचित्र है। ऐसा न होता तो मेरी दासी के प्रति आपके मन मे दुर्भावना क्यो उत्पन्न होती? कहा आप उज्जैन के राजा और कहा एक साधारण दासी! मुझे अपने राजधर्म का पालन करने के लिए युद्ध करना पडा। आप मेरी जगह होते तो आपको भी यही करना पडता। मगर ससार की लीला विचित्र हे। मेरे हृदय मे आपके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही है। "बीती ताहि बिसारि के, आगे की सुधि

लेहु।' जो हुआ सो हुआ। सब पकार का वैरभाव भूलकर मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।'

अपराध था चन्दपद्योतन का, और क्षमायाचना करता है उदायन। पराजित और बन्दी राजा के पति विजेता शूरवीर की यह क्षमा–पार्थना क्या कम महत्व रखती है? क्या यह साधारण घटना है? हृदय की यह निर्मलता, यह निरभिमानता और यह विशुद्धता धर्म का ही पताप है। चन्दप्रद्योतन का पताप, सैन्य और शस्त्र जिस पुरुष के एक रोम मे भी भय का सचार न कर सके, वही पुरुष आज अपने बन्दी के प्रति यह नम्रता प्रदर्शित करता है। इस पकार के ज्वलत उदाहरणो के होते कौन कह सकता है–'क्षमा कायर का शस्त्र है!' उदायन का यह उदार चरित्र 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' की स्पष्ट घोषणा करता है। सचमुच जो धर्म को जानता होगा, वही पहले नमेगा।

उदायन को इस प्रकार क्षमायाचना करते देख चन्द्रप्रद्योतन चकित रह गया। मगर तत्काल ही उसे अपने प्रयोजन का ध्यान आ गया। उसने सोचा–बस, यही अवसर है। चूकना ठीक नही।

यह सोचकर चन्द्रप्रद्योतन ने कहा–'महाराज! आप क्षमायाचना कर रहे है, यह आपका बडप्पन है। मगर राज्य छिन जाने के कारण मेरा तो कलेजा जल रहा है। मै भीतर से कैसे क्षमा करू? अन्त करण साथ न हुआ, तो अकेली जीभ से की गई क्षमा का मूल्य ही क्या है? इस प्रकार का ढोग मै नही करना चाहता। आप क्षमा चाहते है और मुझे क्षमा दे रहे है तो आप अपनी दासी ले लीजिए और मेरा राज्य मुझे लौटा दीजिए। अपराध किससे नही हो जाता? मै अपनी मूढता के लिए लज्जित हूँ।'

आपकी राय मे उज्जैन का राज्य लौटा देना उदायन के लिए उचित होगा? आपसे तो लडकी के पैसे भी नही छूटते! आप कन्या–विक्रय करने मे नही हिचकते और उदायन से राज्य छोडने के लिए कहते हो? क्या यही न्याय–सगत है? याद रक्खो धर्म को हारने से और पाप करने से कोई धनवान् नही होता।

उदायन वीर पुरुष था। उसने सोचा–'धर्मद्वार पर यह याचना करता है और अपना अपराध भी स्वीकार करता है। ऐसी दशा मे अनुदारता दिखलाना उचित नही है। यह पहले मान गया होता तो इतनी बात ही न बढती और न रक्तपात होता। पहले न मानने का दण्ड इसे मिल गया है। यह कुलीन राजा है। यद्यपि इसका नैतिक पतन हुआ है, फिर भी आज यह मेरा

सहधर्मी बना है। यह अहकार से ही लडा था और अब इसका अहकार गल गया है। अब झगडे की जड ही क्या रही?

उदायन ने प्रकट मे कहा—'अच्छी बात है। अब मैं और तुम पहले के समान हैं। मै अभी पौषध मे हूँ, अधिक कुछ नही कह सकता। हा, यह समझ लो कि अब मेरे और तुम्हारे बीच कोई वैर—विरोध नहीं है। मेरा वैर सिर्फ अधर्म से था और तुमने उसका त्याग कर दिया है। अब कोई विरोध नही रहा।'

उदायन ने चन्द्रप्रद्योतन के प्रति उदारता प्रदर्शित की, जिससे वह सुधर गया। जिस दिन उदायन ने उदारता दिखाई थी, वही दिन आज भी है। जब राज्य की लडाई भी मिट गई तो तुच्छ बातो की लडाई कब तक मचाये रहोगे? आप भी वैर भूल जाओ। परस्पर मे प्रेम का निर्मल झरना बहाओ, जिससे तुम्हारा और दूसरो का सताप मिट जाए, शान्ति प्राप्त हो और अपूर्व आनन्द का प्रसार हो। लेन—देन मे, बोल—चाल मे, किसी से कोई झगडा हुआ हो, मनमुटाव हुआ हो, कलह हुआ हो तो उसे भुला दो। किसी प्रकार की कलुषता अन्त करण मे मत रहने दो। चित्त के विकारो की होली कर दो, आत्मिक प्रकाश की दीपमालिका जगाओ, प्राणी मात्र की रक्षा के बन्धन मे बध जाओ तो इस महा महिमामय पर्व मे सभी पर्वो का समावेश हो जायेगा।

अन्त मे दोनो राजा मित्र हो गये। उदायन ने सोचा 'इसका राज्य लिया है तो तरकीब से लौटाना ठीक होगा, जिससे आगे का व्यवहार भी अच्छा रहे।' यह सोचकर चन्द्रप्रद्योतन को अपनी राजधानी मे ले गया। वहा पहुचकर उदायन ने अपनी कन्या उसे ब्याह दी और दहेज मे उज्जैन का जीता हुआ राज्य दे दिया।

उदायन और चन्द्रप्रद्योतन क्षत्रिय थे और आप भी क्षत्रिय है। आप व्यापार करने के कारण वणिक् बन रहे है लेकिन अपने क्षत्रियत्व को याद करो। अपने पूर्वजो के वीरतापूर्ण कारनामो पर दृष्टि दौडाओ, जिनकी गौरव—गाथा से राजस्थानी साहित्य और भारतीय साहित्य भरा पडा है। बडे—बडे राजा—महाराजा आपके पूर्वजो की असाधारण वीरता देखकर दातो तल उगली दबाते थे। उन्होने देश के दुश्मनो के दात खट्टे किये थे। एक दिन ऐसा था जब आपके पूर्वजो की शूरता और वीरता से धरती काप उठती थी। उनकी भृकुटी चढी देखकर बडे—बडे सेनापतियो की छाती मे धडकन पैदा हो जाती थी। अपने पूर्वजो की वीरता का अनुकरण करके सवत्सरी पर्व मनाओगे तो धर्म का तेज खिल उठेगा। धर्म की प्रभावना होगी ओर महिमा वढेगी। उस समय आपकी क्षमा—प्रार्थना का मूल्य वढ जायगा।

आपको एक कामधेनु मुफ्त मिल रही है। वह गाय बडी कल्याणकारिणी है। जिस प्रकार गाय के चार स्तन होते है, उसी प्रकार उसके भी दान, शील, तप और भाव रूप चार स्तन है। इन चारो स्तनो से दूध निकलता है। लोक–प्रसिद्ध कामधेनु आज दिखाई नही देती लेकिन मैं जिस कामधेनु का जिक्र कर रहा हूँ वह कामधेनु की सगी बहिन मगर उससे भी बढी–चढी है। वह भावना रूपी गाय है। भावना रूपी गाय आपके पास आई कि आप निहाल हो जायेगे। आपको उससे जीवदया का अमृत मिलेगा। आप प्राणी मात्र पर दया करना सीख जाएगे। उसे पाकर आप धन की रक्षा करने मे ही जीवन की सार्थकता नही समझेगे, किन्तु जीवो की रक्षा को प्रधानता देगे। उस गाय की पूछ पकड कर आप वैतरणी तर जाओगे। यही नही, वह आपको ऐसे स्थान मे पहुचा देगी, जहा किसी प्रकार की आधि नही, व्याधि नही उपाधि नही, जहा मगल ही मगल है, जो महामगल का धाम है, जहा अमगल की पैठ ही नही।

जिस तरह दूसरे के बच्चे को जाते देखकर लोग अपने बच्चे को जोर से पकडते हैं, उसी तरह दूसरे का धन जाते देखकर अपने धन से चिपटते है लेकिन इस प्रकार चिपटने पर भी धन जो जाने को है, वह तो जाता ही है–रुकता नही है। जब धन जाने वाला ही है तो उससे सुकृत ही क्यो नही कर लेते?

खोला माथी धन खोयो, धूलथी कपाल धोयो,
जान पायो तारो रे, पामर प्राणी चेते तो चेताऊं तोने रे।
हजी हाथमा छे बाजी, करी ले प्रभु ने राजी,
तारी पूजी होवे साजी रे।।पामर ।।
खखेरी ने हाथ खाली, पछी तारे जावु छे चाली।
करे माथा कूट खाली रे।।पामर ।।

जड पदार्थो की उपासना के लिए नहीं है। दया–दान की ओर ध्यान दो। दीक्षा लेने से पहले तीर्थंकर अन्य वातो से तो ममता उतार दिया करते हैं लेकिन दान से तो वे भी ममत्व नहीं उतारते। तीर्थंकर एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुहरे प्रतिदिन एक वर्ष तक दान दिया करते हैं और फिर दीक्षा लेते हैं। दान करने से दिवाला नही निकलता, दिवालियापन लाने के कारण तो और ही होते हैं।

परिहितचिन्ता मैत्री, परदु ख निवारिणी तथा करुणा।
परसुखतुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा।।

अर्थात्–पर के हित का चिन्तन करना मैत्री भावना है, दूसरो के दु ख को दूर करना करुणा भावना हे, दूसरो को सुखी देखकर सन्तुष्ट होना प्रमोद भावना है और दूसरो के दोषो की उपेक्षा करना मध्यस्थ भावना है।

कौन जीव किस भावना का पात्र है, यह अमितगति आचार्य ने बतलाया है–

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थमावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

हे प्रभो! मेरी आत्मा का स्वभाव ऐसा बन जाय कि वह प्राणी मात्र से मित्रता धारण करे, सद्‌गुणी पुरुषो को देखकर प्रमोद हो, दुखी जीवो पर करुणाभाव हो और प्रतिकूल आचरण करने वालो पर मध्यस्थता रहे। प्रभो! ये भावनाए मुझ मे सदैव रहे–अन्त करण इनसे निरन्तर व्याप्त बना रहे।

मित्रो! इन चार भावनाओ मे धर्मशास्त्र का सार गर्भित हो जाता है। चार पैर वाली या चार स्तन वाली इस भावना रूपी कामधेनु का सेवन करोगे तो परम कल्याण के भागी बनोगे ।आज विशेष रूप से मैत्री भावना के सेवन का दिवस है। आज आप यह पाठ पढेगे –

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झं ण केणइ।।

इस पवित्र पाठ का उच्चारण केवल, जिह्वा से न हो, अन्त करण से यह ध्वनि निकले और इसका अर्थ आपके जीवन मे ओतप्रोत हो जाय, आपको यह ध्यान रखना हे। सब जीवो से मैत्री करने पर हिन्दू, मुसलमान, पशु, पक्षी या कौन जीव उसमे शामिल नहीं होते? एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जीवो का इनमे समावेश हो जाता हे। क्या आप सब जीवो के साथ मैत्री रखना चाहते हें? अगर यह मैत्री न निभा सके, तो यह पाठ केवल शाब्दिक ही रह जायेगा।

बहुत से लोग सोचते हैं कि सबके प्रति मैत्रीभाव धारण करने से भूखो मरना पडेगा, कयोकि फिर किसी की गाठ काटने का अवसर नही रहेगा। गाय को मित्र बना लिया तो उसके बछडे को अलग करके उसका दूध नही निकाल सकते। इसी प्रकार घोडा मित्र हो गया तो उस पर सवारी किस प्रकार कर सकेगे? नौकरो से सेवा लेना भी कठिन हो जायगा। इस प्रकार की विचारधारा भ्रान्तिपूर्ण है। क्या गाठ काटे बिना भरपेट भोजन नही मिल सकता? न्याय नीति से आजीविका चलाने वाले क्या भूखे मरते है? क्या इसका अर्थ यह नही है कि इस ससार मे न्याय और धर्म का त्याग करके ही जीवन कायम रक्खा जा सकता है? आनन्द जैसे श्रावको का चरित्र देखेगे, तो मालूम होगा कि यह भय सर्वथा निराधार है। इसी तरह घोडा या बैल पर उसकी शक्ति से अधिक बोझा लादे बिना आपका काम क्यो नही चल सकता? बेचारे बछडे को अपनी माता का थोडासा दूध पी लेने दोगे तो क्या तुम्हारे बाल–बच्चे बिना दूध ही रह जाएगे? मित्रो! यह सब निर्बलता और अनुदारता के विचार हैं। जिस समय आपकी वृत्ति मे पूरी तरह नैतिकता आ जायेगी, तब एक क्षण के लिए भी दूसरे के प्रति अत्याचार कर अपने स्वार्थसाधन का विचार न उठेगा।

अगर सब जीवो को मित्र बनाने से काम नही चलेगा तो क्या सबको शत्रु मानने से ससार का काम ठीक चलेगा? अगर आपका यह विचार हो कि सबको शत्रु बनाने से ही ठीक काम चल सकता है तो आप भी सब के शत्रु माने जायेगे और इस दशा से ससार मे एक क्षण का जीवन भी कठिन हो जायेगा। सबको मित्र बनाने से क्या फल होता है और शत्रु बनाने का परिणाम क्या निकलता है इसके लिए एक उदाहरण लीजिए।

किसी दातार ने चार ब्राह्मणो को एक गाय दी। चारो ब्राह्मण भाई–भाई थे मगर अलग–अलग हो गये थे। उनके चूल्हे अलग–अलग जलते थे और दरवाजे भी अलग–अलग हो गये थे। दान मे मिली हुई गाय पहले बडे भाई के यहा लाई गई। उसने सोचा–'गाय को आज मैं खिलाऊगा तो कल उसका दूध होगा। वह दूध मेरे किस काम का? कल वह दूसरे के यहा चली जायेगी और वही कल दूध दूहेगा। ऐसा सोचकर उसने दूध तो दुह लिया, मगर खाने को नही दिया। दूसरे दिन दूसरा भाई गाय अपने घर ले गया। उसके मन मे भी यही विचार आया–कल यह दूसरे के घर चली जायगी, फिर आज खिलाने से मुझे क्या लाभ है? कल का दूध तो मुझे मिलना नहीं। अतएव [illegible] का दूध ले लू। कल वह आप खिलाएगा। ऐसा सोचकर उसने

भी दूध दुह लिया और खाने को नही दिया। शेष दो भाइयो के घर भी यही हुआ। भूख के मारे गाय की हड़्डिया निकल आईं। चार ही रोज मे गाय का काया कल्प हो गया। उसकी दुर्दशा देखकर लोग कहने लगे– ये ब्राह्मण हैं या कसाई! इन्हे गाय की रक्षा करते हुए दूध लेना था, मगर ये तो इसका खून पीने पर उतारू हो गये हैं।

इसी प्रकार किसी दूसरे दाता ने किन्ही अन्य चार भाइयो को गाय दी। उन्होने सोचा–'दाता ने उदारता–पूर्वक, कृपा करके हमे गाय दी है तो हम उसे माता के समान मानकर उसकी रक्षा करेगे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न देगे।' इस प्रकार विचार कर उन्होने गाय को खिलाया–पिलाया। उन्हे दूध भी मिला और गाय की रक्षा भी हुई।

एक समाचार पत्र मे लिखा था–स्पेन देश मे गाय का दूध निकालते समय एक साहब मधुर बाजा बजाता था और उसकी पत्नी दूध दुहती थी। जव उनसे ऐसा करने का कारण पूछा गया तो उत्तर मिला–गाय प्रेम से दूध देती है। इसी कारण हम इसे बाजा सुनाते और मेवा खिलाते है। गाय इससे प्रेममग्न हो जाती है, तब प्रसन्नतापूर्वक दूध देती है। भारतवर्ष मे भी अनेक लोग दुहने से पहले उसे स्नेह से पुचकारते है और उस पर प्यार का हाथ फेरते है।

गाय को खाना न देने वाले ब्राह्मण दूध से वचित रहे और लोकनिन्दा के भागी हुए। मगर जिन्होने गाय की सेवा की, उन्होने दूध भी पाया और प्रशसा भी पाई।

आप दूसरो को शत्रु मानेगे तो आपको मित्र कौन मानेगा? और उस दशा मे आप भी सुखी किस प्रकार हो सकते है? आप परहित करेगे, करुणा करेगे, पर के प्रति मैत्रीभाव धारण करेगे तो आपको भी आनन्द होगा और दूसरो को भी आनन्द होगा।

हम साधुओ के लिए सभी जीव मित्र हैं। गृहस्थ तो कदाचित् स्वार्थ के कारण किसी से मित्रता करते होगे, कदाचिद् अस्थि और चर्म अर्थात् शरीर के मित्र होते होगे, किन्तु साधु आत्मा के मित्र हैं। अतएव साधु के लिए किसी से किसी तरह का भेद–भाव नही होता, उनके लिए सभी जीव समान रूप से मित्र है।

सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।
कर्म–मैल को अन्तरो, बूझे बिरला कोय।।

हम साधु लोग गाय, कीडी, मनुष्य और परमात्मा को कर्मउपाधिरहित असली स्वरूप मे देखते है। व्यवहार मे कर्म–मल का अन्तर है लेकिन निश्चय मे तो सभी जीव समान स्वरूप के धारक है। जो ऐसा मानेगा, वह किसी जीव का अपमान नही करेगा, किसी के प्रति शत्रुता धारण नही करेगा। आपका मित्र आपको दो बुरी बाते कह दे, तो भी आप उसका भला ही चाहेगे, बुरा नही चाहेगे। हो सकता है, कि ऐसा करने वाले को आप मित्र न माने, लेकिन हम तो अपने को थप्पड मारने पर भी मैत्रीभाव ही रक्खेगे। हमे किसी से भी द्वेष नही हो सकता। व्यवहार तो रखना ही होता है, लेकिन निश्चय मे यथार्थ मे सभी से प्रेम है। सन्त, सती, श्रावक और श्राविका आदि सभी पर मेरा समभाव है। आप भी अपनी मित्रता की जाच करो और यह भी सोचो कि आपके ऊपर किस–किस का उपकार है? अपने ऋण को किस दृष्टि से देखना चाहिए, यह बात एक उदाहरण से समझाता हू।

मानसरोवर के किनारे पर एक हस बैठा हुआ था। उधर से एक कवि निकला। कवि ने कहा हे राजहस! मै तेरे गुण गाऊ या मानसरोवर के? दोनो मे से किसे बडा कहूँ? तेरा मानसरोवर पर क्या उपकार है, यह बात न बतला कर आज मै सिर्फ यही बतलाता हू कि तुझ पर मानसरोवर का कैसा कर्ज है? राजहस, तू ने इस सरोवर का कमलकद खाया है। इसमे उगे हुए कमल के पत्तो पर तू बैठा है और तूने कमल के पराग से सुगन्धित जल पिया है। तूने इस सरोवर के मोती चुगे है। अब तुझे यह देखना है कि इस ऋण को तू किस प्रकार चुकाता है? बता, तू सरोवर का क्या प्रत्युपकार करता है जिससे तेरा कर्ज चुक जाय?

कवि के प्रश्न का बेचारा राजहस क्या उत्तर दे सकता था? उसे स्फुट वाणी प्राप्त नही है। लेकिन मै कहता हू कि राजहस यह कह सकता था–'मेरे सामने दूध और पानी मिला हुआ आ जाय तो मैं दोनो को अलग–अलग कर दूगा। अगर मै अपना कर्तव्य न पालू तो कृतघ्न हू।'

राजहस की ओर से कही हुई बात सुन कर कवि कहता है–ठीक है। ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा ही होने से तू राजहस कहलाएगा और तुझ पर मानसरोवर का जो ऋण है वह उतर जायेगा।

लगभग ऐसी ही बात मैं अपने लिए भी देखता हू। यह सघ मेरे लिए मानसरोवर है। मे हस की तरह इसका आश्रय लेकर बैठा हू। मैं इस सघ का खाता–पीता हू और सघ मेरे शरीर की रक्षा करता है। शास्त्र मुझसे पूछता

है—सघ का यह ऋण लिया तो इसे चुकाओगे किस प्रकार? इसके बदले कौन—सा प्रत्युपकार करोगे?

इस विषय मे गुरु हमे शिक्षा देते हैं—हे साधु, तू अपना साधुपन पाल। यह सघ इसीलिए तुझे भोजन, पानी आदि की सहूलियत देता है। जैसे हस मे दूध—पानी को अलग करने का गुण है और इस गुण के द्वारा वह अपना ऋण चुकाता है, उसी प्रकार तू ध्यान—मौन की सहायता से, शास्त्र का मनन करके, धर्म—अधर्म और पुण्यपाप की अलग—अलग व्याख्या करके सघ को समझा, तो सघ के ऋण से तू मुक्त हो जायेगा। ऐसा करना साधु का धर्म भी है। इस धर्म का पालन करने पर साधु को देने वाले और लेने वाले साधु—दोनो ही सद्‌गति पाते हैं अतएव मैं यदि असत्य के काटे हटाकर सघ को सत्य की शिक्षा दूगा तो मेरा धर्म रहेगा। यदि मैं खुशामद मे पड जाऊगा तो मुझ पर सघ का ऋण रह जायेगा और भगवान् का ऋण भी में नही चुका सकूगा।

श्रावको को भी अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। हाकिम रियासत के पीछे होता है और धनवान, गरीब की बदौलत होता है। आप धनवान् है तो क्या हुआ, आप पर गरीबो का ऋण है। आपके ऊपर जिनका ऋण बढा है, उनका हित करके ही आप उसे चुका सकते हैं। अगर आप गरीबो पर दया न रक्खेगे और उनकी कठिनाई का ख्याल न करेगे तो आपके ऊपर ऋण चढा रह जायेगा और जब उनके पास ही न रहेगा तो आपके पास कहा से आएगा? अतएव आप भी कवि के राजहस के समान बने। गरीबो का उपकार मानो। अकडकर पगडी बाधने मे ही मत रह जाओ। आप जिस पगडी पर गर्व करते हैं और जिस हवेली को अपनी कहते है, उस पगडी का सूत और हवेली की एक ईट भी आपकी नही हे। आप उस हवेली की गिरी हुई एक ईट भी नही लगा सकते। फिर यह क्यो नही मानते कि यह घर गरीबो का ही है, मेरा नही? मित्रो! जिन गरीबो ने नाना कष्ट सहन करके आपको रईसी दी है और जिन पशुओ की बदौलत आप पल रहे हैं, उनके प्रति कृतज्ञ होकर प्रत्युपकार क्यो नही करते? क्या साहूकार कहलाकर भी ऋण चुकाना आपको अभीष्ट नही है?

उपदेश देना साधारण बात नही है। यह अत्यन्त दुष्कर उत्तरदायित्व का काम हे—यो तो—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की कहावत प्रसिद्ध हे। सस्कृत मे कहा है—

परोपदेशे पाण्डित्य, सर्वेषा सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठान, कस्यचित्तु महात्मन ।।

अर्थात्—दूसरो को उपदेश देना सबके लिए सरल बात है, लेकिन धर्म का आचरण करने वाले महात्मा पुरुष विरले ही होते है।

सच्चा उपदेशक वह नही है जो दूसरो के सामने बडीबडी बाते बधारता है मगर आचरण कुछ भी नही करता। सच्चा उपदेशक पहले आत्मा की ओर ध्यान देता है। वह जिन बातो को अपने व्यवहार मे ले आता है, उन्हे दूसरो के सामने प्रस्तुत करता है। ऐसा किये बिना उपदेश प्रभावशाली नही हो सकता। इसी दृष्टि से कहता हू कि उपदेश देना तलवार की धार पर चलने के समान है।

उपदेश देने मे एक कठिनाई और भी है। सब श्रोताओ का विकास एक सा नही होता। कोई श्रोता अपनी असमर्थता से अथवा अन्य किसी कारण से कोई दुर्व्यसन न छोडे मगर अपने दुर्व्यसन की निन्दा सुनकर उसे बुरा लग सकता है। वक्ता का आशय निर्मल होने पर भी श्रोता को कदाचित् मानसिक क्लेश भी पहुचने की सम्भावना रहती है। मेरे उपदेश के कारण किसी को अरुचि हुई हो, बुरा लगा हो, किसी भी प्रकार से मेरे निमित्त से कोई खेद हुआ तो मै अपने सद्विचार से और अनन्त सिद्धो की साक्षी से, उन सबसे क्षमायाचना करता हूँ।

मित्रो! जिस प्रकार उदायन ने अपने अपराध के लिए क्षमा—प्रार्थना की थी, उसी प्रकार आप भी अपने अपराधो के लिए क्षमा—प्रार्थना कीजिए। क्षमा मे लोकोत्तर शक्ति मौजूद है। हजारो सिर कटने पर भी जो काम नही हो सकता, वह क्षमा का आश्रय लेने से सहज ही हो जाता है।

आज अपूर्व अवसर है। कौन जानता है कि जीवन मे ऐसा धन्य दिवस कितनी बार आएगा? अथवा आएगा ही नही? इसलिए इसका सदुपयोग करके अन्तःकरण की मलिनता धो डालो। आत्मा को स्वच्छ स्फटिक के समान बना लो। ऐसा करने से आपका महान् कल्याण होगा। क्षमा का सुदृढ कवच धारण कर निर्भय बन जाओ।

क्षमा—खड्गं करे यस्य, दुर्जन कि करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति।।

जिस शूरवीर पुरुष के हाथ मे क्षमा की तलवार है, उसका कोई कुछ भी नही बिगाड सकता। कौन नही जानता कि तृण—रहित स्थान मे पडी आग आप ही ठडी हो जाती है।

यह बात स्मरण रक्खो और महान् कल्याण के भागी बनो।

कहां से कहां ?

रे जीवा ! विमल जिनेश्वर सेविए !

भगवान् विमलनाथ की यह प्रार्थना है। परमात्मा की सच्ची प्रार्थना करने वालो के हृदय मे जब भावोद्रेक होता है और अन्य जीवो के कल्याण की कामना उद्‌भूत होती है। तब वे अपनी प्रार्थना को शब्दो के साचे मे ढाल देते है।

सब लोग उसे नही समझ सकते। अतएव शास्त्र मे कही हुई वे बाते सरल भाषा मे, प्रार्थना की कडियो द्वारा प्रकट की गई है। लोक मे बलवान् की खुराक कुछ और होती है तथा निर्बल की खुराक और ही। निर्बल को उसी के अनुरूप खुराक दी जाती है। प्रार्थना मे वही बात सरल करके बतलाई गई है, जो भगवान् ने गौतम स्वामी से कही थी, जिससे कि सब सरलतापूर्वक समझ ले।

अपनी पुरातन स्थिति पर विचार करो कि अपनी स्थिति पहले कैसी थी? प्रभो! मै पागलो मे भी पागल था। अब मेरी आत्मा मे जो ज्ञान हुआ है, उससे मै समझ पाया हू कि मैंने कितनी स्थितिया पार की है और अब इस स्थिति मे आया हू। एक समय मै निगोद मे निवास करता था, निगोद मे ऐसे ऐसे जीव है जो आज तक कभी एकेन्द्रिय पर्याय छोडकर द्वीन्द्रिय पर्याय भी नही पा सके है।

मित्रो! अपनी पूर्वावस्था पर विचार करो। इससे अनेक लाभ होगे। प्रथम यह हे कि आपको अपनी विकासशील शक्ति पर भरोसा होगा और दूसरे आप अपनी मौजूदा स्थिति का महत्व भलीभाति समझ सकेगे। तीसरे पूर्वावस्था पर विचार किये बिना परमात्मा की प्रार्थना भी यथावत् नही हो सकती। आप यह न समझ लो कि हम पहले कही नही थे ओर मा के पेट

से नये ही उत्पन्न हो गये हैं। आप अपनी अनादि और अनन्त सत्ता पर ध्यान दीजिए।

हे आत्मन्! तेरा ननिहाल निगोद मे है। तेरे साथ जन्मने और मरने वाले तेरे अनेक साथी अब तक भी वहा हैं। लेकिन न जाने किस पुण्य के प्रताप से तू उस अवस्था से बढते–बढते यहा तक आ पहुचा है। एक वह दिन भी था, जब एक समय मे अठारह बार जन्मना–मरना पडता था।, मगर कौन सी स्थिति जागी और कैसे क्या हुआ कि तेरा उत्थान हो गया? यह ज्ञानी ही जानते है। तथापि तेरा महान् उत्थान हुआ है और तू इस स्थिति पर आ पहुचा है कि तुझे विवेक की प्राप्ति हुई है–ज्ञान मिला है। फिर क्या यहा से नीचे जाएगा? अगर ऐसा हो तो ज्ञान की प्रशसा की जाय या अज्ञान की? अतएव तुझे देखना चाहिए कि ज्ञान पाकर तू क्या करता है? तू अपनी असलियत को, स्वरूप को भूल रहा है और वाहियात वस्तुओ का लालची बन रहा है। किसी समय निगोद का निवासी तू विकास पाते–पाते यहा तक आया है। तुझे मानव–शरीर मिला है, जो ससार का समस्त वैभव देने पर भी नही मिल सकता। सम्पूर्ण ससार की विभूति एकत्र की जाय और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तो क्या ऐसा होना सम्भव है? नही। त्रैलोक्य के राज्य के बदले भी कोई एकेंद्रिय से द्वीन्द्रिय नही बन सकता। इतनी अनमोल स्थिति तुझे मिली है। इस स्थिति की महिमा समझ और ऐसा प्रयत्न कर कि अब पीछे लौटने का समय न आवे। साथ ही अपनी उस पहली स्थिति का भी स्मरण रख, अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को बुरे काम से बचाकर परमात्मा की प्रार्थना मे लगा दिया जाय तो मनुष्य–जन्म सफल हो सकता है। इसीलिए कहा है–

रे जीवा ! विमल जिनेश्वर सेविये,
थारी बुद्धि निर्मल होय जाय रे जीवा।
विषय – कषाय निवार ने,
तू तो मोहनी कर्म खपाय रे जीवा।।

रे चिदानन्द! अब क्या देखता है? जिस प्रभु ने तुझे तेरी भवस्थिति बतलाई है, उसकी सेवा मे तन्मय हो जा। उसकी सेवा से तुझे क्या मिलेगा? ससार के लोगो की यह हालत है कि किसी भी काम मे लोभ या भय के बिना काम नही होते। विचार करो कि जो भवस्थिति तूने सुनी है उससे बडा भय या लोभ और क्या हो सकता है? भय यह कि कही ऊची स्थिति से गिर कर

नीची स्थिति मे न पड जाऊ। इस प्रकार का भय रखने से तुझमे परमात्मा की सेवा करने की रुचि उत्पन्न होगी।

यो तो भय ओर लोभ–दोनो ही बुरे हैं, लेकिन आज जो अप्रशस्त लोभ और भय कर रहा हे, उन्हे पलट देने से वे भी लाभप्रद हो सकते हैं। जन्म–मरण आदि का भय रखो और जन्म–मरण से बचने का लोभ रखो तो यह अच्छा ही होगा।

क्या आपको मरने का भय नही है? जीवन का वडे से वडा खतरा मृत्यु है। समस्त पृथ्वीमण्डल को अपनी भृकुटि से भयभीत कर देने वाले ओर अपनी उगलियो पर नचाने वाले वीर भी मृत्यु के स्मरण मात्र से काप उठते हैं आकाश मे स्वच्छन्द विहार करने वाला और समुद्र के वक्षस्थल को चीर कर उसमे किलोले करने वाला, बिजली जेसी अद्भुत शक्ति को अपने अधीन बनाने वाला मनुष्य भी मृत्यु के सामने दीन बन जाता हे, मृत्यु के आगमन की सभावना से ही मानो आधा मर जाता हे। जब एक भव के मरण का भी इतना भय लगता है तो फिर बारम्बार जन्मने–मरने का भय क्यो नहीं लगता? इस भव को दु ख रूप क्यो नही मानते? एक बार मार कर धन छीन लेने वाले का भी आपको भय होता है तो फिर बार–बार अपने सर्वस्व के लुटने का भय क्यो नही है? अतएव पारमार्थिक विचारो को सामने रखकर आप पाप से डरो। पाप से डरोगे तो अन्य समस्त डर आपसे ही डरने लगेगे। आप पूरी तरह निडर हो जाओगे। कोई भी भय आपके पास न फटक सकेगा।

मगर लोगो की चाल उलटी हो रही हे। वे पाप से डरते नही, धर्म से डरते हैं। साचते हैं–धर्म का यह काम करेगे तो कही ऐसा न हो जाए! धर्म–स्थानक मे जाने पर कोई किसी किस्म की टीका न कर बेठे! कई लोगो को वेश्या के नाच–गान मे जाते समय तो भय रहता नही, केवल सत्सग मे जाते समय भय लगता हे। इसीलिए ज्ञानी कहते हैं कि–'हे जीव! पाप से डर! मृगापुत्र ने अपनी माता से कहा था–

जरामरणकातारे चाउरते भयावहे।

मए सोढाणि भिमाणि, जम्माणि मरणाणि य।।

मृगापुत्र ने कहा–'हे माता! इस चार–गति रूप भय उत्पन्न करने वाले जरा–मरण रूपी जगल मे मुझे डर लगता हे। इसलिए इन्द्रियभोगो मे मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। तू मुझे विषयो मे प्रवृत्त करना चाहती हे लेकिन मुझसे यह केसे हो सकता हे? मा, मुझसे यह नही होगा।'

ऐसा कहकर उन्होने जन्म–मरण से भय और विषयो मे प्रवृत्त होने से सकोच किया था, लेकिन आजकल के अनेक भाई शका करने योग्य कार्य मे शका न करके, शका न करने योग्य कार्य मे शका करते है। पारधी लोग जगल मे एक तरफ तो हिरन को फसाने के लिए जाल लगा देते हैं और दूसरी तरफ हथियार लिए हुए आदमियो के चित्र लगा देते हैं हिरन चित्र मे हथियार लिए मनुष्यो को देखकर डरता है और सोचता है–ये मुझे मार डालेगे! इस प्रकार भयभीत होकर वह जाल की तरफ ही भागता है और जाल मे फस जाता है। वह न डरने योग्य जगह मे डरता है और जहा डरना चाहिए वहा डरता नही है। चित्र के मनुष्य तो हिरन को मारते नही हैं। वे तो सिर्फ भयभीत करके जाल मे फसाने के लिए हैं। मूर्ख मृग इस वास्तविकता को नही जानता। वह चित्रलिखित मनुष्यो से डरकर जाल मे फस जाता है। यही स्थिति ससार के लोगो की है।

वह मृग आपसे राय ले तो आप क्या राय देगे? आप कहेगे–'पागल! चित्र से क्या डरता है, जाल से डर' और हिरन के भोलेपन पर आपको दया आएगी। जिस प्रकार हिरन पर आपको दया आती है, उसी प्रकार ज्ञानियो को आप पर दया आती है। जैसे–मृग चित्र से डर कर जाल मे फस जाता है, उसी प्रकार ससारी जीव भी भूल करता है और जिससे डरना चाहिए उससे न डरकर, जिससे नही डरना चाहिए, उसी से डरता है।

मनुष्य को डरना किससे चाहिए? पापो से! लेकिन वह पापो से न डरकर जैसे आखमिचौनी खेलने लगता है। वह कहता है–हम पाप को क्या जाने? हम तो अमुक वस्तु सीधी–तैयार हुई लेते है। इस तरह जैसे मूर्ख मृग प्रत्यक्ष मे चित्र के मनुष्य को हथियार लिये हुए देखकर भय खाता है और परोक्ष मे फैले हुए जाल से निर्भय रहता है, वैसे ही मनुष्य सिर्फ प्रत्यक्ष की निर्दोषता देखता है, मगर परोक्ष के महा भयकर पापो की परवाह नही करता। प्रत्यक्ष का भय मानते है मगर परोक्ष का भय नही मानते।

मतलब यह है कि जन्म–जरा–मरण का भय मानकर परमात्मा की प्रार्थना मे लगो और विलासमय जीवन त्याग कर सादगी धारण करो। झूठ–कपट आदि अनेक पापो से बचने का उपाय सादगी ही है। जो मनुष्य सादगी से अपना निर्वाह करेगा वह अल्प–सन्तोषी होगा। उसकी आवश्यकताए [illegible] की भाति उस पर सवार नही होगी। परिणाम यह होगा कि वह महापापो मे प्रवृत्ति नही करेगा। इसके विपरीत जिसके जीवन मे विलास का

दौरदौरा होगा, उसकी आवश्यकताये नित्य नई नई आकृति धारण करके उसे असन्तुष्ट बनाएगी और असन्तोष पाप मे प्रवृत्त करेगा।

आपको सादगी धारण करने का उपदेश क्यो दिया जाता है? दरअसल बात यह है कि जिस काल मे जो बात हानि करने वाली होती है, उस काल के उपदेशक उसे जानते हुए भी उसका गोपन करे–उसे छिपावे और लोगो को उसकी हानियाँ न समझावे तो उन हानियो का उत्तरदायित्व उपदेशको पर रह जाता है। रिश्वत के आगे सिर झुकाकर हाकिम अगर सोचने लगे कि–कोई मरे या जिये, हमे इससे क्या मतलब है! तो ऐसे हाकिम से न्याय की क्या आशा की जा सकती है? ऐसे घूसखोर हाकिम न डरने के स्थान पर डर बतलाकर डराएगे और जो डरने का स्थान होगा, वहा न डरने के लिए कहकर उसी प्रकार फसा देगे, जैसे जाल मे मृग फसा दिया जाता है।

ग्रन्थकारो ने कहा है–तीन से तीन प्रकार के लाभ होते हैं। लेकिन वे तीन अगर अपनी जिम्मेदारी नही निभाते है तो उनसे तीन ही प्रकार की हानि होती है। कहा है–

सचिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज, धर्म, तन तीन कर, होय वेग ही नाश।।

राजा के मत्री से, वैद्य से और धर्मगुरु से ससार का बहुत लाभ होता है। लेकिन किसी प्रकार के भय अथवा लोभ के कारण ये मीठा बोलते हैं–सत्य नही कहते–तो इनसे हानि होती है–राज्य का, शरीर का और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

राज्य का प्रयोजन जनता की रक्षा करना है। राज्य के बिना प्रजा की सुरक्षा होना सम्भव नही है। अगर ससार मे अराजकता फैल जाय तो पृथ्वी पर हाहाकार मच जाएगा। मनुष्य मे अभी तक पाशविकता विद्यमान है और वह इस योग्य नही कि उसे पूर्ण रूप से निरकुश रहने दिया जाय। कम से कम कर्मभूमि के काल मे तो यह सम्भव नही है। इसीलिए प्रजा के सरक्षण के लिए राज्य–व्यवस्था की गई है। अन्याय को मिटाना और न्याय की स्थापना करना राज्यसभा का काम है।

वैद्य भी प्रजा के लिए बहुत उपयोगी है। प्रजा के स्वास्थ्य का सरक्षण करना, स्वास्थ्यकर सिद्धान्तो का प्रचार करना, अस्वास्थ्य के कारणो को हटाना, आहार–व्यवहार की समयोचित शिक्षा देना, रोगो का प्रचार रोकना

और रोगियो का उपचार करना इत्यादि वैद्य के कर्त्तव्य है। इस प्रकार वैद्य भी पजा की रक्षा के लिए है।

तीसरे धर्मगुरु हैं। धर्म की शरण ग्रहण कर लेने पर किसी प्रकार का भय रहता ही नही है। राजा और वैद्य एक ही भव का दु ख मिटा सकते है, मगर धर्मगुरु भव–भव का रोग नष्ट कर देते है। धर्मगुरु दु ख को ही नही, वरन् दु ख के बीज को भी ध्वस्त कर देते है। सदा कल्याण करने वाले धर्म की भावना लोगो मे भरने का काम धर्मगुरु का है। धर्मगुरु सब प्रकार का भय मिटाकर मनुष्य को शाश्वत निर्भयता प्रदान करते है।

इस पकार इन तीन से तीन प्रकार की रक्षा होती है, मगर इन तीन से हानि भी होती है। राजमत्री अगर बिना पैदे का लौटेसा हो जाय–जिधर फिराओ, उधर ही फिर जाय, लोभी हो और वैद्य तथा गुरु भी लोभी हो, तो ये ही लाभ करने वाले तीनो हानि करने वाले बन जाते हैं। राजमत्री अपने पवित्र उत्तरदायित्व को भूल जाय और लोभ–लालच मे पड कर अपने स्वार्थ को ही कसौटी बनाकर निर्णय करे तो देश मे न्याय–नीति कायम नही रह सकती। नीति की रक्षा के लिए ही राज्यव्यवस्था है। जनता मे अनीति फैलने से रोकना और सबल लोग निर्बल को न सतावे–इस बात का ध्यान रखना, जनता के धन और जीवन की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है। अगर राज्य के सचालक मत्री स्वय लालची हो जाएगे और प्रजा के हित के बदले अपने व्यक्तिगत हित और सुख की ही चिन्ता करेगे तो क्या प्रजा को हानि नही पहुचेगी? अवश्य।

वैद्य के पास एक रोगी आता है। रोगी कहता है–'मुझे अमुक रोग पीडित कर रहा है। कोई अच्छी–सी औषध दीजिए। मगर मुझसे पथ्य का पालन नही होता। मिर्च अधिक न हो तो मुझसे रोटी नही खाई जाती। अचार–खटाई आदि भी मुझसे छूट नही सकते।' वैद्य समझता है कि तेल और खटाई का त्याग किये बिना मेरी औषध लाभ–कारक नही होनी। मगर ऐसा कहने से रोगी कही हाथ से चला गया तो? हाथ मे आई चिडिया को छोड देना ठीक नही। इस प्रकार विचार कर वह रोगी से कहता है–'परवाह नही, आप कुछ भी खाइए मेरी दवाई से आपका रोग, पथ्यपालन किये बिना भी मिट जायगा। ऐसे स्वार्थी वैद्य से जनता की क्या भलाई हो सकती है? जो वैद्य रोग फैलाने मे ही अपना हित समझता है, वह मार्गभ्रष्ट वैद्य है और वह अपना कर्त्तव्य नही समझता है। वह जनता का रक्षक नही, भक्षक है। ऐसे वैद्यो से जनता की जितनी हानि होती है उतनी रोगो से भी कदाचित् न होगी।

आजकल वैद्यो, डॉक्टरो ओर हकीमो की सख्या कितनी बढ गई हे? वे चाहे दवा मे मछली का तेल आदि कुछ भी अपवित्र चीज क्यो न देते हो ओर लोग कुछ भी विचार किये विना क्यो न पी जाते हो, लेकिन इतनी दवाओ ओर चिकित्सको के बढ जाने पर भी रोग कम हुए हैं या वढे हैं? अव तो ऐसे–ऐसे विचित्र रोग पेदा हुए हैं, जिनका नाम भी हमारे पूर्वज नही जानते थे। आधुनिक औषधो से रोग नष्ट नही किये जाते, केवल दवाये जाते हैं। एक बार दबाये हुए रोग कालान्तर मे भयकर रूप से फूट निकलते हैं।

तीसरे धर्मगुरु हैं। जो धर्मगुरु मान–प्रतिष्ठा के लोभ मे पडे हैं, वे सच्चा मार्ग कब वता सकते हैं? ऐसे गुरुओ के विषय मे कहा–

जे जनमे कलिकाल कराला, करतब वायस, वेश मराला।
वचक भक्त कहाइ राम के, किंकर कंचन, कोह, काम के।।

तुलसीदासजी कहते हैं–कलिकाल मे ऐसे भी गुरु जन्मे हैं, जो काम तो कौए के करते हैं। और वेष हस का रखते हैं। कह सकते हो कि ऐसे गुरुओ की पहचान क्या है? इसका उत्तर यह दिया गया है कि परमात्मा के नाम पर फकीरी ली है, महात्माओ का वेष पहना हे, फिर भी धन के दास हैं, कचन के किकर हैं, क्रोध ओर काम के गुलाम हैं तो वे कुगुरु किसी को क्या तारेगे? कहा भी है

लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारणहार।
जो तूं तिरणो चाहे तो निर्लोभी गुरु धार।।

यह बात आप भी जानते हैं। लेकिन जानना मात्र किस काम का है, यदि उसके अनुसार व्यवहार न किया जाय? आप किसी को गुरु वनाते है, सो किसलिए? आत्मशुद्धि का पथ प्राप्त करने के लिए, अपने मोह ओर अज्ञान को मिटाने के लिए या सट्टे के आक जानने के लिए? अगर आक पूछने के लिए गुरु बनाते हो तो–

गुरु लोभी, शिष्य लालची, हिलमिल खेले दाव।
दोनो डूबे बापडे, चढ पत्थर की नाव।।

आप अपने दाव मे रहे और गुरुजी अपना लोभ पूरा करने के चक्कर मे रहे, तो न वे स्वय तरेगे, न आपको तार सकेगे। पत्थर की नाव पर चढने वालो की जो दशा होती हे, वही दशा उन गुरु चेला की होगी। जिस महात्मा ने लोभ को जीत लिया हे, जिसके मन मे तृण ओर मणि समान प्रतीत होते हैं, काम ओर क्रोध को जो पास नहीं फटकने देता, वे वीतराग गुरु स्वय तर

सकते है और दूसरो को तार सकते है। इस सत्य को न समझ कर कई भाई कहते है–

बाना देख नफा ले भाई, जिसके अवगुण उसके माई।

यह तो 'सब धान बाईस पसेरी' वाली लोकोक्ति हुई। इस प्रकार सबको समान मान लेने से कभी धर्मगुरु द्वारा सच्चा लाभ हो सकता है? जो लोग केवल वेश के पुजारी हैं उनसे पूछो कि क्या महात्मा के वेश मे ठग नही रहते? क्या पुलिस के भेष मे डाकू नही होते? अगर होते है तो धर्मगुरु की परीक्षा की आवश्यकता है या नही? परीक्षा किये बिना किस प्रकार धर्मगुरु की वास्तविकता मालूम हो सकती है?

जिस धर्मगुरु के चरणो मे अपना जीवन समर्पण करना चाहते हो, जिसे प्रकाश स्तम्भ मानकर नि शक आगे बढना चाहते हो, जिसे भव–भव का मार्ग पदर्शक बना रहे हो और जिसकी वाणी के अनुसार अपनी जीवन साधना प्रारम्भ करना चाहते हो, उसकी परीक्षा करने की क्या आवश्यकता ही नही समझते?

आचार्य, साधुओ की निगरानी करने वाला और आप लोगो का एजेन्ट है। आप स्वय किसी वस्तु की परीक्षा नही कर सकते, तब दलाल की मदद लेते हो, उसी प्रकार साधु की पहचान मे आचार्य सहायता देते है। कोई साधु अपने सयम मार्ग से च्युत न हो, किसी मे आचार की शिथिलता न आवे, इस बात की निगरानी करना आचार्य का कर्त्तव्य है। आचार्य आपको यह बतलाता है कि अमुक साधु अच्छा है या नही? लेकिन किसी साधु को सयममार्ग से विरुद्ध वर्ताव करते देखकर आचार्य यह घोषणा करे कि यह साधु ठीक नही है, और आप उन्हे ही वैयक्तिक आकर्षण के कारण बुरा माने और उसका साथ दे तो क्या आपका यह कार्य आचार्य के और धर्म के काम मे बाधा डालना नही है?

वही धर्मगुरु सच्ची प्ररूपणा करेगे और सच्चा मार्ग बतलाएगे, जो निलोभी होगे। जिन्हे मान की कामना है और प्रतिष्ठा–प्राप्ति का भूत जिनके सिर पर सवार है, जिनका अन्त करण किसी भी प्रकार के लोभ–लालच से भरपूर है उनसे सच्ची प्ररूपणा नही हो सकती। अतएव प्रभु से यह प्रार्थना करो– परमात्मन! मै इस उच्च और प्रचुर पुण्य से प्राप्त होने वाली स्थिति पर आ पहुचा हू। अतएव मै अपनी भावना ओर अधिक अच्छी बनाना चाहता हू। मै सत्य का उपासक बनना चाहता हू। प्रभो! मुझे ऐसी सद्बुद्धि दीजिए कि मै मलिन विचारो से अपनी रक्षा कर सकू।' इस प्रकार की भावना रखने से

आप सत्यपरायण वनेगे। आपको सच्चे गुरुओ का सत्सग मिलेगा। जो किसी भी पद को पाकर अन्याय नही करता, अभिमान नही करता, वरन् उसे जगत्कल्याण का साधन वना लेता है और पाप से बचने का निरन्तर प्रयास करता है, उसी ने अपनी स्थिति समझी है।

समयानुसार जो बात हानिप्रद है, वह यदि धर्मगुरु आपको नही बतलाता है और उस हानि करने वाली बात से बचने का उपदेश नही देता है, तो वह अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण नही करता है। ऐसे धर्मगुरु से आपको विशेष लाभ नही हो सकता। इसीलिए मैं बार–बार कहता हू कि सब अनर्थो का मूल विलासिता है। विलासिता के वश होने के कारण अच्छी वस्तु बुरी लगती है और बुरी वस्तु अच्छी लगती है।

कल्पना कीजिए एक सेठ से उसकी पत्नी कहती है–'आप जैसा भी भोजन चाहेगे, मैं बनाकर आपको खिलाऊगी। मैं पाकशास्त्र के अनुसार अच्छा और उत्तम भोजन बनाऊगी। आप बाजार का भोजन करके शरीर और पैसो का नाश क्यो करते हैं?' सेठानी की यह बात सुनकर सेठ कहता है–'बस, चुप रहो। जैसी रबडी और जैसा कलाकन्द बाजार मे बन सकता है, तुम नही बना सकती। इसके सिवाय बाजार की चीजो मे जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द तुम्हारी बनाई चीजो मे कहा मिल सकता है?'

आप ऐसा कहने वाले सेठ को क्या कहेगे? क्या आप यह नही कहेगे कि जिनके गुरु मास–मास–खमण की तपस्या करते है, उनके शिष्य इतने चटोरे? चटोरा बनने के साथ ही यदि कोई यह सिद्धान्त और बतलावे कि सीधी चीज मे अपने को आरम्भ नही करना पडता और घर मे बनी चीज मे आरभ होता है, इसलिए घर मे बनी हुई चीज की अपेक्षा सीधी चीज अच्छी है, तो ऐसे सिद्धान्त वाले को घर की कढी बाजार की रबडी के आगे कब अच्छी लग सकती है?

भगवान् ने केवल आरभ का ही विचार नही किया है किन्तु शारीरिक और मानसिक क्षति का भी विचार किया है। हम लोगो को भी इन बातो पर विचार करना चाहिए। बाहर की पतली रोटी भी घर की मोटी रोटी की समता नही कर सकती। इसी तरह बाहर के पतले कपडे घर के मोटे कपडे का मुकाबला नही कर सकते। पहले जोधपुर मे यह प्रथा थी कि कोई व्यक्ति खादी की टुकडी की अगी पहने बिना राजमहल मे प्रवेश नही कर सकता था। ऐसी अगी पहनने पर ही दरबार मे घुस सकता था। महाराज प्रतापसिह

इस बात की बहुत निगरानी रखते थे। अगर कोई पतला कपडा पहनता तो उसकी टीका की जाती थी। उसे लज्जित कर दिया जाता था और कभी-कभी तो महल से बाहर निकाल दिया जाता था। इस प्रकार पहले के लोग अपने यहा की बनी खादी ही पसन्द करते थे। मगर आजकल क्या दशा है? आज लोग बाहर का आरम्भ ही देखते हैं और समझते है कि-हम तो सीधे लेते है, हमे क्या है? इस सीधे के पीछे कितना घोर आरम्भ समारभ होता है, इसे देखने की आवश्यकता उन्हे प्रतीत नही होती। खादी से मानसिक निर्मलता रहती है और अन्य अनेक लाभो के साथ महारम्भ से भी बचाव होता है।

पहले की स्त्रियो मे भी सादगी के कारण बडी निर्मलता रहती थी। उनके चित्त मे निर्मलता रहती थी, इसलिए वे पुरुषो को भी निर्मलता ही देती थी। जिसके पास जो होता है, वह दूसरो को वही दे सकता है। कहा भी है-

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम्,
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति।

मौजूद चीज ही दी जाती है, यह बात तो ससार-प्रसिद्ध है। खरगोश का सीग कौन किसे दे सकता है?

जब स्त्रियो मे शुचिता और निर्मलता थी तो वे पुरुषो को भी शुचिता और निर्मलता प्रदान कर सकती थी लेकिन आजकल पुरुषो ने स्त्रियो को जिस स्थिति मे डाल दिया है, उसके कारण स्वय पुरुषो की भी दशा बिगड रही है।

साराश यह है कि इन बातो को समझाना गुरु का कर्त्तव्य है। हानिकारक बातो को गोपनकर जाना गुरु का कर्त्तव्य नही है। गुरुपद के साथ जो उत्तरदायित्व आता है, उसका निर्वाह गुरु को करना ही चाहिये-बिना किये उसका छुटकारा नही। उसकी बात मानना या न मानना दूसरी बात है। आज आपके समाज मे जैसे त्यागी विद्यमान है, वैसे त्यागी अन्यत्र मिलने कठिन है। ऐसा होते हुए भी आज समाज की अवनति क्यो है? त्याग के आदर्श वृक्ष के नीचे बैठकर भी आपका समाज अगर उन्नत न होगा तो फिर कब होगा?

पुरुष स्त्रियो को अबला कहते है। स्त्रिया भी अपने को अबला मानने लगी हैं। लेकिन स्त्रियो को अबला कहने वाला पुरुषवर्ग कितना सबल है? दूसरो को अबला बनाने वाला स्वय भी सबल नही रह सकता। जो वास्तव मे सबल होगा वह दूसरे को निर्बल न बनायेगा।

महिलावर्ग के प्रति पुरुषवर्ग ने जो व्यवहार किया, उसका फल पुरुषवर्ग को भी भोगना पडा। महिलाओ को, जो साक्षात् शक्तिस्वरूपिणी हैं, अबला वनाने के अभिशाप मे पुरुपवर्ग स्वय अवल बन गये। सियारनी से कभी सिह उत्पन्न होते देखे गये हैं? नही। तो फिर अवला से सवल सपूत किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं?

किसी समाचार पत्र मे एक सज्जन के प्रश्न का उत्तर प्रकाशित हुआ था। प्रश्न यह था कि—भारत सरीखा धर्म की भावना वाला देश भी आज इतना अवनत क्यो है? भारतवर्ष मे त्यागियो की सख्या भी काफी हे, फिर भारत की इस हीन दशा का क्या कारण है? आज भारत को अवनत क्यो कहा जाता है?

इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया कि—आपको भारत का जो पतन दिखाई दे रहा है, वह भारत का नही है, किंतु बाहर से आया हुआ है। वाहर से आये हुए पतन को हमने अपना लिया, इस कारण आपको भारत का पतन दिखाई देता है। उदाहरणार्थ—किसी जगह टिड्डियो का दल आया। उस दल मे जिन टिड्डियो के पख थे, वे उडकर आग मे गिर गईं और जल मरी। उन्हे अपने पखो के उपयोग का विवेक नही रहा। बिना पख की जो टिड्डिया रह गईं, वे उड न सकी और आग मे जलने से बच गईं। अब देखना चाहिए कि आग मे जलने और न जलने का कारण पख होना और नही होना है या विवेक का होना और न होना है? पख का होना कोई बुराई नही थी, लेकिन विवेक के अभाव मे उन्हे जलना पडा।

इसी प्रकार भारत की धर्मभावना पख के समान थी। लेकिन विवेक न होने के कारण भारतीय ऐसी दिशा मे गये, जहा जाकर ये गिर गये। धर्मभावना होने पर भी विवेक के अभाव मे भारतीयो को भारत का रहन—सहन, भारत की सादगी, भाषा और भारतीय भेष पसन्द नही है। वे स्वय इनके दुश्मन बने हुए हैं। इस प्रकार हम भारतीय अपने पख के बल से फैशन की आग मे जा गिरे। जिसमे जोश होता है वही आगे बढता हे। इस कथन के अनुसार हममे पख बल था अतएव हम फेशन की आग मे सब से ज्यादा गिरे। दूसरे देश वाले हमारे बराबर नही गिरे। जिसमे बल नही, वह आगे क्या बढेगा? पगु कभी आगे नही बढता। इस प्रकार दूसरे देश वाले तो पगु की भाति अपने देश के रहन—सहन मे ही रहे उन्हे अपने—अपने देश की ही भाषा वेश—भूषा पसन्द रही, लेकिन हम भारतीय अपने पखबल से आगे दोडते रहे,

इससे विदेशी फैशन के जाल मे फस गये। यही कारण है कि आपको भारत का पतन मालूम हो रहा है।

फैशन मे फँसकर अपने देश की अवनति करना हिसा मे सम्मिलित है या अहिसा मे? आप दया को मानते है, दया का नाम लेते हैं लेकिन फैशन की फासी लगने से समाज किस तरह नष्ट हो रहा है, इस ओर आपका ध्यान ही नही जाता। समाज पर आपको दया नही आती। यह दशा देख कर भी अगर आपकी आखे नही खुलती, तो उन्हे खोलने का और क्या उपाय है?

फैशन की फासी से ससार की क्या हानि हुई है और ससार का कितना बिगाड हुआ है, यह कहा नही जा सकता। इस प्रकार आप लोग जहा डरना चाहिए वहा तो डरते नही और जहा नही डरना चाहिए वहा डरते हैं। आपको खादी से डर लगता है। आप समझते हैं–इसमे देशी–विदेशी का झगडा है। पुलिस भी खादी की टोपी वाले को देखकर डरती है और उसकी जाच–पडताल करती है। लेकिन जिसमे महान् हिसा है, जो पराये देश का पहनावा है, उस हैट को लगाकर कोई आता है तो उसकी जाच–पडताल की आवश्यकता नही समझी जाती। लोगो मे इस प्रकार की भावना घुस रही है, फिर ऊपर से तुर्रा यह है कि हम दयाधर्मी है।

किसी समय मुसलमानो मे भी विलासिता बढ गई थी। लेकिन उस समय के कवियो ने उन्हे अच्छी फटकार बताई है। मुसलमान इतने विलासी हो गये थे कि 'मौजी मुसलमान' कहलाने लगे थे। एक कवि उन्हे फटकारता हुआ कहता है–

सभी है आजिज यहा सयाने, खुदा की बाते खुदा ही जाने।
कोई गोटा, कोई किनारी पहन के नखरे दिखावे भारी ।
न हुक्म रब का कोई माने, खुदा की बाते खुदा ही जाने।।
हजारो अशरत, लाखो नफरत, कहा के साहब रसूल उस्मत।
पडे है सोये शराबखाने, खुदा की बाते खुदा ही जाने।।
पुजारी मिलकर पुजारियो से, लहाजी मिलकर लहाजियो से।
अकल के घोडे लगे कुदाने, खुदा की बाते खुदा ही जाने।।

कवि कहता है–लोग गोटा किनारी आदि लगाकर नखरे दिखाते हैं। इस शायर को गोटा किनारी से नफरत हो गई है। लेकिन उसे नफरत क्यो है जिसके पास पैसे है? वह पहनता है। इसमे शायर (कवि) को अरुचि होने का क्या कारण है? बल्कि शास्त्र मे कहा है कि इष्ट गध, इष्ट रस और इष्ट

लोग यह प्रश्न कर सकते हैं। लेकिन क्या पुण्य पाप बढाने के लिए है? लोग उसी को पुण्यशाली समझते है जो ज्यादा फैशन मे डूबा रहता है। लेकिन जिन लोगो ने जरी की पगडी उतारकर खादी की टोपी पहनी है, उन्होने आपकी समझ मे पुण्य के कारण ऐसा किया है, अथवा उनका पाप उदय हो आया है? किसी कारण उन्होने जरी की पगडी छोड कर खादी की टोपी पहनी है? मित्रो! विवेक से काम लो। अगर तुम स्वय फैशन के फन्दे से बाहर नही निकल सकते तो कम से कम उनकी निन्दा तो मत करो। जिन्होने फैशन का मोह छोड स्वेच्छापूर्वक सादगी धारण की, जीवन को सयत बनाया और विलासिता का त्याग किया है।

टिड्डी को जो पख मिले थे, वे पुण्य से ही मिले थे । परन्तु जब उन पखो के कारण वह आग मे जा गिरी तो पख पुण्यवर्धक कहा रहे? इसी प्रकार जरी, गोटा आदि पुण्य से मिले है, यह सही है, लेकिन पुण्य से मिली हुई यह सामग्री अगर पाप मे ले गई तो? गोटा, किनारी आदि सामग्री भी तो परिग्रह मे ही है, इसलिए क्या यही पाप का कारण नही बन सकती?

आप अपनी गति की दिशा को देखो। दयाधर्मी कहलाते हो, अतएव दया के काम मे आपको सबसे आगे रहना चाहिए। मगर आप तो सबसे पीछे रह रहे है। यह स्थिति क्या धर्म को बदनाम न कराएगी? वह शायर भी यही कहता है कि गोटा–किनारी आदि पहन रखे है, लेकिन यह नही देखते कि खुदा का हुक्म क्या है और बस, अपनी मनमानी करते है। ऐसी दशा मे पुण्य से मिला हुआ गोटा किनारी क्या पाप मे ले जाने वाला नही हुआ? फारसी के एक शायर दीवाने साहब ने कहा है–

गैर हकरा मिदे ही रह, दर रहीम दिल चिरा।
मीक सीबर सफे हस्ती, खते बातिल चिरा।।

हे इन्सान! तू अपने दिल के किले मे हक, ईमान और धर्म के सिवाय दूसरे को क्यो जगह देता है? तू अपने दिल मे हराम को जगह देता है और हक को जगह नही देता। तो क्या तेरा दिल हराम को जगह देने के लिए है?

एक साहूकार ने एक बहुत अच्छा महल बनवाया। एक ओर अपने कार्यकर्ता द्वारा राजा एक दिन ठहरने के लिए, वह महल माग रहा हे और दूसरी ओर बदबू का टोकरा लिये मेहतर आता है और महल मे ठहरने के लिए जगह मागता हे। तीसरी ओर बच्चे कहते है–हमे टट्टी जाना है, हम यही टट्टी फिरेगे । इस प्रकार ये लोग मकान मे बदबू फैलाना चाहते हैं। जिस महल को राजा ने अपने ठहरने के लिए पसन्द किया है, उसमे क्या इस प्रकार बदबू

निकले बिना व्यक्तियो का सुधार नहीं हो सकता और व्यक्तियो के सुधार के अभाव मे समाज– सुधार का अर्थ ही क्या है? व्यक्तियो का समूह ही तो समाज कहलाता है।

आप किसी भी फिरके के हो, लेकिन हैं तो जैन ही। आप सब जैन हैं, इसलिए भाई भाई हैं और आपका निकट सम्बन्ध है। फिर भी आप आपस मे लड रहे हैं। भाई भाई को दल बनाकर आपस मे लडना क्या उचित है? क्या आपको नही मालूम कि आपके ऐसे कामो से धर्म की निन्दा होती है और धर्म प्रभावना के कार्य मे रुकावट होती है।

मतलब यह है कि आपने अपने दिल के महल मे यदि हराम को स्थान न दे रखा हो तो फिर किसी किस्म का झगडा नहीं हो सकता। अतएव आपके दिल से उस हराम को निकालने और हक को स्थान देने के लिए ही हम लोग बार बार कहते हैं?

अगर आप रुपये देकर स्टाम्प लाए और उस कोरे स्टाम्प पर कोई लडा खाली लकीरे खीचने लगे, तो क्या आप उसे खीचने देगे? मित्रो! जिन्दगी स्टाम्प से बहुत अधिक कीमती है। जिन्दगी के सफे पर खाली लकीरे खीचकर इसे खराब मत करो। इसका सदुपयोग करो। दुरुपयोग मत करो। ऐसा करने से कल्याण होगा।

अस्पृश्यता

(1)

कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो।

भगवान् कुन्थुनाथ की यह प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति है। अमोघ उसे कहते हैं जो निष्फल न जावे। परमात्मा की प्रार्थना की शक्ति सदैव सफल है। दुनिया मे कई लोग अपनी बडाई के लिए यह विज्ञापन किया करते हैं कि हमारी दवा रामबाण है। हमारा इलाज और कार्य रामबाण है। अर्थात् राम का बाण चूके तो हमारी दवा का भी लक्ष्य चूके– लाभ न करे। कई लोग रामबाण के नाम पर इस प्रकार का विज्ञापन करके अपना व्यवसाय चलाते है। मगर मैं कहता हू कि परमात्मा की प्रार्थना अमोघ है।

शका हो सकती है कि जिस प्रकार व्यवसायी अपना व्यवसाय चलाने के लिए दवा को रामबाण, अमोघ कहते है, उसी प्रकार प्रार्थना के विषय मे भी तो नही कहा जाता है? शकाशील के लिए सर्वत्र शका को स्थान है किन्तु परीक्षा और पहचान करने से शका का निवारण भी हो सकता है। परमात्म–प्रार्थना की शक्ति अमोघ और सफल है, यह बात मिथ्या प्रशसा मे नही कही गई है और यह भी स्पष्ट है कि ऐसा कहने वाले का इसमे कोई स्वार्थ नही है। यह बात सर्वथा सत्य है और जिन्होने परीक्षा की है उन्हे किसी तरह का सन्देह भी नही है।

राम के बाण हमने नही देखे। केवल ग्रन्थो मे उनकी अमोघता का वर्णन आया है और इसी आधार पर हम विश्वास करते हैं कि राम के बाण खाली नही जाते थे। वे ग्रन्थ सत्पुरुषो ने नि स्वार्थ भावना से बनाये हैं, इस कारण उन पर विश्वास किया जाता है। वास्तव मे चाहे चन्द्र से आग गिरने

लगे और पृथ्वी उलट जाय, किन्तु सत्पुरुष झूठे कदापि नही लिख सकते। उनके वचन किसी भी अवस्था मे झूठे नही हो सकते हैं। ऐसे सत्पुरुष जब राम का बाण अचूक कहते हैं तो समझना चाहिए कि वे राम के बाण के सम्बन्ध मे उतना नही कह रहे हैं जितना राम के नाम की शक्ति के विषय मे कह रहे हैं। ऐसी स्थति मे बाण के विषय मे कहीं गई उनकी बात पर विश्वास करने और नाम के विषय मे कही गई बात पर अविश्वास करने का क्या कारण हो सकता है? नाम के विषय मे कही गई उनकी बात सत्य मानते हैं तो जो बात उन्होने कही है वही बात परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे भी कही गई है। जिस तरह उनकी कही बात पर विश्वास करते हो, उसी तरह महात्माओ ने जो कुछ कहा है, उस पर विश्वास करो। प्रार्थना की शक्ति के विषय मे हम अपनी ओर से कुछ नही कहते हैं, पूर्वकाल के महात्माओ का कथन दोहराते हैं। हम उनकी उच्छिष्ट वाणी ही सुनाते है। अतएव प्रार्थना की शक्ति के विषय मे सन्देह करने का कोई कारण नही हे।

परमात्मा की प्रार्थना मे अमोघ शक्ति है, यह बात कहना तो सरल है, लेकिन उसे प्राप्त करना कठिन मालूम होगा। परन्तु महापुरुष की कोई बात कहना तो कठिन जान पडता है, करना उतना कठिन नही जान पडता। इसलिए हमे सावधान होकर वे ही शब्द निकालने चाहिए, जिन्हे हम अमल मे ला सकते हैं। जितना कर सकते हो, उतना ही कहो और जो कुछ कहते हो उसे करने की अपने ऊपर जिम्मेदारी समझो। इस तरह स्वच्छ चित्त होकर एकाग्रतापूर्वक परमात्मा की प्रार्थना करने वाला और परमात्म–प्रार्थना द्वारा उसकी अमोघ शक्ति प्रार्थना करने वाले के सुकृत का भडार बन जाता है।

प्रश्न किया जा सकता है– आपने परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे जो कुछ कहा है सो ठीक, मगर परमात्मा कहा हैं? उसका स्वरूप क्या है? साम्प्रदायिक भेद के कारण परमात्मा के स्वरूप मे इतनी भिन्नता मालूम होती है और उसकी प्रार्थना करने की रीति मे भी इतनी विभिन्नता हे कि इस दशा मे परमात्मा के किस रूप को और प्रार्थना की किस विधि को सत्य माने? इन बातो का ठीक–ठीक पता कैसे लग सकता हे?

इस प्रश्न का समाधान करने के लिए महापुरुषो ने बहुत सरल मार्ग बताया हे। इसी प्रार्थना मे कहा है–

तुम्ही– हम एकता मानूं, द्वैत भ्रम कल्पना मानूं।

हे प्रभो! जो तू है वही मै हू और जो मै हू वही तू है 'य परमात्मा स एवाह, योऽह स परमस्तथा' सोऽह और ह–स। इस प्रकार हे प्रभो! तुझमे और मुझमे कुछ अन्तर ही नही है।

यह कथन ऊपरी नही, भक्तो की गहरी अत्मानुभूति का उद्‌गार है जो आत्मा औपाधिक मलिनता को एक ओर हटाकर, अन्तर्दृष्टि होकर– अनन्यभाव से अपने विशुद्ध स्वरूप का अवलोकन करता है और समस्त विभावो को आत्मा से भिन्न देखता है, उसे सोऽह के तत्त्व की प्रतीति होने लगती है। बहिरात्मा पुरुष की दृष्टि मे स्थूलता होती है अतएव वह शरीर तक इन्द्रियो तक या मन तक पहुच कर रह जाती है, और उसे इन शरीर आदि मे ही आत्मत्व का भान होता है, मगर अन्तरात्मा पुरुष अपनी पैनी नजर से शरीर आदि से परे सूक्ष्म, आत्मा को देखता है। उस आत्मा मे असीम तेजस्विता, असीम बल, अनन्त ज्ञानशक्ति और अनन्त दर्शनभक्ति देखकर वह विस्मित– सा हो जाता है। उसके आनन्द का पार नही रहता। ऐसी ही अवस्था मे उसकी वाणी से फूट पडता है–

सिद्धोऽह सुद्धोऽह अणंतणाणदि गुणसमिद्धोऽहं।

अर्थात्– मैं सिद्ध हू, मैं शुद्ध हू, मैं अनन्त ज्ञानादि गुणो से समृद्ध हू।

इस प्रकार जब परमात्मा मे और आत्मा मे अन्तर ही नही है तब उसके रूप आदि के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह होने का क्या कारण है?

लेकिन फिर यह प्रश्न खडा हो सकता है कि कहा तो मोह के चक्कर मे पडकर नाना प्रकार की अनुचित चेष्टा करने वाले और घृणित काम करने वाले हम लोग और कहा शुद्ध–स्वरूप परमात्मा? हमारी और उसकी समानता भी नही हो सकती तो एकता तो होगी ही कैसे? इस प्रश्न का उत्तर प्रकारान्तर से ऊपर आ गया है। मतलब यह है कि इस तरह का उपाधिभेद तो अवश्य है लेकिन वस्तु का शुद्ध स्वरूप देखने वाले निश्चय तप के अभिप्राय से और सग्रह तप के अनुसार 'एगे आया' आगम वाक्य से परमात्मा मे इसमे कोई इन्तर नही है। 'एगे आया' इस कथन मे सिद्ध भी आ जाते हैं और समस्त ससारी जीव भी आ जाते हैं। जो कुछ भेद है, उपाधि मे है, आत्मा मे कोई भेद नही है। मूलद्रव्य के रूप मे परमात्मा और आत्मा का कोई भेद होता तो आत्मा समस्त विकारो और आवरणो को दूर करके परमात्मा नहीं बन सकता था। अगर कोई भी आत्मा परमात्मा नही बन सकता होता तो समस्त साधनाए निष्प्रयोजन हो जाती। मगर ऐसा नही है। साधक पुरुष अपनी साधना

द्वारा आत्मा के स्वाभाविक गुणो का विकास करता हुआ और विकारो को क्षीण करता हुआ अन्त मे पूर्णता और निर्विकारता प्राप्त कर लेता है और यही परमात्म–दशा है। उपाधि के कारण आत्मा और परमात्मा मे जो भेद है, उसी को मिटाने के लिए प्रार्थना करनी होती है। अतएव उपाधि का भेद होने पर भी यह समझने की आवश्यकता नही कि मुझ मे और परमात्मा मे मूल से ही कोई वास्तविक भेद है।

एक बात और है। कर्म करने वाला तथा कर्म का फल भोगने वाला यह आत्मा ही है। फिर प्रार्थना करने वाला और प्रार्थना का फल पाने वाला भी आत्मा ही ठहरता है या नही? ऐसी अवस्था मे शका का कारण ही क्या है?

भावनिक्षेप दो प्रकार का है–आगम भावनिक्षेप और नोआगमभावनिक्षेप। आगमभावनिक्षेप के अनुसार भगवान् महावीर मे तल्लीन रहने वाला स्वय ही महावीर है। जब क्रोध का स्मरण करने वाला अर्थात् क्रोध के उपयोग मे उपयुक्त आत्मा क्रोध, मान मे उपयुक्त आत्मा नीच माना जाता है तो भगवान् के उपयोग मे उपयुक्त (तल्लीन) आत्मा भगवान् ही है, ऐसा मानने मे सदेह कैसे किया जा सकता है? ऐसी अवस्था मे जिस पानी मे मोती निपजता है, उसे कीचड मे डालकर खराब क्यो करना चाहिए? प्रार्थना के उस पवित्र पानी को आत्मा मे क्यो न उतारना चाहिए कि जिससे अखूट मोती बने।

जिस प्रार्थना की शक्ति अमोघ है, वह प्रार्थना करने की तबीयत किसकी न होगी? ऐसी प्रार्थना सभी करना चाहेगे, मगर देखना यह है कि अन्तराय कहा है? वस्तु भेद से तो अन्तराय के अनेक प्रकार हैं मगर सामान्य रूप से स्वार्थबुद्धि आने से अन्तराय होता है। यो तो ससार मे स्वार्थो की सीमा नही है, किन्तु जहा स्वार्थ नही हैं वहा पर भी लोग काल्पनिक विचारो मे पडकर ऐसा विचार कर बैठते हैं जो प्रार्थना के मार्ग मे अन्तराय करने वाला हो जाता है। काल्पनिक विचारो मे घुल जाना, उन पर आरूढ हो जाना, प्रार्थना के मार्ग मे बडा अन्तराय हे। इस अन्तराय की चेतना अनेक कवियो और शक्तिशाली पुरुषो को भी हुई हे। सर्वसाधारण के ऐसे काल्पनिक विचार देख कर उन्हे भी चिन्तित होना पडा है। कहा जा सकता है कि किसी मे अगर कोई बुराई है तो उसे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? दूसरा कोई कुमार्ग मे जाता है तो जाय, हम उसके लिए चिन्तित क्यो हो? मगर बेटे के बिगडने पर बाप को चिन्ता होती है या नही? बिगड बेटे की चिन्ता करना बाप का फर्ज माना जाता है। आप स्वय अपने बेटे की चिन्ता करते हें यह

बात दूसरी है कि आपने अपनी [illegible]
आप अपने बेटे पोते आदि घर वालो को ही अपना समझते हैं और उनके अतिरिक्त दूसरो को गैर समझते है। मगर जिनका महत्व गल कर प्राणी मात्र तक पहुच गया है, ससार मे समस्त प्राणियो को जो आत्मवत् मानते है, जिन्होने 'एगे आया' का सिद्धान्त अपने जीवन मे घटाया है, उनके लिये तो सभी जीव अपने हैं, कोई पराया नही। ऐसी दशा मे जैसे आप अपने बेटे की चिन्ता करते है उसी प्रकार उदार भाव वाले ज्ञानी पुरुष प्रत्येक जीव की चिन्ता करते है।। इस प्रकार की चिन्ता के कारण ही उन्होने परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहा है–

कौन जतन बिनती करिये।
निज आचरण विचारि हारि, हिय मानि जानि डरिये।।कौन।।
जानत हू मन वचन कर्म, करि परहित कीने तरिये।
सो विपरीत देखि कै पर सुख बिन कारण ही जरिये।।कौन।।

वे कहते है–हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपकी विनती कैसे करू? कहा तो तुम्हारे समान मेरा स्वरूप, कहा 'एगे आया' मानकर तेरे और मेरे स्वरूप को एक मानने वाला मैं और कहा मेरे आचरण? मैं इन आचरणो को देखकर विचार मे पड जाता हू कि, हे नाथ! किस प्रकार तेरी प्रार्थना करू? किस मुह से मै तेरे सामने आऊ?

जो मनुष्य राजा की चोरी करता है या राजा की आज्ञा तथा उसके बनाये नियमो की अवज्ञा करता है, उसे राजा के सामने जाने मे सकोच होगा या नही? अवश्य होगा! क्योकि उसका आचरण उसे भयभीत करेगा। इसी प्रकार भक्त कहता है–प्रभो! मै अपना आचरण देखकर स्वय ही डरता हू। मेरा आचरण ही प्रकट कर रहा है कि मैंने तेरी सत्ता को नही माना और तेरी चोरी की है।

भक्त अपने मे ऐसी कमी क्या देखते हैं? यह तो सभी जानते हैं कि तन मन और धन से जितना भी बन सके, परोपकार करना चाहिए। परोपकार करना धर्म है यह कौन नही जानता? परोपकाराय सता विभूतय और परोपकाराय पुण्याय इत्यादि उपदेश वाक्य भी बहुत से लोगो ने सुने हैं। भक्त–जन कहते है– मुझसे परोपकार होना तो दरकिनार, मैं इससे विपरीत ही बर्ताव करता हू। मैंने किसी को सुखी नही बनाया। इतना ही नही, बल्कि वस्तुतः तो यह है कि दूसरे को सुखी देखकर मेरे दिल मे ईर्ष्या का दावानल सुलगने लगता है। इस प्रकार मेरे हृदय मे उपकार की भावना के

बदले अपकार की भावना उत्पन्न होती है। दूसरे ने मुझसे सुख नहीं पाया, सम्पत्ति नही पाई, फिर भी मुझसे उसकी सुख–सम्पत्ति नही देखी जाती। जब मेरा यह स्वभाव है तो मैं परोपकार क्या करूगा? और अपनी इस निकृष्ट दशा मे तेरी क्या प्रार्थना करू?

प्रभु की प्रार्थना मे यह अन्तराय सबसे बडा है। अगर आप किसी का उपकार नही कर सकते तो न सही, मगर कम से कम इतना तो करो कि दूसरो को देखकर जलो मत। स्वय किसी का उपकार नही कर पाते या प्रत्युपकार नही कर सकते तो खैर, लेकिन जिन्होने आपके ऊपर उपकार किया है, उनका उपकार तो मत भूलो। इतना तो कर ही सकते हो।

मान लीजिए, किसी वैभवशाली का घर है। उस घर मे क्या क्या होता है, यह तो आप जानते ही हैं। उस घर मे रसोई बनाने वाला रसोइया भी होता है और झाडू देने वाला नौकर भी होता है। घर मे एक ऐसे व्यक्ति का होना भी आवश्यक समझा जाता है जो घर की सफाई रक्खे और बच्चो की अशुचि आदि गन्दगी से बचाकर साफ रक्खे। अगर कोई कहे कि घर मे फोनोग्राफ तो चाहिए, लेकिन झाडू की जरूरत नही है, क्योकि बाजे से तो सुरीला राग निकलता है परन्तु झाडू से कुछ भी नही निकलता। ऐसा कहने वाले को आप क्या उत्तर देगे? क्या उसका यह कथन या उसकी यह समझ आप ठीक समझेगे? एक घर ऐसा है जहा फोनोग्राफ है लेकिन झाडू नही है और इस कारण वह घर गदा हो रहा है। दूसरे किसी घर मे फोनोग्राफ तो नही है पर झाडू है और वह घर साफ–सुथरा है। आपको इन दोनो मे से कौनसा घर अच्छा लगेगा? एक गृहस्वामिनी फोनोग्राफ बजाना जानती है। उसमे से निकलने वाले रागो को पहचानती है। राग सुनकर आनन्द भी मानती है। मगर घर को साफ–सुथरा रखना नही जानती अथवा इस काम से उसे अरुचि है। इससे विपरीत दूसरी गृहस्वामिनी फोनोग्राफ बजाना नही जानती, लेकिन वह घर मे कूडा–कचरा जरा भी नही रहने देती। वह खान–पान की सामग्री मे भी अत्यधिक सावधान रहती है । वह सफाई का महत्व जानती है। अब आप विचार कीजिये कि इन दोनो गृहस्वामिनियो मे से आप किसे अच्छी समझेगे?

आजकल के लोग वास्तविक बाते भूलकर नेसर्निक ओर गुणकारक चीजो की उपेक्षा करके कृत्रिम चीजो के मोह मे पड रहे हे। इससे होने वाली भयकर हानि का ज्ञान बहुत कम लोगो को हे। मेवाड ओर मालवा मे नाहरू रोग बहुत निकलने लगा हे। आम जनता की शिकायत हे कि पहले इतने

नाहरू नही निकलते थे, जितने आजकल निकलते है। मगर इसके कारणो पर विचार कौन करता है? और कौन उन कारणो को हटाने की चिन्ता करता है? आचाराग सूत्र की टीका देखो तो मालूम होगा कि यह सब पानी की सफाई न रहने का—अशुद्ध पानी पीने का दुष्परिणाम है। पानी की खराबी से यह बीमारी होती है। पानी को साफ न रखने से और बिना छना पानी पीने से यह रोग होता है। पहले फोनोग्राफ नही थे, अब फोनोग्राफ है, इसी तरह पहले नाहरू नही थे और अब नाहरू है। समाज मे जैसे—जैसे कृत्रिमता के पति रुचि बढती गई, त्यो—त्यो रोग भी बढते गये। साराश यह है कि लोग ऊपरी दिखावे मे, तडक—भडक मे, मजा—मौज मे फसते जा रहे हैं और असली बात को भूल रहे है। इसी कारण हानि उठा रहे है।

एक वृद्धा है। उसने जमाना देखा है। उससे सख्त मेहनत का काम नही होता लेकिन बालको के प्रति उसके दिल मे बडी करुणा है। वह उन्हे स्वच्छ रखती है। कभी किसी बालक को बीमारी होती है तो वह बडे चाव से उसकी सुश्रूषा करती है, उपचार करती है, मलहम पट्टी—करती है।

एक तरुणी है। वह उत्तम वस्त्र और सुन्दर आभूषण पहनती है। बालको के प्रति वह लापरवाह है। मगर वृद्धा से कहती है—'बुढिया! तू किस मर्ज की दवा है? बच्चो को सभाल!' वह स्वय बच्चो को नही सभालती और नखरे बनाकर बैठी रहती है।

आप इन दोनो मे से किसे ठीक समझेगे? अपनी सफाई और सौन्दर्य मे तरुणी चाहे अच्छी लगे, लेकिन उसे देखकर क्या वृद्धा को घृणा करना उचित होगा? बालको की सार—सम्भाल मे उसने अपने आपको भुला दिया है धूल भरे बच्चे दौड दौड कर आते हैं और उसकी गोद मे बैठ जाते हैं और इस कारण वह साफ—सुथरी नही दिखाई देती, तथापि क्या वह घृणा के योग्य है? उसने बालको को स्नेह की जो मधुरता प्रदान की है और अपने मीठे व्यवहार से उनकी कली कली खिला देती है, बच्चो की प्रसन्नता मे ही तो अपनी प्रसन्नता मानती है। उस वृद्धा की अगर प्रशसा न कर सको तो क्या निन्दा करके अपनी जीभ अपवित्र बनाओगे? उसकी सेवा को क्या बुरा समझोगे? आगम के अनुसार ससार मे सर्वोच्च पद तीर्थंकर का है। वह पद भी वैयावृत्य (वैयावच्च—सेवा) से मिलता है। वैयावृत्य कहो या सेवा कहो, बात एक ही है। अच्छे वस्त्र और गहने पहनना वैयावृत्य नही है अपितु मल—मूत्र उठाना दूसरे को खिलाना—पिलाना और अपनी चिन्ता छोड कर उन्हे सुख सुविधा पहुंचाना वैयावृत्य हैं। जो साधु की इस प्रकार वैयावृत्य

करता है, वह तीर्थंकर प्रकृति को वध करता है। अगर आपको व्याख्यान देने वाला साधु अच्छा लगे, लेकिन वैयावृत्य करने वाला अच्छा न लगे तो क्या काम चल सकेगा? ऐसी स्थिति मे वैयावृत्य करने वालो को हीन दृष्टि से देखना उचित नही है।

यह तो साधु की और गृहस्थ के घर की बात हुई। अब जरा नगर का भी विचार कर देखे। सबसे पहले यह प्रश्न उपस्थित होता है कि नगर मे सेठो की ही जरूरत है या हरिजन की भी जरूरत है? जब समाज व्यवस्था आरम्भ हुई, तब एक वर्ग को सेवा का कार्य सौंपा गया। वह वर्ग अगर सेवा करता है, तो क्या बुरा करता है? एक ओर चवर छत्र धारण किये कोई महिला हो और दूसरी ओर मेहतरानी हो तो इन दोनो मे जन–साधारण के लिए उपयोगी कौन है? सोने की डडी वाले चवर तो किसी विरले पर ही ढोरे जा सकते हैं तथा उनके अभाव मे किसी का कोई काम भी नही रुकता, लेकिन मेहतरानी तो जनसाधारण के लिए उपयोगी है। ऐसा होते हुए भी अगर आपको चामर–छत्रधारिणी ही अच्छी लगती है और उसी को बडी मानते हो तो कहना चाहिए कि आप वास्तविकता से दूर हट रहे हैं। अभी आपको ज्ञान नही है। वह मेहतरानी गटर साफ रखती है और नगर की जनता को रोगो से बचाती है। नगर की जनता के प्राणो की वह रक्षिका है। उसकी सेवा अत्यन्त उपयोगी है और अनुपम है। फिर भी चवर वाली को बडी समझना और उसके मुकाबले मे मेहतरानी को हीन एव नीच मानना भूल है, अज्ञान है और कृतज्ञता के विरुद्ध है । क्या आप मे इतनी उदारता नही आ सकती कि आप इस प्रकार की सेवा करने वालो को भी मनुष्यता की दृष्टि से देखकर उनके साथ मनुष्योचित ही व्यवहार करे?

आज उलटी ही स्थिति दिखाई दे रही है। लोग उन्हे अछूत या अस्पृश्य कहकर उनके प्रति ऐसा ही हीनतापूर्ण व्यवहार करते हैं, मानो वे मनुष्य ही नहीं हैं। कहा जा सकता हे कि वे गन्दे हे और अशुचि उठाते हैं। लेकिन यह विचारणीय है कि उन्हे गन्दा बनाया किसने? ओर वे अशुचि किसकी उठाते हैं? किसने अशुचि फैलाई हे? विचित्र न्याय हे। गदगी फेलाने वाले आप अच्छे और ऊचे, तथा गदगी मिटाने वाले वे बुरे ओर हीन। न्याययुक्त बुद्धि से उनके साथ अपने इस कर्त्तव्य की तुलना करके देखो तो आपकी आखे खुल जायेगी।

अब तो मेहतर अपना परम्परागत कार्य करते हें, लेकिन कर्मभूमि के आरम्भ मे भगवान् ऋषभदेव ने जब उन्हे यह काम सोंपा तब उन्हे क्या

समझाकर सौंपा होगा? और उन्होने क्या समझकर यह काम करना स्वीकार किया होगा? न जाने क्या उच्चतर आदर्श उनके सामने रहा होगा। आज तो मेहतर जाति अलग है, लेकिन उस समय तो जातियो की स्थापना नही हुई थी। उस समय सभी मनुष्य समान थे—किसी की कोई जाति ही नही थी। फिर क्या समझा कर भगवान् ने एक समुदाय को यह काम सौपा होगा? बच्चो की सार–सम्भाल करने वाली वृद्धा के प्रति घर का मालिक कहता है—'माताजी! यह सब आपका ही पुण्य प्रताप है। आप ही सब की सेवा करती हैं, रक्षा करती हैं, नही तो तीन दिन मे ही सब की धज्जिया उड जाए! आपकी बदौलत ही हम आराम की जिन्दगी बिता रहे हैं।' क्या इसी प्रकार आपको उन गदगी साफ करने वालो का उपकार नही मानना चाहिए? भगवान् ऋषभदेव ने इनके पूर्वजो को गदगी साफ करने का काम सौपते समय ऐसा ही तत्त्व न समझाया होगा? जिस प्रकार समाज मे सेवाभावी मनुष्य को बहुमान दिया जाता है। उसी प्रकार क्या भगवान् ऋषभदेव ने बहुमान देकर उन्हे यह काम न सौंपा होगा? आजकल की तरह सफाई करने वाले लोग उस समय अगर घृणा की दृष्टि से देखे गये होते तो कौन अपने को स्वेच्छापूर्वक घृणास्पद बनाता?

मित्रो! आप उनके कार्य की गुरुता और उपयोगिता का विचार कीजिए। इन्हे नीच न समझिए, वरन् अपना सहायक और सेवक मानिए। चित्त मे तनिक भी घृणा का भाव मत आने दीजिए। इन्हे हिन्दू समाज से बाहर जाने को बाध्य मत कीजिए। हिन्दू रहते हुए जब वे आपके पास आते है तो आप उन्हे दुरदुराते है, लेकिन वे ही लोग जब ईसाई या मुसलमान हो जाते है तब प्रेमपूर्वक पास मे बिठलाते है। क्या ऐसा व्यवहार करके अपने समाज से निकालना आपको ठीक मालूम पडता है? चारो वर्ण अपना अपना कार्य करते है और सभी कार्य समाज के लिए उपयोगी है। ऐसी स्थिति मे किसी को किसी के प्रति घृणाभाव रखने का क्या अधिकार है?

मै कुछ वर्ष पहले जब रतलाम मे आया था तो मैंने देखा था कि एक बीमार कुत्ते को चादनी चौक की एक दुकान मे टाट पर सुलाया गया था। यह देखकर मेरे मन मे आया कि यहा के लोगो को कुत्तो पर तो दया है, लेकिन कुत्ते के स्थान पर कोई मेहतर बीमार होता तो क्या उस पर भी दया की जाती? कुत्ता पशु है। आज तक भी कुत्ता मोक्ष नही गया है। लेकिन

हरिकेशी मुनि को कौन नहीं जानता कि वे चाण्डाल कही जाने वाली जाति मे उत्पन्न होकर भी मोक्ष गये हैं। भगवान् ने भी उनकी प्रशसा की थी और तपोधन होकर उन्होने मुक्ति प्राप्त की थी। इस प्रकार अन्त्यजनो के लिए तो मोक्ष का द्वार भी खुला है, लेकिन कुत्ता आज तक मोक्ष नहीं गया। मैं यह नही कहता कि कुत्ते पर दया न करो, मेरा आशय यह है कि मनुष्यता के नाते अछूत कहलाने वाले मनुष्यो पर भी दया करो। कम से कम उनसे घृणा मत करो। ये लोग हिन्दू समाज की रीढ हैं। तुम्हारे दुर्व्यवहार को सहन करते-करते ऊब जायेगे तो तुम्हे बहुत भारी पडेगी।

दीन-दु खी की सेवा की जाती है। बुद्धिबल ओर विद्वत्ता उसी की प्रशसनीय है जो गिरे को उठाता है और जो यह बात भली-भाति जानता है कि उनकी दशा न सुधरेगी तो भारत की दशा भी न सुधरेगी। यह समझकर जो इनकी सेवा मे लगा हुआ है, उसी की बुद्धि अच्छी है। यो तो मस्तक, मस्तक ही रहता है, हाथ, हाथ ही रहता है और पैर भी पैर ही रहता है, लेकिन मस्तक पैर की उपेक्षा नही करता, वरन् उनकी रक्षा करता है। इन सभी अगो का परस्पर सम्बन्ध तो है न? इसी प्रकार चारो वर्णो का सम्बन्ध है या नही? पैर नीचे हैं, फिर भी जैसे उनकी भी रक्षा की जाती है, उसी प्रकार आपको उन लोगो की भी रक्षा करनी चाहिए जो नीच कहलाते हैं ओर जो आपकी सेवा के लिये नीच बने हुए हें।

यह सब मैं आपसे इसलिये कहता हू कि आप अपने कर्तव्य का विचार करे और कोई यह न कह सके कि जेन सिद्धान्त मे गरीब अछूतो के लिए कुछ नही कहा गया। जैन सिद्धान्त हरिकेशी को भी वन्दनीय ओर पूजनीय महात्मा मानता हे। चित्तशभु से ओर लोगो ने गाना भी सुना था कि उन्हे मारा भी था। उस समय वे पहाड से गिर कर मरने की तेयारी मे थे, महात्माओ ने उन्हे भी अपनाया ओर अगले भव मे वे चक्रवती हुए। करकडु राजा हुआ तो उस भगी की सारी जाति को ही उसने ब्राह्मण बना दिया था।

जैन सिद्धान्त मे मनुष्यो के प्रति अस्पृश्यता को कोई स्थान नही हे। अस्पृश्यता एक भाव है और समस्त भाव कर्मो के उदय, उपशम आदि से ही होते है। मगर अस्पृश्यता उत्पन्न करने वाला कोई कर्म जेनागम मे नही हे।

मित्रो! सत्य को समझने का प्रयास करो। किसी के प्रति घृणाभाव लाकर अपने अन्त करण को कलुषित मत करो। मनुष्यता का अपमान मत

करो। प्राणी मात्र पर मैत्री भाव को अभ्यास करने वालो को मनुष्य केप्रति घृणा करना शोभा नही देता। अतएव उन पर दया भाव रखोगे तो अपना ही कल्याण होगा।*

अस्पृश्यता

(2)

ठक्कर बापा अन्त्यजोद्धार का जो काम कर रहे हैं, वह जैन–धर्म के सिद्धान्तो के प्रतिकूल नही है। जबकि जैन–धर्म प्राणीमात्र का उद्धारक धर्म है तो वह अन्त्यजनो के उद्धार का विरोधी कैसे हो सकता है? जैनधर्म अन्त्यजो के उद्धार से सहमत है। आगम मे कहा है–

सोवाग कुल संभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएस बलो णाम, आसि भिक्खू जिइंदिओ।।

उत्तरा 12 अ गा 1

भगवान् महावीर ने कहा– चाडाल कुल मे उत्पन्न हरिकेशीबल नामक मुनि थे, जो उत्तम गुणो के धारक तथा जितेन्द्रिय भिक्षु थे।

भगवान् के इस कथन से स्पष्ट है कि जैनधर्म के अनुसार किसी भी मनुष्य के लिये धर्म सेवन का निषेध नही है, सभी मनुष्य समान है। जेनग्रन्थ स्पष्ट कहते है–

मनुष्जतिरेकैव जसति कर्मोदयोद्‌भवा।

अर्थात् जाति नामक कर्म से उत्पन्न होने वाली मनुष्य जाति एक ही है। इस प्रकार जैनधर्म जाति–पाति के अनुचित और अन्यान्य भेदभाव को स्वीकार नही करता। जैनधर्म नीच समझे जाने वाले कुल के लोगो के लिये उसी प्रकार खुला हुआ है, जैसा उच्च माने जाने वाले कुल के लोगो के लिए। सभी मनुष्य जैन धर्म की शीतल छाया का आश्रय लेकर अपना आन्तरिक सताप मिटा सकते हैं। जैनधर्म नदी के निर्मल नीर के नाई सर्वसाधारण के लिये हे। उस पर किसी जाति विशेष या वर्ग विशेष का अधिकार नही हे।

वास्तव मे कोई मनुष्य ऐसा हो ही नही सकता, जिससे घृणा की जाय या जिसे छूने से छूत लग सकती हो। सभी प्राणियो की आत्मा एक सरीखी, परमात्मा के समान है और शरीर की बनावट के लिहाज से मनुष्य–मनुष्य मे कोई अन्तर नही है। फिर अस्पृश्यता का भेद किस उचित आधार पर खडा है, समझ मे नही आता। इसका एकमात्र कारण जातिभेद ही प्रतीत होता है, जिसे शास्त्रो मे हेय बतलाया है और जो सम्यग्दर्शन को मलिन करता है।

भारतवासियो मे यह एक बडा दोष है कि वे अपने यहा के कुछ भाइयो से ऐसा परहेज करते हैं कि उन्हे छू जाने पर स्वय को अशुद्ध मानने लगते हैं, अर्थात् वे अपने एक भाई को भी छूने मे पाप मानते हैं। मगर अछूत क्या समाज का अग नही हैं? जैसे शरीर का एक अग दूसरे अग का सहायक है, उसी प्रकार अछूत कहलाने वाले लोग भी, सिर, चरण का सहायक है, और चरण सिर का सहायक है। ऊचे माने जाने वाले मस्तक के लिये भी चरण की सहायता आवश्यक है। इस बात को लक्ष्य मे रखकर भारतवर्ष मे चरण–स्पर्श की प्रथा प्राचीनकाल से प्रचलित है, सिर को स्पर्श करने की नही। भले ही सिर ऊचा माना जाता है, मगर उसकी स्थिति पैरो पर ही है।

पूजा का अर्थ फूल चढाना नही, किन्तु जो वस्तु जिस काम के योग्य हो उसे उसी काम मे लाना और उसका अपमान न करना है। यह सच्ची पूजा है। हरिजन ईश्वर के चरण माने जाते हैं। अतएव हरिजनो को भूलना ईश्वर को भूलना है, हरिजनो का अपमान करना ईश्वर का अपमान करना है और देश को डुबोना है। गनीमत है कि भारत ने अब इस ओर ध्यान दिया है और वह हरिजनो का महत्व जानने लगा है। लोग अक्सर बडे–बडे समझे जाने वाले रोगो की ओर ध्यान देते हैं और छोटे रोगो की उपेक्षा करते हैं। लेकिन कभी–कभी इस विचार से भयकर हानि होती है। छोटे रोगो के कारण बडे रोग ही बडे बनकर भारी खतरा पैदा कर देते हैं। अतएव हरिजनो के प्रश्न की उपेक्षा करना ठीक नही है।

जैन समाज भी अब हरिजनो के विषय मे चेत गया है। जैनो को समझना चाहिए कि चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होकर भी हरिकेशी मुनि अनुत्तर धर्म का पालन करने वाले हुए। ऐसा भगवान् ने स्वय कहा है। इससे स्पष्ट है कि चाण्डाल कुल से किसी प्रकार का परहेज नही किया गया है फिर आप [illegible] उनसे परहेज करते है? जो लोग आपकी सेवा करते हैं उन्हे आप क्यो [illegible] हैं? अगर चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होने वाले भी अनुत्तर धर्म के

आराधक हो सकते हैं तो और क्या कमी रही, जिसके कारण उनसे छूत–छात मानी जाती है? जैन समाज मे छूतछात का भाव या तो दूसरो के सपर्क से आया है या अज्ञान के कारण आया है। मगर किसी भी जैन शास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही है कि किसी मनुष्य को छूने से कोई मनुष्य भ्रष्ट हो जाता है।

हरिजनो मे आई हुई खराबियो के विषय मे आप कह सकते हैं। मगर यह स्वाभाविक है कि सार–सम्भाल न रखने से प्रत्येक वस्तु मे खरावी आ जाती है। हरिजनो मे जो बुराइया आई हैं, वे आपकी लापरवाही के कारण आई है। आप उनका सुधार कर सकते हैं। प्रत्येक वस्तु का उपक्रम होता है। उपक्रम के दो भेद हैं– परिकर्म और वस्तु–विनाश। वस्तु का विनाश तो बिना किसी प्रकार की क्रिया किये ही हो सकता है, लेकिन परिकर्म करने के लिए क्रिया करनी ही पडती है। किसी प्रयोग द्वारा वस्तु को सुधारना परिकर्म कहलाता है। वस्तु के सुधार के लिए तो परिकर्म करना ही पडता है। परिकर्म जड और चेतन– सभी का होता हैं। अतएव हरिजनो मे अगर कोई खराबिया आ गई है तो उनका परिकर्म किया जा सकता है। मगर उनसे घृणा करना पाप है और उन्हे अछूत समझना भारी भूल है। अछूतो का शरीर आपके शरीर के समान ही है। वे भी आपकी ही तरह मनुष्य है। वे भी आर्यभूमि भारतवर्ष मे ही जन्मे हैं। फिर उनसे घृणा करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है?

अन्य लोगो के बिना भी समाज का काम चल सकता हे, लेकिन जिन्हे भगी कहते हो और जिनसे घृणा करते हो उनके बिना तो एक भी दिन काम चलना कठिन है। उदाहरण के लिए कोर्ट और कॉलेज मे कुछ दिनो की छुट्टी हो जाए तो कोई खास हानि नही होगी, मगर भगी यदि एक दिन भी छुट्टी मना ले और शहर की सफाई न हो तो आप कितनी कठिनाई मे पड जाएगे?

जैन धर्म कहता है कि चाण्डाल कुल मे उत्पन्न व्यक्ति भी मुनि हो सकता हे। मुनि होने पर वह महान् से महान् धर्म का ब्राह्मणो को भी उपदेश दे सकता है। हरिकेशी मुनि से ब्राह्मणो ने कहा था– आप यज्ञ क्यो नही करते? इसका उत्तर देते हुए हरिकेशी मुनि ने कहा था, हम यज्ञ ही करते हैं। कहा है–

सुसंवुडो पंचाहि सवरेहिं, इह जीवियं अणवकखमाणो।
वोसट्ट काओ सुई चत्तदेहो, महाजयं जयइ ज्ण्णहसट्ठं।।

–उत्तरा 12/42।।

सच्चा त्यागी और सच्चा मुनि ही सच्चा यज्ञ कर सकता है। इस पकार हरिकेशी मुनि ने ब्राह्मणो को सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया था।

यज्ञ का अर्थ आग मे घी होमना नही है। सच्चा यज्ञ वही है, जिसका उपदेश हरिकेशी मुनि ने दिया है। घी होमना तो यज्ञ के नाम पर पचलित हुआ एक आडम्बर था और यह आडम्बर प्रचलित हुआ था इसी कारण हरिकेशी मुनि ने ब्राह्मणो को सच्चे यज्ञ का उपदेश दिया था। गीता मे भी कहा है–

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतय. संशितव्रता ।

—अ 4, श्लोक 28

गीता का कथन है कि यदि तुम्हारे पास द्रव्य है तो द्रव्य का यज्ञ करो अर्थात् 'इद न मम' कह कर उसका उत्सर्ग कर दो। द्रव्य न हो तो तपो यज्ञ करो। तप करके उसके फल की कामना मत करो। 'इद न मम' कह कर उसका भी त्याग कर दो। अगर तप को अपने लिए रख छोडोगे तो उससे तपोमद उत्पन्न होगा और तुम्हारा पतन हो जाएगा। अगर तप नही है और योग है तो योग का त्याग करो। योग अपने लिए रख छोडोगे तो चमत्कार दिखाने मे फस जाओगे। अगर स्वाध्याय करते हो तो उसका भी यज्ञ कर डालो। ज्ञान हो तो उसका भी यज्ञ कर डालो।

हरिकेशी मुनि कहते हैं– हम ऐसा ही यज्ञ करते हैं। आग मे घी होम देना यज्ञ नही है। इस प्रकार चाण्डाल कुल उत्पन्न व्यक्ति भी महान् तत्त्व का आदेश दे सकता है। जैन धर्म उनसे किसी प्रकार का भेदभाव करना नही सिखाता।

वीरमगाम मे मुझसे प्रश्न किया गया था कि शास्त्र मे नीचगोत्र की बात आई है। फिर नीचगोत्र कर्म का उदय जिनको होगा, वे नीच क्यो माने न जाये? सक्षेप मे इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिन जीवो को नीचे गोत्र का उदय होता है, वे अस्पृश्य होते है, ऐसा किसी भी शास्त्र मे उल्लेख नही है। शास्त्र के अनुसार समस्त पशुओ को नीच गोत्र का उदय होता है। गाय, भैस घोडा आदि को भी नीच गोत्र का उदय है, तो क्या उन्हे आप अस्पृश्य समझते है? उन्हे अस्पृश्य मानना तो दूर रहा, गाय–भैसो के उदर मे बने रस को– दूध को भी आप अस्पृश्य नही मानते। इससे यह स्पष्ट है कि नीच गोत्र का उदय वाले पशुओ को अछूत न मानना ओर जिसमे उच्च गोत्र हो सकता [illegible]

तात्पर्य यह है कि श्री अमृतलाल ठक्कर हरिजनो के लिए जो कार्य कर रहे है वह जैनधर्म से प्रतिकूल नही है। इस विषय मे उनका श्रम प्रशसनीय ही कहा जा सकता है। आप लोगो को ठक्कर बापा की इस सेवा का अनुकरण करना चाहिए।

ठक्कर बापा के उद्‌गार

जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज का नाम बहुत दिनो से सुना करता था। महात्मा गाधी ने भी आपका उपदेश सुनने की इच्छा दर्शाई थी। जाना जा सकता है कि आपका उपदेश कैसा बोधप्रद होगा? आप खादी के विषय मे तथा हरिजनो के उद्धार के विषय मे भी सुन्दर रीति से उपदेश दिया करते है। आपका उपदेश जितना माना जाय, कम ही है। हरिजनो का काम पराया नही है। वे दूसरे नही है। अपने ही घर के किसी आदमी को हल्का या नीचा कहकर अलग कर देना अनुचित है। वे तो आपकी सेवा करे और आप उन्हे छिटकावे, यह भी अनुचित है। इसलिए हरिजनो को छिटकाना नही चाहिए। हरिजन किस प्रकार एकनिष्ठा से सेवा करते हैं, यह बताने के लिए मै आप लोगो के सामने एक उदाहरण रखता हू। पोरबन्दर मे मै नौकर था, तब की बात मुझे मालूम है। एक जैन कुटुम्ब जब कही बाहर जाता था, तब वह अपने घर ओर तिजोरी आदि की चाबी एक भगी को दे दिया करता था। उस पर यह कैसा विश्वास था? इस विश्वास का कारण यही है कि हरिजन लोग एकनिष्ठा से सेवा करने वाले होते हैं। वे आपके सेवक है। आपका मल-मूत्र साफ करते है और मरे ढोर का चमडा निकालते है। वे भी डाक्टर की भाति आपकी सेवा करते है। अतएव उनके प्रति भ्रातृभाव रखकर उन्हे अपना मानना चाहिए और उन्हे धर्म की शिक्षा देनी चाहिए। बस, इतना ही कहकर में बैठने की इजाजत लेता हू।

राम–राज्य

इस विस्तीर्ण पृथ्वी–मण्डल पर भारत एक अनोखा देश है। दूसरे देश जब सस्कारहीन और सम्भ्यताहीन पाशविक जीवन व्यतीत करते थे तब भी इस देश की सभ्यता और सस्कृति चरम –सीमा की उन्नति पर थी। भारत का वास्तविक इतिहास अभी तक पूरी तरह प्रकाश मे नही आया है। जो थोडा बहुत आया भी है, उसे भी लोगो ने अपने विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये पाय विकृत रूप मे ही उपस्थित किया है। भारतवर्ष अज्ञात अतीत काल से सर्वोत्कृष्ट सस्कृति का धनी, सर्वोच्च आदर्शो का निर्देशक और उच्चतम भावनाओ का केन्द्र रहा है।

भारतवर्ष के साहित्य का अध्ययन करने से उपयुक्त विचारो की सहज ही पुष्टि हो जाती है। प्राचीन– काल मे भारतवर्ष मे जो अनेकानेक महापुरुष हुए है या साहित्य मे जिन महापुरुषो का चरित्र–चित्रण किया गया है उनसे पतिफलित होने वाले आदर्शो की कल्पना साधारण नही है। आप किसी भी महापुरुष का चरित उठाकर पढिये, आपको उसमे असाधारण उज्ज्वलता कल्याणमयता और अनूठी भावना मिलेगी।

ऐसे अनेक महापुरुषो मे राम का नाम ससार प्रसिद्ध है। कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसने 'राम' का नाम न सुना हो? असख्य वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद आज भी राम का नाम प्रत्येक भारतवासी की जिह्वा और हृदय पर अंकित है। इतना होते हुए भी राम– चरित्र के सूक्ष्म आदर्श को समझने वाले अधिक नही है और उस आदर्श को जीवन मे मूर्त रूप देने वालो की सख्या तो उंगलियो पर गिनने योग्य ही होगी। राम का नाम जप लेना एक बात है और राम को समझना दूसरी बात है। किसी ने ठीक ही कहा है–

राम राम सब कोई कहे, ठग ठाकुर और चोर।
बिना प्रेम रीझे नही, दशरथ–नन्द किशोर।।

राम का नाम राजा भी जपते हैं और चोर भी जपते हैं। राजा, चोर को पकडने के लिये और चोर चोरी करने मे सफलता पाने के लिये।

बाइबिल मे लिखा है कि ईसा ने कहा— 'अय मनुष्यो! सावधान हो जाओ। अब ससार मे स्वर्गीय राज्य आने वाला है।' लोग आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे कि स्वर्गीय राज्य कैसे आने वाला है? ईसा ने उत्तर दिया कि तुमको वह धर्म सिखाया जायेगा कि जिसके प्रताप से यहा स्वर्गीय राज्य हो जाएगा।

ईसा ने स्वर्गीय राज्य की बात पीछे से कही, लेकिन भारत मे रामराज्य की कल्पना उससे पहले ही हो चुकी थी।

रामराज्य मे भाले मिट कर हल की फाल बन जायेगे। तलवारे कैंचिया हो जाएगी। वे कैंचिया भी और कुछ काटने के लिये नही, किन्तु आपस मे भेद–भाव काटने के लिये होगी। लोग अपने–पराये का भेद–भाव मिटा कर एक–दूसरे की सहायता और कल्याण मे प्रवृत्त हो जायेगे। राजा रहेगा, न प्रजा रहेगी। राज्य–शासन का अन्त हो जायगा। उसकी आवश्यकता ही न रहेगी।

यह आदर्श है। यद्यपि आदर्श अनन्त की ओट मे रहता है। लेकिन गति आदर्श की ओर ही होनी चाहिए। भावना यही रहनी चाहिए कि तलवार को म्यान मे ही पडी रहने दू– उसे काम न लू। तलवार की जगह प्रेम से काम लेना अधिक कारगर होता है।

जिन राम के नाम पर आदर्श राज्य की कल्पना 'रामराज्य' के रूप मे की गई है, उनके कार्यों और भावनाओ पर दृष्टिपात करो तो मालूम होगा कि रामराज्य किस प्रकार हो सकता है?

राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी। निश्चय हो चुका था कल रामचन्द्र को राजसिहासन पर आसीन कर दिया जायगा। अयोध्या के घर–घर मे आनन्द मनाया जाने लगा। राम को राज्य मिल रहा है, यह जानकर कौन आनन्द न मनाता? सभी लोग यह सोचकर आनन्द विभोर हो रहे थे कि राजा न होते हुए भी रामचन्द्र प्रजा की भलाई करते हैं तो राजा होने पर क्या न करेगे? इसके अतिरिक्त रामचन्द्र की प्रकृति इतनी सौम्य और मधुर थी कि वे सभी को प्रिय लगते थे और राजा के रूप मे उन्हे देखने की कल्पना से ही प्रजा आनन्दित थी।

राम के राज्याभिषेक का सम्वाद मिलते ही उनके मित्र हर्षित होकर उन्हे बधाई देने गये। राम गम्भीर हो कुछ सोच रहे थे। मित्रगण के हर्ष का

पार न था, यहा तक कि हर्षातिरेक से उनके मुख से शब्द ही नही निकलते थे। हर्ष और शोक के आधिक्य मे स्वभावत कठ अवरुद्ध हो जाता है। राम के मित्रो का भी गला हर्ष के कारण रुँध गया था। वे बधाई देने के लिए बोलने की चेष्टा करते थे, फिर भी हर्ष के अतिरेक से बोल नही पाते थे।

अपने मित्रो को इस अवस्था मे देखकर चतुर रामचन्द्र जी समझ गये। उस समय भी उनकी गम्भीर मुखाकृति स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होने कहा– आप लोगो के चेहरे से ही यह प्रकट है कि आप हर्षमग्न हैं और हर्ष का कुछ भाग मुझे देने आए हैं। जब आप हर्ष देने आये ही हैं तो फिर इतना विलम्ब क्यो? आप तो मौन साधे हुए हैं।

रामचन्द्र की बात सुनकर उनके मित्रो ने बोलने की बहुत चेष्टा की, फिर भी उन्हे मालूम हुआ जैसे उनकी जीभ पर किसी ने ताला लगा दिया है। किसी ने कुछ भी न कहा।

तब रामचन्द्र ने उन्हे फटकार बतलाते हुए कहा– सम्पत्ति और विपत्ति के समय इस प्रकार का हर्ष या विषाद करना बुद्धिमानो को नही सोहता। यह तो मूर्खो का काम है। बुद्धिमान वही है जो प्रत्येक परिस्थिति मे समभाव धारण करता है। अगर आप सम्पत्ति मे हर्ष मानेगे तो कल विपत्ति मे विषाद भी आपको घेर लेगा। जो सम्पत्ति का सहज भाव से ग्रहण करता है वह विपत्ति को भी उसी भाव से ग्रहण करने मे समर्थ होता है। विपत्ति की व्यथा उसे छू नही सकती। ससार तो सुख–दु ख और सम्पत्ति–विपत्ति के सम्मिश्रण से ही है। ये सब साधारण घटनाये हैं। इनमे हर्ष–शोक का अनुभव करना सच्चे ज्ञान का फल नही है।

रामचन्द्र का यह विवेचन सुनकर मित्रो की जीभ खुली। वे बोले– राजा और प्रजा ने मिलकर आपको राज्य देने का विचार किया है। कल आप अवध के राजा होगे। हम लोग यही बधाई देने के लिए आये हैं।

मित्रो की बात सुनकर राम की गम्भीरता कुछ और बढ गई। उस गम्भीरता ने उदासी का रूप धारण कर लिया। राम को उदास देख बधाई देने आए हुए मित्रो का हर्ष समाप्त–सा हो गया। उन्होने रामचन्द्रजी से पूछा– आप इतने गम्भीर क्यो हो रहे हैं? आपके मुख पर सदैव जो स्मित दृष्टिगोचर होता था आज उसमे वृद्धि होने के बदले ह्रास क्यो हो गया है? इसका क्या कारण है? राज्य–प्राप्ति के इस अपूर्व आनन्दमय अवसर पर आप उदास क्यो हो रहे हैं?

रामचन्द्रजी ने कहा— 'आप लोगो को मेरे उदास होने का कारण मालूम नहीं है। आप नहीं जानते कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या हे? राज्य करना मेरे जीवन का साध्य नहीं है। अधर्म का नाश करके ससार मे धर्म की स्थापना करना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है।'

इस समय धर्म का नाश हो रहा है और अधर्म फैल रहा है। मुझे अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करनी है। धर्म का उत्थान करना ही मेरा ध्येय है। क्या तुम लोग नही देखते कि ससार मे कैसा अधर्म छाया हुआ है? मनुष्य क्या करने के लिए जन्मे हैं और कया कर रहे हैं?

मैं अधर्म मे पडे हुए मनुष्यो की उन्नति का उपाय सोचता था, इतने मे ही मुझे खबर मिली कि मैं कल राज्य के पिजरे मे डाला जाऊगा। आप लोग इस प्रकार खेदजनक खबर लाकर के भी हर्ष मना रहे थे, यह और आश्चर्य की बात है। आप लोगो ने राज्य को सुख का चिह्न समझा है और मेरी समझ मे राज्य बन्धन है।

रामचन्द्र की बात सुनकर उनके मित्रो की प्रसन्नता भी हवा हो गई। वे मन ही मन विचार करने लगे—रामचन्द्रजी की सेवा मे हम तो इसलिए उपस्थित रहते थे कि राजा होने पर हमे भी कोई अच्छा— सा ऊचा पद मिल जायगा, लेकिन जब वह शुभ समय आया और हम उन्हे बधाई देने आये तो ये कहते है— राज्य बधन है। अब हमे क्या करना चाहिए?

मित्रो ने प्रकट मे कहा—आप राज्य को बधन क्यो कह रहे हैं? राज्य मिलने पर और राजसत्ता प्राप्त होने पर क्या नही किया जा सकता? आप जो कार्य करना चाहते हैं, वह राजसत्ता की बदौलत तो और भी सहूलियत से होगा। राजसत्ता पाकर आप सभी कुछ कर सकते है।

राम ने उत्तर दिया— राज्य करना और राजसत्ता के बल पर सुधार करना साधारण मनुष्य का कार्य है। ससार के उत्थान का महान् कार्य इस प्रकार नही हो सकता। जिन प्राचीन महापुरुषो ने यह गुरुत्तर कार्य किया, उन्होने प्राप्त राज्य को भी पहले ठुकरा दिया था। तभी उन्हे अपने महान् उद्देश्य मे पूर्ण सफलता मिल सकी। राज्य करना कोई बडी बात नही हे। यह तो भरत या लक्ष्मण भी कर सकते हें। फिर उन्हे राज्य न देकर मुझे ही क्यो इस बधन मे बाधा गया हे?

मित्र कहने लगे— आप भी क्या उल्टी गगा बहाना चाहते हे? बडे पुत्र को राज्य देने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही हे। बडे आप हें, भरत या लक्ष्मण बडे नहीं हें। ऐसी अवस्था मे आपको राज्य न देकर उन्हे देना

अनुचित होगा। हो सकता है कि राज्य पाने का निश्चय होने पर आप ऐसा कह रहे हैं, लेकिन भरत को राज्य मिलने पर शायद आप ही कहने लगते कि राज्य का अधिकारी तो मैं था, भरत को क्यो राज्य दिया गया?

राम बोले—'आपके कथन का अर्थ यह हुआ कि बडे को राज्य लेना चाहिए, देना नही चाहिए। लेकिन मेरी समझ मे यह नही आता कि अगर मै दू तो क्या मेरा बडप्पन चला जाएगा? बडप्पन देने मे है या लेने मे है? दाता बडा है या लेने वाला याचक?'

'दाता।'

लेकिन आजकल क्या घर की लडाई मिटाने के लिए बडा भाई अपना हक छोटे भाई को देता है? सिर पर आ पडते ही यह बात याद नही रहती। लेने मे अपने आपको बडा समझ लेना ही पतन का कारण है। ज्ञानी पुरुष कहते है— 'लेने से कोई बडा नही होता, बडप्पन तो देने मे ही है।'

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति सयमी।
यस्या जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुने.।।

—गीता।

अज्ञानी पुरुष जिसे रात कहते हैं, ज्ञानी उसे दिन कहते हैं और ज्ञानी जिसे दिन कहते है, उसे अज्ञानी रात कहते हैं। यह प्रथा सदा से चली आयी है। इसी के अनुसार अज्ञानी लोग लेने वाले को बडा समझते हैं और ज्ञानवान् पुरुष देनेवाले को बडा कहते हैं।

रामचन्द्र अपने मित्रो से कहते हैं—'आपके कथनानुसार राज्य बडे लडके को मिलना चाहिए। वह छोटे बेटे को नही दिया जा सकता। छोटे लडके को देना उलटी गगा बहाना है। लेकिन मेरी समझ मे यह नियम ही उलटा है।

मै रामचन्द्र की जिस भावना को यहा प्रकट कर रहा हू, वह मेरी कल्पना नही है। इसकी साक्षी मौजूद है। तुलसीदासजी रामायण मे कहते है—

विमल वंश यह अनुचित एकू, बंधु विहाय बडेहि अभिषेकू।
प्रभु सप्रेम पछतानि सुहाई, हरउ भक्त—मन की कुटिलाई।।

तुलसीदासजी की इन दो चौपाइयो की ही यह व्याख्या है।

राम कहते है—तुम लोग कहते हो, छोटे को राज्य देने का नियम नही है इसलिए छोटे को राज्य देना अनुचित होगा, लेकिन मैं कहता हू कि निर्मल सूर्यवंश मे यही एक अनुचित प्रथा है कि छोटे भाइयो को छोडकर

बडे को राज्य दिया जाय। मैं इस प्रथा को निष्कलक सूर्यवश का कलक मानता हू।'

गुलिस्ता मे एक कहानी आई है। एक अमीर अपने बाए हाथ की छोटी अगुली मे अगूठी पहने था। किसी गरीब ने उसके पास आकर पूछा–'दाहिना हाथ बडा होता है या बाया?' अमीर ने उत्तर दिया–'जो हाथ ज्यादा काम करता है, इस कारण वही बडा माना जाता है।' तब गरीब ने कहा–तो आपने अगूठी बाये हाथ मे क्यो पहन रक्खी है? दाहिने हाथ को क्यो नही पहनाई? अमीर बोला–मैंने पहले ही कहा कि जो ज्यादा काम करे, वही बडा है। जो छोटे से काम कराता है, वह बडा नही है। मैंने बाये हाथ मे अगूठी पहन रक्खी है, इससे दाहिने हाथ का बडप्पन आप ही प्रकट हो जाता है। छोटे को देना ही तो बडप्पन है। बडप्पन और क्या है? मैंने दुनिया को यही सीख देने के लिए बाये हाथ मे अगूठी पहनी है। इससे यह जाहिर हो जाता है कि छोटे का शृगार कर दो, जिससे बडे के बडप्पन को धक्का न लगे।

गरीब ने फिर अमीर से पूछा–अच्छा, यह अगूठी बडी उगली को न पहनाकर सबसे छोटी को किसलिए पहनाई है?

अमीर ने कहा–दाहिना हाथ बडा और बाया हाथ छोटा है, यह बात तो मैं बता ही चुका हूँ, लेकिन यह और जान लो कि इस हाथ मे यह उगली सबसे छोटी है। सबसे छोटी होने के कारण ही इसे अगूठी पहना रक्खी है। छोटे की सार सभाल करने वाला ही बडा कहलाता है।

जो बडा कहलाने वाला पुरुष इस बात का ध्यान रखता है, वह नीचे नही गिरता, किन्तु चढता ही जाता है। यद्यपि बडप्पन और छुटपन सापेक्ष हैं तथापि छोटो की रक्षा करने वालो का बडप्पन बढता ही है, घटता नही।

माया से माया मिली, कर–कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात।।

आजकल दुनिया मे यही हिसाब चल रहा है। बडे, बडे से आदर के साथ मिलते है लेकिन छोटे की कोई बात भी नही पूछता।

अमीर की बात सुनकर गरीब ने कहा–'आपके विचार बडे उत्तम हैं, इसी कारण आप बडे हे। जो मनुष्य अपने शरीर के सबध मे भी ऐसा विचार रखता है, वह छोटो को क्यो नही बढाएगा?'

गुलिस्ता की यह कल्पना सुन्दर हे मगर गुलिस्ता से बहुत पहले भारत के साहित्य मे ऐसी बाते पाई जाती हे। रामचन्द्र कहते हैं–

विमल वंश यह अनुचित एकू, बन्धु विहाय बडेहि अभिषेकू।।

बडे को राज्य दिया जाय, छोटे को नही, यह सूर्यवश की परम्परा अनुचित है। यह अविश्वास का कारण है। सगे भाइयो मे यह भेदभाव क्यो? क्या दाहिना हाथ अपना है और बाया हाथ पराया है? जिसे इस बात पर विश्वास है कि देने से लक्ष्मी बढती है, वह ऐसा विचार कदापि नही करेगा। देना क्य है?

स्वस्यातिसर्गो दानम्।

किसी वस्तु पर अपनी सत्ता का उत्सर्ग कर देना ही दान है। दान से लक्ष्मी बढती है, घटती नही है।

राज्यपाप्ति के अवसर पर राम का इस प्रकार पछताना भक्त के मन की कुटिलता हरने वाला है। राम ने पछता कर भक्त के मन की कुटिलता का हरण किया है। इस पछतावे मे गीता की यह बात भी आ जाती है–

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाशान्तिरार्जवम्।

कुबेर के खजाने जैसा खजाने वाला राज्य मिलने पर भी पछताना भक्तो के मन की कुटिलता हरने के लिए है। इससे उन्हे सम्पत्ति मिलने पर अभिमान न करने की शिक्षा दी गई है।

राम ने राज्य पाने पर भी अभिमान नही किया था, वरन् अपने मित्रो का अभिमान हरने के लिए पश्चात्ताप किया था। लेकिन आप लोग जरा अपनी ओर नजर फेरिये। आपको नया जूता पहनने से ही तो अभिमान नही आता? नया जूता पहनने से जिनके हृदय मे अहकार जाग उठता है, वे किसके भक्त है? राम के या दाम के या चाम के?

रामचद्र का आदर्श सामने रखकर परमात्मा से प्रार्थना करो–'हे प्रभो! मेरे मन की कुटिलता हरो। मेरे अन्त करण मे अभिमान का अकुर न उगे।

मनुष्य मात्र निरभिमान होकर नीचे गिरे हुए लोगो को ऊपर उठाने लगे और दूसरो के हित के लिए अपने स्वार्थो का बलिदान करना सीख ले तो घर–घर मे राम–राज्य हो जाय।

राज्य की तृष्णा और वैभव की वाछा ने ही ससार को नरक बना रखा है। जिस दिन सभी लोग न्याय–अन्याय को समझकर न्यायपथ का अवलम्बन करेगे, अन्याय से दूर रहेगे और प्राणीमात्र को अपना बन्धु समझकर उनके सुख मे सुख और दुःख मे दुःख अनुभव करने लगेगे, तभी राम की इस पवित्र भूमि पर राम–राज्य की प्रतिष्ठा होगी।

शिक्षा

शिक्षा का विषय बहुत महत्वपूर्ण है। मनुष्य अनन्त शक्तियो का तेजस्वी पुज है। मगर उसकी शक्तिया आवरण मे लिपटी हुई हैं। उस आवरण को हटाकर विद्यमान शक्तियो को प्रकाश मे लाना शिक्षा का ध्येय है। मगर शिक्षा शक्तियो के विकास एव प्रकाश मे ही कृतकृत्य नही हो जाती । शिक्षाकार्य मानवीय सामर्थ्य को विकसित कर देना ही नही है। शक्तियो के विकास के साथ उसका एक और महान् कर्त्तव्य है। वह यह कि मनुष्य को शिक्षा ऐसे साचे मे ढाल दे कि वह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग न करके सदुपयोग ही करे।

सिर्फ शक्ति का विकास हो जाना कल्याणकारी नही है। आततताइयो से अबला की रक्षा करने वाले मे भी शक्ति की आवश्यकता है और अबला की रक्षा करने वालो का गला काट कर अबला को सताने वाले मे भी शक्ति अपेक्षित है। प्रत्येक अच्छे काम मे अगर सामर्थ्य आवश्यक है तो बुरे काम मे भी शक्ति चाहिये ही। बिना शक्ति के कोई बुरा काम भी नही होता। इस प्रकार शक्ति अपने आप मे कोई महत्वपूर्ण वस्तु नही है, मगर शक्ति की सार्थकता उसके सदुपयोग मे है। आसक्ति की अपेक्षा शक्ति अच्छी चीज है, मगर शक्ति का सदुपयोग ही हितावह है, इसमे सन्देह नही।

यदि शिक्षा मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने के लिए है तो उसे दोनो उत्तरदायित्व निभाने होगे– दबी हुई शक्तियो का भी विकास करना होगा और उनके सदुपयोग की ओर भी मनुष्य को झुकाना होगा। आजकल वहुत से लोग पहली बात को स्वीकार करते हे मगर दूसरी को नही। वह शक्ति–विकास को आवश्यक समझते हैं, मगर उनके उपयोग के विषय मे उपेक्षा वतलाते हैं। इस कारण शिक्षा से जो लाभ होने चाहिये वे नही हो रहे हें। ससार मे गडवड मच रही हे।

आजकल बहुत सी पाठशालाए खुली हुई है और लोग उन्ही पाठशालाओ मे अपने बच्चो को पढाकर ज्ञानी बनाने की आशा करते हैं। मगर समझदारो को सदैव यह भय रहता है कि ये पाठशालाए सज्ञान बनाने के बदले कही पठितमूर्ख तो तैयार नही करती?

पढाई किस प्रकार होनी चाहिए, आर्य– शिक्षा का प्राचीन काल मे क्या स्वरूप था और आजकल क्या है, यह लम्बा विषय है। सक्षेप मे यही समझ लेना चाहिए कि शिक्षा के विषय मे अध्यापक और विद्यार्थी– दोनो वर्ग जिम्मेदार हैं, किन्तु विद्यार्थियो और विद्यार्थी पर अत्यधिक उत्तरदायित्व है। जो लोग अपने बच्चो को पढाते है, उनकी एक मात्र यही इच्छा होती है कि बच्चा सुधर जाय। इसी उद्‌देश्य से वे बच्चे को अध्यापक के सुपुर्द करते है। ऐसी दशा मे अध्यापको को अपनी छत्र–छाया मे रहने वाले छात्रो के प्रति अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। विद्यार्थी के भविष्य का बहुत दारमदार अध्यापक पर ही है। वे चाहे तो विद्यार्थी को जीवन–सग्राम के लिए समर्थ वीर बना सकते है और यदि चाहे तो विद्या के नाम पर मूर्खता की ऐसी शिक्षा दे सकते है, जो जन्म भर निकले ही नही। इसीलिए कहा जाता है कि अध्यापको के ऊपर बहुत बडा उत्तरदायित्व है।

यद्यपि माता–पिता का भी बालको के सुधार मे बडा हाथ है, किन्तु अध्यापको की अपेक्षा कम है। माता–पिता की जिम्मेदारी कच्चा माल पैदा करने की जिम्मेदारी के सदृश है। किसान कपास पैदा करता है। उसकी जिम्मेदारी यही है कि वह भली–भाति कपास तैयार कर दे। इस के पश्चात् तो व्यक्ति रूई औटकर उससे वस्त्र तैयार करता है, उस पर बडी भारी जिम्मेदारी रहती है। यह उसी का कार्य है कि वह वस्त्र को लज्जा की रक्षा करने के काबिल बनावे।

बालको के विषय मे यही बात है। उनके विषय मे भी दो जिम्मेदारिया है– एक कच्चा माल तैयार करने की और दूसरी पक्का माल बनाने की। माता–पिता बच्चो मे अच्छे सस्कार डाल कर, उनका पालन–पोषण करके अध्यापको को सौप देते है। यह कच्चा माल तैयार करना कहलाया। अब उसे पक्का बनाने का उत्तरदायित्व अध्यापको पर आता है। वे उसे एक आदर्श नागरिक बना सकते है ताकि वह अच्छे कपडे की तरह अपने देश और अपनी सस्कृति की रक्षा कर सके। अगर उन्होने ऐसा नही किया तो वही छात्र ससार के लिए लज्जाहरण करने वाले वस्त्र की भाति बुरा सिद्ध हो सकता है।

मगर दुःख के साथ यह देखा जाता है कि समाज मे अध्यापक के महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व के अनुरूप उसकी प्रतिष्ठा नही है। उसे दूसरे लोग तनख्वाह पाने वाले अन्य कर्मचारियो के समान ही समझते हैं और स्वय अध्यापक मे भी यही भावना घर कर गई है कि हम वेतन देने वाले के नौकर है। आज अधिकाश शिक्षक जैसे–तैसे अपने घटे पूरे करते हैं। उन्हे अपने विद्यार्थी के सुधार और बिगाड से कोई मतलब नही रहता। स्कूल की छुट्टी हुई और साथ ही अध्यापक ने अपने कर्तव्य से छुट्टी पाई। ऐसा बेदर्द व्यवहार करने वाले अध्यापक, सच्चे शिक्षक नही कहे जा सकते। कहना चाहिये कि उन्होने पठन–पाठक का महत्व नही समझ पाया है। वे लोग अध्यापकी का व्यवसाय करके पेट पालना चाहते है, गुरुपद की महत्ता उन्होने नही समझी। ऐसे अध्यापक यह नही सोचते कि इन कोमल बुद्धि बालको का जीवन हमारे जिम्मे सौंपा गया है, अतएव पूर्ण उद्योग के साथ उन्हे सुधारना हमारा पवित्र कर्तव्य है। अगर हमारी लापरवाही के कारण बालक का सुधार नही होता तो हम बालक के प्रति, उसके सरक्षक के प्रति, जाति, देश, समाज और विश्व के प्रति विश्वासघाती ठहरेगे। सारे ससार की भलाई और बुराई जिन व्यक्तियो पर निर्भर है, उनको घडने का काम साधारण नही है।

अध्यापक की स्थिति को भी मैं भली भाति जानता हू। शिक्षा का सचालन करने मे वे कितने स्वाधीन हैं, यह भी छिपी हुई बात नही है। सरकारी शिक्षा सस्थाओ का उद्देश्य और उनकी पद्धति सरकार ने नियत कर दी है। सरकार अपने एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति इन सस्थाओ से कराना चाहती है। उसे निठल्ले और क्लर्की का काम करने वाले आदमी चाहिये। शिक्षा– सस्थाये ऐसे आदमी तैयार करने के कारखाने हैं। इन सस्थाओ मे शिक्षक स्वाधीन भाव से कुछ कर नही पाते।

सरकारी स्कूलो और कॉलेजो के सिवाय हमारे यहा कुछ थोडी–सी स्वतत्र शिक्षा सस्थाये है। ये सस्थाये धनवानो की सहायता पर निर्भर है। उनके पदाधिकारी अफसर शिक्षण–शास्त्र से अनभिज्ञ होते हे और अध्यापको को उनके इशारे पर चलना पडता है। ऐसी सस्थाओ के शिक्षक भी स्वेच्छापूर्वक कोई विशेष कार्य करने मे असमर्थ रहते हैं।

अलबत्ता जिन शिक्षा सस्थाओ के शिक्षक स्वाधीनतापूर्वक कार्य कर पाते हैं वहा छात्रो के जीवन–निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता हैं। मगर ऐसी सस्थाओ की सख्या नगण्य है। अधिकाश सस्थाए तो उपर्युक्त प्रकार की ही हैं।

इतना होते हुए भी उन सस्थाओ के शिक्षक, विद्यार्थियो के जीवन–निर्माण मे बहुत कुछ भाग ले सकते हैं। विद्यार्थियो के जीवन को सुधारने के लिये उनमे योग्य सस्कार डालना उनके लिए अशक्य नही है। किन्तु अध्यापक स्वय ही उस ओर ध्यान नही देते। अध्यापक अपने जीवन–निर्वाह के लिये वेतन लेते हैं, यह कोई बुराई नही है और परिस्थिति देखकर यह आवश्यक भी है, किन्तु उनमे आपके प्रति तथा वेतन देने वालो के प्रति हीनता का–गुलामी का– जो भाव आ गया है, वह बहुत बडी बुराई है।

प्राचीन काल मे आजकल की भाति क्रय–विक्रय नही होता था। गुरुजन अपने शिष्यो को उदारतापूर्वक विद्यादान देते थे और शिष्यगण श्रद्धापूर्वक उसे ग्रहण करते थे। प्राचीनकाल का इतिहास देखने पर विद्या के लेन–देन का क्रम और ही प्रकार का प्रतीत होता है।

भगवान् महावीर भी अध्यापक के पास विद्या पढने भेजे गये थे। यद्यपि तीर्थंकरो के जन्म से ही तीन ज्ञान होते है और वे गर्भावस्था से ही ससार को जानने देखने लगते है। मा के पेट मे ही सब विद्याये लेकर उत्पन्न होते हैं फिर भी पिता ने अपना कर्तव्य समझकर उन्हे पण्डित के पास पढने के लिए बिठलाया। पिता ने बडी धूमधाम के साथ उन्हे पण्डित के यहा भेजा। भगवान् जन्मजात ज्ञानी थे, किन्तु उन्होने पढने जाने से इन्कार करके माता–पिता का अविनय नही किया। वे प्रसन्नतापूर्वक चले गये। पढाई का यह कायदा है कि गुरु ऊचा बैठता है और शिष्य नीचे। भगवान् इन्द्र द्वारा पूजित थे, परन्तु अध्यापक के सम्मुख नीचे बैठने मे उन्हे कुछ भी आपत्ति नही हुई। अपने माता–पिता को सन्तुष्ट करने के लिये वे नम्रतापूर्वक अध्ययन करने लगे। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि विनय करने से बडप्पन घटता नही है बल्कि बढता है। भगवान् नीचे बैठकर अध्यापक से पढने लगे। पण्डित जी जिस तरह कहते थे भगवान् उसी तरह पढते थे। इस असीम नम्रता के द्वारा भगवान ने हमे शिक्षा दी है कि जिसे हम अपना गुरु मान ले, उसके प्रति हमे कैसा व्यवहार करना चाहिये।

आखिर यह बात कब तक छिपी रह सकती थी? कभी न कभी वह प्रकट होनी ही थी। उसी दिन इन्द्र ने ब्राह्मण का वेष बनाया और वह पण्डितजी के पास आया। ब्राह्मणवेषी इन्द्र ने पडितजी से व्याकरण सबधी कुछ प्रश्न पूछे। प्रश्न इतने कठिन थे कि पडितजी उनका समाधान करने मे समर्थ न हो सके। वे मन ही मन घबराये। भगवान् ने पडितजी की यह दशा

देखकर, उनकी लज्जा बचाने के लिए इन्द्र से कहा–'अजी, ये प्रश्न पडितजी से क्यो पूछते हो? इन साधारण से प्रश्नो का समाधान तो इनका शिष्य (मैं) ही कर सकता हू। लो, सुनो। मैं इनका उत्तर देता हू।' यह कहकर भगवान् ने प्रश्नो का समाधान कर दिया। कहा जाता है–भगवान् के मुख से उस समय जो वचन धारा निकली थी, उसी से जैनेद्रव्याकरण की रचना हुई थी।

भगवान् यद्यपि लोकोत्तर ज्ञानी थे–अवधि ज्ञान के धारक थे, तथापि उन्होने अपने गुरु का सम्मान किया। उन्होने अपने अध्यापक से यह न कहा कि मै आपसे अधिक ज्ञानी हू। ऐसे विनीत विद्यार्थी और कर्त्तव्यनिष्ठ अध्यापक हो तो किस बात की कमी रह जाय? आज की दशा तो यह है कि स्कूल या पाठशाला छोडने के बाद फिर कभी गुरु का समाचार पूछने की ही आवश्यकता नही मालूम होती। वे मरे या जीये, छात्रो को उनसे कोई मतलब नही । इस भावना के परिणाम–स्वरूप विद्यार्थियो की भी कुछ कम दुर्दशा नही है। पढकर निकलते ही उन्हे पेट भरने की और नौकरी पाने की चिन्ता घेर लेती है।

जो विद्या बेगार के रूप मे पढी और पढाई जाती है, वह गुलामी नहीं तो क्या स्वाधीनता सिखलायेगी?

शिक्षा के सबध मे प्राचीन काल का एक उदाहरण और लीजिए। कृष्णजी इतिहास मे प्रसिद्ध महापुरुषो मे से एक है। वे बहुत बडे राजा के पुत्र थे। महापुरुष होने के कारण उनमे बहुत अधिक समझ थी। फिर भी माता–पिता का आग्रह मानकर वे सान्दीपनि ऋषि के पास पढने गये। इन्ही ऋषि के पास सुदामा नामक एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी भी पढता था। कृष्णजी का उससे प्रेम हो गया। दोनो गाढे मित्र बनकर रहने लगे।

सयोगवश एक दिन गुरु कही चले गये और घर मे जलाने की लकडी नही थी। लकडी के अभाव मे गुरुपत्नी भोजन नही बना सकती थी। यह देखकर कृष्णजी अपने मित्र सुदामा को साथ लेकर लकडी लाने के उद्देश्य से जगल की ओर चल दिये। दोनो जगल मे पहुचे। वहा लकडिया तोड कर या काटकर जब दोनो ने भारे बाधे तो बडे जोर से वर्षा होने लगी। रात भर वर्षा होती रही। वर्षा के कारण कृष्ण और सुदामा लकडिया लिए वृक्ष के नीचे खडे रहे।

मूसलाधार पानी बरस रहा था। तेज आधी चेन नही लेती थी। मेघो की भयकर गर्जना कानो के पर्दे फाडने को तेयार थी। बिजली कडक रही थी। घोर अधकार चारो ओर फेला था। हाथ को हाथ नही दीखता था। ऐसे

समय मे दो बालक पेड के नीचे खडे ठिठुर रहे थे। वर्षा और आधी से यद्यपि उन्हे बडा कष्ट हो रहा था, तथापि उनके मन मैले नही थे। अपने कष्टो की उन्हे चिन्ता नही थी। उन्हे चिन्ता थी तो केवल यही कि हम लोगो के समय पर न पहुच सकने के कारण आज आचार्य के घर रोटी न बन पायी होगी और उन्हे भूखा रहना पडा होगा! कृष्णजी रात भर अपने साथी सुदामा से इसी प्रकार की बाते करते रहे।

प्रात काल होने पर गुरु अपने घर आये। विद्यार्थियो को न देखकर अपनी पत्नी से पूछा। पत्नी ने उत्तर दिया, कृष्ण और सुदामा लकडी लेने के लिए कल से ही जगल मे गये है और वर्षा तथा आधी के कारण अब तक नही लौटे। यह सुनकर गुरु नाराज होने लगे, कहा—तुमने बच्चो को लकडी लाने के लिए भेजा ही क्यो?

गुरुपत्नी ने कहा—मना करती रही, फिर भी वे लोग चले गये।

गुरु तत्क्षण जगल की ओर चल पडे। जगल मे जाकर उन्होने देखा—कृष्ण और सुदामा दोनो पेड के नीचे खडे ठिठुर रहे हैं। उन्हे देखकर आचार्य ने कहा—'वत्स! मै तुम लोगो को क्या पढाऊ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिए, वे तो तुम लोगो मे मौजूद ही हैं। देखो न, बेचारा सुदामा इस विपत्ति से कितना घबरा गया है। तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण घबराये नही और सदा की भाति प्रसन्न दीख पडते हो।' इतना कहकर आचार्य उन्हे घर ले गये।

विद्यार्थी की अपने गुरु के प्रति कैसी श्रद्धाभक्ति होनी चाहिए, उसका आदर्श इस कथा मे बतलाया गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अध्यापको मे और विद्यार्थियो मे आज यह बात कहा?

पूर्व काल मे शिक्षा की क्या दशा थी यह देखने के लिए शास्त्रो की ओर ध्यान दीजिए। ठाणागसूत्र के तीसरे मे भगवान् महावीर कहते है।—

तउ दुप्पडियारा पन्नत्ता, समणाऊलो तजहा—अम्मा पिउणो।

भगवान् ने अपने शिष्यो से कहा—शिष्यो! तीन के ऋण से मनुष्य सरलतापूर्वक उऋण नही हो सकता।

शिष्यो ने कहा—भगवान्! अनुग्रह करके बतलाइए, वे तीन कौन से है?

भगवान बोले—माता-पिता जिसकी सहायता से बढे वह स्वामी और [illegible] इन तीनो के ऋण से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है।

आजकल के शिक्षको को भी इन तीन प्रकार के ऋणो के भार की शिक्षा देकर विद्यार्थियो को इनसे उऋण होने के योग्य बनाना चाहिए विद्यार्थियो को ऐसी शिक्षा न दी जाय कि वे इनके प्रति कृतज्ञ होने के बदले कृतघ्न बने।

पहला ऋण कितना है, यह बात विद्यार्थियो को भली–भाति समझना चाहिए। छात्रो के विद्यालय मे आने और शिक्षा ग्रहण करने का यह फल अवश्य होना चाहिए, वे माता–पिता के साथ अपने सम्बन्ध और उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को भली–भाति समझे। साथ ही धर्म–कर्म और नीति आदि की समुचित शिक्षा ग्रहण कर सके। इन सब प्रकार की शिक्षाओ के द्वारा बालको को विनीत बनाना अध्यापको का कर्त्तव्य है। बालक को भी विनीत बनाना और अपने माता–पिता को अपना सर्वस्व मानकर उनकी सेवा मे चित्त लगाना उचित है। शास्त्र मे माता–पिता के ऋण से मुक्त होना बडा भारी कार्य बतलाया गया है। कहा गया है कि पुत्र प्रतिदिन सवेरे उठकर सुन्दर तेलो से माता–पिता की मालिश करे, सुगन्धित उबटन लगावे। स्वच्छ और सुगन्धिमय जल से उन्हे स्नान करवाकर कोमल वस्त्र से उनका शरीर पोछे। इसके पश्चात् उन्हे सुन्दर वस्त्रालकार और सरस भोजन से सन्तुष्ट करे। तदुपरान्त कधे पर बिठलाकर, श्रवण की तरह इधर–उधर फिरावे । अपने मानापमान का ध्यान छोडकर उन्ही को अपना सर्वस्व माने। उन्हे ईश्वरवत् मानकर उनकी सेवा करते समय हृदय मे रच मात्र भी कभी विकार न आने दे। वाणी से भी उनका सम्मान करे। उनके समक्ष कभी भद्दे और अश्लील शब्दो का प्रयोग न करे। उनकी वाणी को परमात्मा की वाणी समझे। उनके सामने उच्च्य आसन पर न बैठे । जो वस्त्र उन्हे बुरा मालूम हो, वह न पहने और न उनकी इच्छा के विरुद्ध भोजन करे। इस प्रकार सब तरह की सेवाये करता हुआ पुत्र अपने को धन्य माने।

गौतम स्वामी भगवान् से पूछते हैं–प्रभो! क्या इतनी सेवा करने से पुत्र माता–पिता के ऋण से छुटकारा पा जायेगा?

भगवान् ने उत्तर दिया–नही, गोतम! ऐसा नही हो सकता। इतना करके भी माता–पिता के ऋण से मुक्ति नही मिल सकती।

इस जगह आजकल एक नया तर्क उठाया जाता हे। कुछ लोग कहते हें–जब इतनी सेवा करने पर भी माता–पिता का ऋण नही चुक सकता, तो स्पष्ट हे कि उनकी सेवा करना भूल हे।

जिस शास्त्र से इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, उसे लोग शास्त्र नही रहने देते, बल्कि उसे शस्त्र बना डालते हैं धर्म के पवित्र नाम पर इस प्रकार अधर्म सिखाने वाले ससार का क्या कल्याण कर सकते हैं? ऐसा कहने वाले लोग ससार को भुलावे मे डालते हैं, लोगो को कर्त्तव्यभ्रष्ट बनाते है और ससार की घोर हानि करते हैं।

आजकल कितने शिक्षक मिलेगे जो अपने विद्यार्थियो से पूछते है कि—तुम क्या खाते हो? क्या पीते हो? माता—पिता के प्रति विनयपूर्ण व्यवहार करते हो या नही, उनकी सेवा करते हो या नही? कठिनाई तो यह है कि आधुनिक शिक्षा मे सदाचार को जैसे कोई स्थान ही नही दिया जाता! समय पर अध्यापक और विद्यार्थी आये। किताबे पढी—पढाई और समय पूरा होने पर अपने—अपने रास्ते लगे। फिर न अध्यापको को विद्यार्थियो से मतलब, न विद्यार्थियो को अध्यापक से सरोकार।

मै कहता हू और सभी विचारशील व्यक्ति कहते है कि सदाचार ही शिक्षा का प्राण है। सदाचार—शून्य शिक्षा प्राणहीन है और उससे जगत का कल्याण कदापि नही हो सकता। ऐसी शिक्षा से जगत का अकल्याण ही होगा। सदाचारहीन शिक्षा ससार के लिए अभिशाप बनेगी। बनेगी क्या, बल्कि बन रही है। इसीके कारण विश्व अशान्ति का अनुभव कर रहा है और जीवन विकट समस्या हो रहा है। सदाचार के अभाव मे ज्ञान, व्यक्ति और समष्टि दोनो मे से किसी एक की भी भलाई नही कर सकता।

अध्यापक महानुभावो! आप अपने उत्तरदायित्व को समझे। आपने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अपने सिर पर लिया है। देश, जाति और धर्म का उत्थान एव पतन आपकी मुट्ठी मे है। आप राष्ट्र—निर्माण की भूमिका तैयार कर रहे है, धर्म—उन्नति का बीज बो रहे है, नीति के मनोहर उद्यान को सीच रहे है। आपकी बदौलत ससार को श्रेष्ठ विभूतिया प्राप्त हो सकती हैं। ससार का उत्थान करने वाली महान् शक्तियो के जन्मदाता आप ही हैं। आप मनुष्य शरीर के ढाचे मे मनुष्यता उत्पन्न कर रहे हैं। इसलिए आपका पद ऊचा है। व्यवसायी—व्यापारी अपनी तिजोरी भरता है, दूसरे लोग अपना मतलब साधते हैं मगर शिक्षक अपने ऊचे आदर्श पर डटा रहकर ससार के अभ्युदय मे महत्वपूर्ण योग देता है।

शिक्षक का पद जितना ऊचा है, उसका कर्त्तव्य भी उतना ही महान् है और उसके कर्त्तव्य—पालन मे ही उसकी महत्ता है। अन्य व्यवसाइयो की भांति केवल जीवन—निर्वाह के लिये शिक्षक का पद स्वीकार करने वाला

व्यक्ति सच्चा शिक्षक नही कहा जा सकता। उसे सयममय जीवन, नीतिमय व्यवहार और धर्ममय विचार रखने चाहिए। शिक्षक स्वय सदाचारी होगे तो उनके विद्यार्थी भी सदाचारी होगे। शिक्षक बीडी सिगरेट पीयेगे तो विद्यार्थी भी यही करेगे। कदाचित पैसे का सुभीता न हुआ तो कागज की बीडी बनाकर उसे पीना आरम्भ करेगे और फिर असली पीने लगेगे। अध्यापक गन्दी बाते करेगे, बुरा व्यवहार और बुरा आचरण करेगे तो छात्र भी ऐसा ही करेगे। वे बिगडने के सिवाय सुधर नही सकते।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि अध्यापक वेतन भले ही ले मगर वेतन लेने के लिये ही उन्हे अध्यापकी नही करना चाहिए? उन्हे यह समझना चाहिए कि मैं इस कार्य के द्वारा अपना कर्त्तव्य पालन करके इहलोक और परलोक की साधना कर रहा हू।

विद्यार्थी प्राय अध्यापक की नकल होता है। यद्यपि इसमे अनेक अपवाद हो सकते है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि अध्यापक मे जो दोष होगे, वे विद्यार्थी मे भी आ जाते हैं। दूधमुहे बच्चे की नाडी देखकर यह जाना जा सकता है कि उसकी मा ने क्या खाया था? इसी प्रकार विद्यार्थी का दोष देखकर अध्यापक के दोष का पता लगाया जा सकता है। अतएव अध्यापक को स्वय ऊचे आदर्श का धनी होना चाहिये और माता-पिता की तरह बालको को सुधारकर सच्चरित्री बनाने का ध्यान रखना चाहिए। अगर अध्यापक इस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो थोडे ही दिनो मे ससार का रूपान्तर हो सकता है।

बहुत कम माता-पिता शिक्षा के वास्तविक महत्व को समझते हैं। अधिकाश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार अथवा धनोपार्जन का साधन मानकर ही अपने बच्चो को शिक्षा दिलाते हैं। इसी कारण वे शिक्षा के विषय मे कजूसी करते हैं। लोग छोटे बच्चो के लिए कम वेतन वाले, छोटे अध्यापक नियत करते हे। किन्तु यह बहुत बडी भूल है। छोटे बच्चो मे अच्छे सस्कार के लिए वयस्क अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती हे।

एक यूरोपियन ने अपनी लडकी को शिक्षा देने के लिये एक विदुषी महिला नियुक्त की। उनसे एक सज्जन ने पूछा–आपकी लडकी तो बहुत छोटी है ओर प्रारभिक पढाई पढ रही हे, उसके लिये इतनी बडी विदुषी की क्या आवश्यकता है? उस यूरोपियन ने उत्तर दिया–आप इसका रहस्य नही समझ सकते । छोटे बच्चो मे जितने जल्दी अच्छे सस्कार डाले जा सकते हैं,

बडो मे नही। यह बालिका अच्छा शिक्षण पाने से थोडे ही दिनो मे बुद्धिमती बन जाएगी।

मतलब यह है कि बच्चो के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिए। बडे होने पर वे अपने आप सब बाते समझने लगेगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे हुए सस्कारो के ही अनुसार होगी। बचपन मे जिनके सस्कार नही सुधरे, उनकी दशा यह है कि कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते ओर उस कान से निकाल देते हैं। इसके विपरीत, सुसस्कारी पुरुष, जो अच्छी और उपयोगी बात पाते है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्व है।

प्राचीन काल के शिक्षक विद्यार्थियो को यह समझाते थे कि माता–पिता का क्या दर्जा है और उनके प्रति पुत्र का क्या कर्तव्य है? आज भी यह बात सिखाने की नितान्त आवश्यकता है।

बालक को सस्कारसम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्त्व, जैसा कि पहले कहा गया है, शिक्षको पर तो है ही, मगर माता–पिता के पूर्ण सहयोग के बिना शिक्षक अपने प्रयत्न मे पूरी तरह सफल नही हो सकता। शिक्षक के साथ बालक के सरक्षक का सहयोग होना बहुत आवश्यक है। मान लीजिए शिक्षक पाठशाला मे बालक को सत्य बोलने की शिक्षा देता है और स्वय भी सत्य बोलकर उसके सामने आदर्श उपस्थित करता है, मगर बालक जब घर आता है और अपने पिता को एक पैसे के लिये झूठ बोलते देखता है तो पाठशाला का उपदेश समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति मे वह किसका अनुकरण करे–शिक्षक का या अपने पिता का? शिक्षक ने ही बालक को पिता के प्रति भक्तिभाव रखने का उपदेश दिया है। उस उपदेश के अनुसार भी वह पिता के असत्य से घृणा नही कर सकता। बहुत सूक्ष्म विचार करने की उसमे बुद्धि ही कहा है? बालक के सामने जब इस प्रकार की विरोधी प्रवृत्तिया उपस्थित होती है तो वह गडबड मे पड जाता है। इसके पश्चात् वह अपने आप ही मार्ग निकाल लेता है। वह सोचता है –कहना तो यही चाहिये कि असत्य मत बोलो सत्य भाषण ही करो मगर काम पडने पर पिताजी की तरह असत्य का प्रयोग करना चाहिए ऐसा ही कुछ निर्णय करके बालक या तो ढोगी बन जाता है या असत्यवादी और फिर सत्य का उपदेशक बन जाता है।

इस प्रकार का विरोधी वातावरण बालको के सुधार मे बहुत बाधक [illegible] घर मे और पाठशाला मे जो महान् अन्तर है उसे मिटाना

पडेगा। प्रत्येक घर पाठशाला का पूरक हो और पाठशाला घर की पूर्ति करे तभी दोनो मिलकर बालको के सुधार का महत्वपूर्ण कार्य कर सकेगे।

माता–पिता सन्तान उत्पन्न कर के छुटकारा नही पा जाते, किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के साथ ही उनका उत्तरदायित्व आरम्भ होता है। शिक्षक के सुपुर्द करने से भी उनका कर्तव्य पूरा नही होता। उन्हे बालक के जीवन–निर्माण के लिए स्वय अपने जीवन को आदर्श बनाना चाहिये। सस्कार–सुधार की बहुत बडी जिम्मेदारी उन पर भी है। बालक को उत्पन्न कर देने मात्र से नही, वरन् सस्कारी बनाने से ही माता–पिता का कर्ज बालक पर चढता है।

प्राचीन काल मे माता–पिता बीस–बीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर सन्तान उत्पन्न करते थे, इस प्रकार सयमपूर्वक रहकर उत्पन्न की हुई सन्तान ही महापुरुष बन सकती है। आजकल के लोग समझते हैं, हनुमान का नाम जप लेने से ही शारीरिक शक्ति बढ जाती है। उन्हे यह नही मालूम कि हनुमान के समान वीर पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ था? मन–मुटाव हो जाने के कारण अजना और पवन कुमार दोनो बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। तभी ऐसी वीर सतति उत्पन्न हुई थी। अच्छी और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने के लिए पहले माता–पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिए। बबूल के पेड मे आम का फल नही लग सकता।

माता–पिता बच्चो की सेवा करते हैं, वह निष्काम भाव से करते हैं। वे यह विश्वास नही करते कि हमारा बेटा जवान होकर हमे सुख देगा। माता–पिता केवल करुणा भाव से प्रेरित होकर उस समय बालक का पालन–पोषण करते हैं। ऐसे नि स्वार्थ–भाव से उपकार करने वाले उपकारियो का उपकार स्मरण कराने के बदले उसे भुलाने वाली शिक्षा, शिक्षा है या अशिक्षा? 'अशिक्षा'।

माता–पिता के अतिरिक्त दूसरा उपकारी वह है जो गरीबी के समय सहायता करे।

तीसरे उपकारी वे गुरु हैं, जिन्होने धर्म की समुचित शिक्षा दी हे, आत्मा को काम, क्रोध, मद, मोह और मात्सर्य आदि विकारो से रहित निर्दोष निर्विकार बनाने का उपदेश दिया है, जिन्होने आत्मा–अनात्मा का विवेक सिखलाया हे और लोक– परलोक आदि का ज्ञान कराया हे।

इन तीन प्रकार के उपकार– कर्त्ताओ से मनुष्य सरलता से उऋण नहीं हो सकता। इनका उपकार महान् हे।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि जब इन उपकारियो की बडी से बडी सेवा करके भी हम सहज उत्रृण नही हो सकते और उत्रृण होना आवश्यक है, तो आखिर क्या करना चाहिए? किस कर्त्तव्य से, कौन'सी विधि से हम उत्रृण हो सकते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले कुछ सामयिक बातो पर प्रकाश डालना उचित है। कुछ लोग पर्दा उठाने का नाम सुनते ही कोलाहल मचाने लगते है। वे लोग अपने पक्ष के समर्थन मे यह कहते हैं कि जब तक पर्दा है तभी तक सदाचार है। जैसे ही पर्दा उठा कि सदाचार भी उठा और अनाचार फैला। अतएव सदाचार की रक्षा के लिए स्त्रियो को जितना भी रोक कर रक्खा जाय, पर्दे मे बन्द किया जा सके, कर रखना चाहिए। इसी से जन–समाज का कल्याण है।

दूसरे पक्ष का कथन यह है कि इस युक्ति के मूल मे महिला– वर्ग के प्रति अविश्वास का भाव स्पष्ट है। पर्दा उठाने से महिलाए सदाचार छोड देगी यह कथन ही उनका घोर अपमान है। जिन प्रदेशो मे पर्दा नही है, वहा पर्दा वाले प्रान्तो की अपेक्षा कम सदाचार नही देखा जाता, इससे उल्टा भले ही हो। अगर यह कहा जाय कि पर्दा उठाने से पुरुषवर्ग सयम मे नही रह सकेगा और दुराचार फैलेगा, तब तो पुरुष को ही पर्दे मे रखना न्यायसगत मालूम होता है। पुरुषो की निर्बलता के कारण स्त्रियो को पर्दे मे रखना अन्याय है। क्या आवश्यकता है कि उन्हे भेड–बकरियो की तरह–नही उनसे भी बदतर अवस्था मे, बाडे मे बन्द करके रक्खा जाय?

पर्दे के सम्बन्ध मे परस्पर विरोध विचार और दोनो पक्षो का कथन ऊपर बतलाया गया है।

इस सम्बन्ध मे मै सिर्फ इतना ही कहना चाहता हू कि आप लोग (पुरुष वर्ग) स्वेच्छापूर्वक उन्हे स्वतन्त्र कर देगे तो महिला– समाज पर आपका अकुश रहेगा। अगर आपने ऐसा नही किया और उन्होने जबर्दस्ती इस बधन को तोड फेका तो शायद ही आपका अकुश रहेगा। महिला–समाज जागृत हो रहा है अब वह अधिक दिनो तक पशु बना रहेगा या, नही, यह एक सदेहास्पद बात है। जब तक स्त्रिया आपके कब्जे मे हैं, तब तक उन्हे जिस प्रकार चाहा रख सकते हो। कब्जे से बाहर होते ही वे अपने आपको मनुष्य अनुभव करने लगेगी। उस समय आपकी सत्ता उन पर नही चलेगी। ऐसा होने मे जो खतरा है उसे आप लोग पहले ही अनुभव कर सके तो अच्छा है।

जो लोग यह कहते हैं कि पर्दा प्राचीनकाल से –बडे बूढो के जमाने से चला आया है, उन्हे सोचना चाहिये कि लोग अगर बडे बूढो के बनाये हुए कायदे से ही चलते तो आज इतना करने की आवश्यकता न पडती। बडे–बूढो ने जिस विचारशीलता से पर्दे की प्रथा चलाई थी, वह विचारशीलता आज होती तो पर्दा उठाने मे एक भी क्षण की देरी न लगती।

यहा यह स्मरण रखना चाहिये कि पर्दा उठा देने का अर्थ लज्जा उठाकर एक प्रकार की निर्लज्ज्ता उत्पन्न कर देना नहीं है। पर्दा उठा देने पर स्त्रियो को वर्तमान उपयोग मे आने वाले निर्लज्जतापूर्ण बारीक वस्त्रो का जिनमे आज उनके सिर का एक– एक बाल दिखाई पडता है, त्याग करना पडेगा। पर्दा उठा देने से पर्दे की बहुत सी पोले अपने आप समाप्त हो जाएगी। क्या इतने बारीक वस्त्र प्राचीन काल की बहिने पहनती थी?

अगर पर्दा बिल्कुल नहीं छूट सकता तो कम से कम उसका रूपान्तर तो अवश्य ही करने योग्य है। दिल्ली तथा युक्तप्रान्त मे भी पर्दा है, मगर मारवाड जैसा पर्दा नही है। स्त्रियो को बन्द रखने से ही लज्जा की रक्षा नही हो सकती, यह बात आपको भली–भाति समझ लेनी चाहिए।

मैं किसी पर सख्ती नही करता। मेरा कर्तव्य आपके कल्याण की बात बता देना है। आपको जिससे सुख हो वही आप कर सकते हैं। मगर मैं यह चेतावनी दे देना चाहता हू कि अब पहले जैसा जमाना नही रहा। एक भयकर आधी उठ रही है। वह आधी आकर इन सभी ढोगो को अपने साथ उडा ले जाएगी। यह चेतावनी देकर और अपना कर्तव्य का पालन करके मै सन्तुष्ट हू। अब भविष्य मे कोई यह नही कहेगा कि लोगो मे परिस्थिति को समझाने वाला कोई भी नही था। यद्यपि आप लोग पर्वत की ओट मे बैठे है, किन्तु यह ओट भी अधिक दिनो तक आपकी रक्षा नही कर सकेगी।

लोग कहते है 'आपने भगी को व्याख्यान क्यो सुनाया? उसे उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी? 'उनसे मैं यह पूछता हू– तुम श्री हरिकेशी मुनि की कथा जानते हो? वे कौन थे?

हरिकेशी मुनि चाडाल कुल मे उत्पन्न हुए थे। वे सूत्र–पाठ द्वारा दूसरो को उपदेश देते थे। ऐसी स्थिति मे मैंने भगियो को उपदेश सुना दिया तो क्या उपराध हो गया? आज ही नही, पूर्व काल मे भी भगी आचार्यों का उपदेश सुनते आते रहे है और किसी ने भी इस पर आपति नही की थी। अलबति, वे बैठते थे, तुम लोगो के नियमानुसार ही।

जो लोग यह कहते है कि मैंने भगियो को बुलाया या बुलवाया था, उन्हे ध्यान रखना चाहिए मेरा काम लोगो को बुला–बुला कर लाना और उन्हे बिठलाना नही है। मेरा कर्तव्य व्याख्यान सुनाना (उपदेश देना) है और उसे सुनने का अधिकार प्राणी मात्र को है।

यह मकान तुम्हारा है तुम इसमे किसी को आने दो या न आने दो मै इस मामले मे हस्तक्षेप नही कर सकता। अगर मुझे मना कर दो तो मैं भी अभी बाहर निकलने के लिए बाध्य हू। ऐसी दशा मे मैं तुम्हारे बुलाने, बिठलाने या न बुलाने के कार्य मे क्या दखल दे सकता हू? यह मेरा घर नही है कि लोगो को बुला–बुला कर बिठलाऊ? रही देने की बात, सो भगी आएगा तो उसे और ब्राह्मण आएगा तो उसे समान रूप से मै उपदेश दूगा। अगर मै उपदेश न सुनाऊ तो फिर साधु ही कैसा।

लोग कहते होगे– जब भगियो को उपदेश सुनाते हो तो उनके गोचरी करने (आहार) क्यो नही जाते? मैं कहता हू– अगर तुम लोगो का उनके साथ ऐसा व्यवहार हो जाय, आपस मे भोजन व्यवहार आरम्भ हो जाय, तो मुझे कुछ भी आपत्ति न होगी। उस समय मै भी भगियो के घर से गोचरी लाने लगूगा।

मित्रो! साधु लोग भगियो से परहेज करे या न करे, मगर सच्चाई यह है कि तुम्ही लोग उनसे परहेज नही करते। आस्पतालो मे भगी कार्य करते है और तुम वहा की दवा पीते हो। ऐसा कौन है जिसने अस्पताल की दवा का सेवन न किया हो? रेल मे भगी सफर करता है और उसी मे तुम बैठते हो। क्या इसी को परहेज करना कहते है? साधु तो इन दोनो चीजो को काम मे नही लेते। अब बताओ, भगी से तुम ज्यादा परहेज करते हो या हम? हम लोग साधुपन के बधन मे बन्धे होने के कारण गरीब समझे जाते है, इस कारण तुम चाहो सो कहो किन्तु खुद भगी से परहेज न करना और हमारे उपदेश दे देने मात्र से धर्म पर सकट आया समझना, सरासर अन्याय है।

जब तक हम जिनकल्पी अवस्था नही प्राप्त कर लेते तब तक तुम्हारे बधन मे है और सबको प्रसन्न रखकर–सब की आकाक्षाओ का ध्यान रखते हुए चलने का प्रयत्न करते हैं। हमारा कार्य उपदेश देना है। उसे सुनते–सुनते निश्चय ही किसी दिन तुम मे सत्य की शक्ति आ जायेगी और तुम मनुष्यो के प्रति अपना कर्तव्य समझने लगोगे। फिलहाल तुम्हारे हृदयो मे अस्पतालो, रेलो, मेलो आदि के अवसर पर भगी का परहेज दूर हो गया है, तो आशा है व्याख्यान का परहेज भी किसी न किसी दिन समाप्त हो जायगा। मैं जब

तक तुम्हारे महान मे हू तब तक तुम किसी को सुनने दो या न सुनने दो, किन्तु जब बाजार मे व्याख्यान दूगा तब सभी सुनेगे। उस समय तुम किसी को भी न रोक सकोगे।

मित्रो! भगी लोग आपके परम सहायक हैं, आपकी स्वस्थता के आधार है। वे स्वय कष्ट सह कर आपको सुख पहुचाते हैं। वे चाहे तो कोई भी दूसरा धन्धा करके अपना पेट पाल सकते हैं। मगर अपनी परम्परागत वृत्ति को, आप की असीम घृणा सहन करते हुए भी, चालू रख रहे हैं। इन लोगो की सहिष्णुता का विचार करो। इनसे घृणा करना छोडो। आपके ऊपर इनका भारी असीम ऋण है। उसे चुकाने का प्रयत्न करो।

अब वही प्रश्न फिर उपस्थित होता है— मातृ–पितृ ऋण, सहायक ऋण और आचार्य ऋण को आखिर किस प्रकार चुकाया जा सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उनके ऊपर उपकार करके ही उनके ऋण से मुक्त होना सम्भव है। पूर्ण उपकार वह है जिससे उन्हे सन्मार्ग मिले। कदाचित् वे लोग धर्म से गिर रहे हो अथवा धर्म से अपरिचित हो तो उसकी सेवा करते हुए उनके अन्त करण मे धर्म–प्रेम जागृत कर देना ही उनका पूर्ण उपकार करना है। ऐसा उपकारी हमारे ऊपर चढे ऋण से उत्ऋण हो जाता है। सेवा का ऋण तो सेवा से ही चुक जाता है, किन्तु उस सेवा मे जो नि स्वार्थ भावना रही है उसी का ऋण महान् होता है। उपकारी की धर्म मे दृढता उत्पन्न कर देने से वह महान् ऋण भी चुक सकता है।

इन तीनो ऋणो को समझाते तथा अपने कर्तव्य का भान कराते हुए बालको को जो धर्म–शिक्षा दी जाएगी, उसी से उनमे मनुष्यता का विकास होगा। इन बातो की उपेक्षा करके जो शिक्षा दी जाएगी, वह बालको को सुधारेगी नही, बिगाडेगी ही। उससे तो ऐसे महापुरुष पैदा होगे, जो माता के पेट मे 9 महीने निवास करने का भाडा मागने को तैयार रहेगे।

ठाणाग सूत्र ही यह उपदेश नही देता, प्राचीन काल मे सभी मे आर्य–धर्म यही उपदेश देते थे। वैदिक आचार्य, ब्रह्मचारियो का जब समापवर्तन सस्कार करते थे और ब्रह्मचारी स्नातक बन कर जब गुरुकुलवास त्याग कर गृहस्थाश्रम मे जाने लगता, तब वे यो उपदेश देते थे।

'सत्य वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद ।

सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यं न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय–प्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम् देवपितृ कार्याभ्या न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यावान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि।

अर्थात् – हे अन्तेवासी। तुम यहा से जाकर सत्य भाषण करना, धर्म का आचरण करना, (असत्य और धर्म का आचरण करके इस शिक्षा को मत लजाना) सत्य भाषण मे प्रमाद न करना, धर्माचरण मे प्रमाद न करना। अपना उपार्जित ज्ञान बढाना और उपदेश द्वारा दूसरो को भी लाभ पहुचाना। देव और पूर्वजो सम्बन्धी कार्यो मे प्रमाद न करना। माता–पिता, आचार्य और अतिथि को देवतुल्य मानना। निरवद्य (पाप रहित) कार्य करना, अन्य नही। जिन कार्यो का हमने आचरण किया है, वही तू करना, अन्य नही।

प्राचीन काल की यह सुन्दर शिक्षा थी और आजकल का व्यवहार यह है–

जियत पिता से जंगम–जंगा, मरे हाड़ पहुंचाव गंगा।

जब तक मा–बाप जीवित रहे, तब तक उन्हे चाहे पेट भर कर भोजन न दे, मगर उनके मरने पर पचो को लड्डू जरूर खिलाएगे। आज माता–पिता को देवतुल्य मानना तो दरकिनार रहा, उन्हे मनुष्य या दया के पात्र मानने के लिए भी बहुत कम लोग तैयार हैं। कल मैं आहार के लिए गया तो एक बाई अस्तव्यस्त दशा मे पडी थी। उसने मुझसे कहा– महाराज! अब तो कोई मेरी बात भी नही पूछता, कोई सार–सभाल भी नहीं करता। अब मुझे सथारा करा दीजिए। मैने उस बहन को आश्वासन दिया। मुझे यह सोच कर आश्चर्य हुआ कि अगर कोई इसकी सार–सभाल नहीं करता तो जाति वाले ओसवाल इसे क्यो नही सभालते? अगर जाति ऐसे आडे समय पर काम नही आती तो कब काम आएगी?

माता–पिता के साथ आचार्य को भी देव मानने की शिक्षा दी जाती थी। कहा भी है–

गुरु गोविन्द दोनो खडे किसके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु देव की गोविन्द दिया बताय।।

अगर धर्म और नीति का उपदेश देने वाले न हो तो मानव–समाज की कैसी दुर्दशा हो? मानव जीवन कितना भयकर बन जाय?

ऊपर उपनिषद का जो उल्लेख किया है उसमे आचार्य ने शिष्य को उपदेश देते हुए यह भी बताया है कि हमने जिन कार्यो का आचरण किया है वही कार्य तुम भी करना उसके विरुद्ध मत करना। यह कथन स्पष्ट प्रकट

करता है कि उस समय के आचार्य (अध्यापक) छात्रो के समक्ष कितना सयममय व्यवहार करते होगे। उनका जीवन कैसा नीतिमय होगा? तभी तो वे स्पष्ट शब्दो मे शिष्य को अपना अनुकरण का आदेश देते हैं? क्या आधुनिक शिक्षक भी प्रामाणिक एकता के साथ ऐसा आदेश दे सकते हैं? उन्हे अपने ऊपर ऐसा सुदृढ विश्वास है? आधुनिक अध्यापक कहते हैं –

Do as I say, dont do as I do

अर्थात्– मैं जैसा कहता हू, वैसा करो। मैं जैसा करता हू वैसा मत करो।

दोनो मे कितना अन्तर है? एक सबल हृदय की भाषा है, दूसरी निर्बल हृदय की। एक से उच्च चारित्र की दृढता टपक रही है, दूसरी से आचरण–हीनता प्रकट हो रही है। मानो सदाचार कहने के लिए है, करने के लिए नही है। इससे विद्यार्थी पर क्या प्रभाव पडता है, यह विद्वान अध्यापको को बताने की आवश्यकता है। इससे विद्यार्थी एक मात्र कहना कुछ और कहना कुछ का ही आदर्श पाठ सीख सकता है।

अध्यापको! आप अपने पवित्र उत्तरदायित्व को सदैव स्मरण रखिये। बच्चो के समक्ष जैसा आदर्श होगा, वे वैसे ही बनेगे। अध्यापक के कार्यो और विचारो का विद्यार्थी सूक्ष्म रूप से अध्ययन करते रहते हैं। आप प्राचीन गुरुओ का आदर्श अपने सामने रखिये। उनकी भावना यही रहती थी कि हमारा शिष्य सदाचारी, नीतिनिष्ठ, धार्मिक एव विद्वान बनकर जगत् के लिए आदर्श बने और विश्व का कल्याण करे।

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर

– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए है। आषाढ शुक्ला अष्टमी सवत् 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जैन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य है। आज गौरवान्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता है जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हैं। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक– कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती हैं। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते हैं। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय–वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और क्षेत्र मे [illegible] है।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई, बुनाई, कढाई प्रशिक्षण केन्द्र का सचालन किया जाता है, जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई, बुनाई, कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यों मे योगदान दे सकती हैं और आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती है।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया की जन्म जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता है जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक, सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते हैं।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला, विज्ञान एव वाणिज्य सकाय मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो को नकद राशि, प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है एव स्नातकोत्तर शिक्षा मे बीकानेर विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को विशेष योग्यता पुरस्कार के रूप मे प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक–चिन्ह देकर सम्मानित किया जाता है।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे, मीठे जल की प्याऊ का सचालन किया जाता है। जनसाधारण के लिए इसकी उपयोगिता स्वय–सिद्ध है। इस प्रकार अपने बहुआयामी कार्यों से श्री जवाहर विद्यापीठ निरन्तर प्रगति–पथ पर अग्रसर है।